# समकित-प्रवेश

(जैन सिद्धांतों की सुगम विवेचना)

Mangalvardhini
Foundation

*Being Sahaj & Sorted*

मंगलवर्धिनी पुनीत जैन

परमोपकारी गुरुदेवश्री की पावन स्मृति में सादर समर्पित

# समकित-प्रवेश

## (जैन सिद्धांतों की सुगम विवेचना)


लेखक व संपादक

**मंगलवर्धिनी पुनीत जैन**

बी.ई.,एम.टैक.,एम.ए.-संस्कृत साहित्य, आचार्य-जैन दर्शन (अध्ययन.)
सह-निर्देशक, श्री ज्ञानोदय जैन सिद्धांत महाविद्यालय, दीवानगंज-भोपाल
शिक्षक, परमागम ऑनर्स, भोपाल
फैकल्टी, बी.यू.आई.टी., भोपाल



प्रकाशक

**Mangalvardhini Foundation**

*Being Sahaj & Sorted*

'सुवर्णपुरी' ऑलिव-212, रुचिलाईफ स्केप, होशंगाबाद रोड,
भोपाल (म.प्र.) 462026
संपर्क सूत्र : 7415111700, 8109363543

प्रथम संस्करण : 2500 प्रतियाँ, श्रुत-पंचमी 2019 ई.

लेखक एवं संपादक : मंगलवर्धिनी पुनीत जैन, भोपाल
कॉपीराईट : मंगलवर्धिनी पुनीत जैन, भोपाल के पास सर्वाधिकार सुरक्षित
आई.एस.बी.एन. :

प्रकाशक व प्राप्ति स्थान : Mangalvardhini Foundation
Being Sahaj & Sorted

सुवर्णपुरी, ऑलिव-212, रुचिलाईफ स्केप, होशंगाबाद रोड, भोपाल (म.प्र.) 462026
संपर्क सूत्र : 7415111700, 8109363543

मूल्य : 30/-

टाईप सेटिंग : सुनील पस्तोर, गंजबसौदा, 9340285469

मुद्रक : साहित्य सरोवर, भोपाल

"धर्म" यह वस्तु बहुत गुप्त रही है। यह बाह्य शोधन से मिलने वाली नहीं है। अपूर्व अन्तःशोधन से यह प्राप्त होती है। यह अन्तःशोधन कोई एक महाभाग्य सद्गुरु के अनुग्रह से पाता है।

**-श्रीमद् राजचन्द्र वचनामृत**

समस्त सिद्धान्तों के सार का सार तो बहिर्मुखता छोड़कर अन्तर्मुख होना है। श्रीमद् ने कहा है न!-'उपजै मोह विकल्प से समस्त यह संसार, अंतर्मुख अवलोकतें विलय होत नहिं वार।' ज्ञानी के एक वचन में अनन्त गम्भीरता भरी है। अहो! जो भाग्यशाली होगा उसे इस तत्त्व का रस आयेगा और तत्त्व के संस्कार गहरे उतरेंगे।

**-गुरुदेव श्री के वचनामृत**

हे जीव ! तुझे कहीं न रुचता हो तो अपना उपयोग पलट दे और आत्मा में रुचि लगा। आत्मा में रुचे ऐसा है। आत्मा में आनन्द भरा है; वहाँ अवश्य रुचेगा। जगत में कहीं रुचे ऐसा नहीं है परन्तु एक आत्मा में अवश्य रुचे ऐसा है। इसलिये तू आत्मा में रुचि लगा।

**- बहिनश्री के वचनामृत**

# अपनी बात

बंधुओं ! इस दुर्लभ मनुष्य पर्याय को सार्थक करने का एक मात्र उपाय है- आत्मानुभूति व आत्मानुभूति का प्रबल हेतु है-तत्वविचार एवं तत्वविचार से जुड़े रहने का एक प्रभावी उपाय है-तत्वप्रचार। इसी भावना से मैं पिछले अनेक वर्षों से इस कार्य में अनवरत् रूप से लगा हुआ हूँ।

णमोकार मंत्र से लेकर दृष्टि के विषय तक, जैनदर्शन के चारों अनुयोग व समस्त मूलभूत सिद्धांतों के **पारमार्थिक दृष्टिकोण** को श्रोता परिभाषाओं व दृष्टांतों के जाल में उलझे बिना, व्यवस्थित, क्रमबद्ध, सरल व सुबोध शैली में उनका **भावभासन** कर सकें, इस हेतु मैंने जिस शैली, चार्ट्स व तकनीक आदि का प्रयोग किया वह लोगों द्वारा काफी पसंद किये गये व उसी शैली आदि में उन विषयों के विवेचन को पुस्तक का आकार देने की माँग आने लगी। लेकिन मैं इस कार्य को निरन्तर टालता रहा। किन्तु इस वर्ष जब मैं तत्वप्रचारार्थ अहमदाबाद गया तब मेरे मेजबान श्री भूषण भाई शाह के विशेष आग्रह से मैंने लेखन का कार्य प्रारंभ कर बहुत ही अल्प समय में पूर्ण किया।

मुझे इस आत्मकल्याण के मार्ग में लगाने वाली वात्सल्यमूर्ति विदुषी **श्रीमति सुधा विजय पाटनी** (छिंदवाड़ा) भोपाल व इस कार्य को करने में विशेष सहयोग प्रदान करने वाले **आ. ब्र. चंद्रसेन जी** भोपाल, **श्री प्रदीप मानोरिया** अशोकनगर आदि विद्वान व श्री संदीप भाई सिंघवी (यूनिवर्सल सॉफ्टवेयर) अहमदाबाद एवं श्रीमति आराधना जैन, श्रीमति नीतू कौशल भोपाल के प्रति मैं हृदय की गहराईयों से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

पुस्तक के लाभार्थी जिन्होंने ज्ञान दान के इस परम् पवित्र कार्य में अपनी चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग किया, जिनके नामों की सूची पुस्तक के अंत में दी गई है, वह सभी भी विशेष अनुमोदना के पात्र हैं।

जैसा कि कहा जाता है कि अंत भला सो सब भला। अतः अंत में, इस कार्य को पूर्ण करते समय जिनका देवलोक से दिव्य सन्निध्य प्राप्त हुआ ऐसे प्रातः स्मरणीय वैराग्यमूर्ति **कृपालुदेव** परमोपकारी **गुरुदेवश्री** व प्रशम्मूर्ति **बहिनश्री** के पावन चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ व **उपदेश ऊपर चढ़ने के लिए होता है, नीचे गिरने के लिए नहीं,** ऐसा अंतिम निवेदन कर अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

**-मंगलवर्धिनी पुनीत ,** भोपाल

# विषय सूची

| क्र. | विषय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|


**भाग - 1**

| | | |
|---|---|---|
| 01 | णमोकार मंत्र (मूल मंत्र) | 01 |
| 02 | अरिहंत-सिद्ध (सच्चे देव) | 03 |
| 03 | आचार्य-उपाध्याय-साधु (सच्चे गुरु) | 06 |
| 04 | णमोकार मंत्र का महत्व एवं फल | 08 |
| 05 | मंगल | 10 |
| 06 | उत्तम व शरण | 12 |
| 07 | सामान्य केवली व तीर्थंकर | 14 |
| 08 | तीर्थंकर ऋषभदेव | 17 |
| 09 | शुद्धातम है मेरा नाम (संकलित) | 20 |

**भाग - 2**

| | | |
|---|---|---|
| 01 | विश्व | 22 |
| 02 | जीव-अजीव | 24 |
| 03 | गतियाँ | 26 |
| 04 | मिथ्यात्व और कषाय | 29 |
| 05 | पाप | 32 |
| 06 | जैनाचार (अष्ट मूल गुण) | 35 |
| 07 | नेमिनाथ-श्रीकृष्ण | 39 |
| 08 | जिनवाणी स्तुति (संकलित) | 42 |

**भाग - 3**

| | | |
|---|---|---|
| 01 | जिनेन्द्र स्तवन (संकलित) | 44 |
| 02 | इंद्रियाँ | 46 |
| 03 | स्थावर और त्रस जीव | 50 |
| 04 | अभक्ष्य | 52 |
| 05 | सप्त व्यसन | 55 |
| 06 | कर्म | 58 |
| 07 | तीर्थंकर पार्श्वनाथ | 63 |
| 08 | भगवान बनेंगे (संकलित) | 68 |

## भाग - 4


| | | |
|---|---|---|
| 01 | सुख | 70 |
| 02 | सुख का स्वरूप | 72 |
| 03 | वीतराग-सर्वज्ञ-सुखी | 75 |
| 04 | द्रव्य-गुण-पर्याय | 77 |
| 05 | द्रव्य का स्वरूप | 79 |
| 06 | सामान्य गुण | 81 |
| 07 | अस्तित्व गुण और अकर्तावाद | 82 |
| 08 | वस्तुत्व गुण और वस्तु स्वातंत्र्य | 85 |
| 09 | द्रव्यत्व गुण और पुरुषार्थ | 88 |
| 10 | अगुरुलघुत्व गुण और परस्परग्रहो जीवानाम् | 93 |


## भाग - 5


| | | |
|---|---|---|
| 01 | विशेष गुण | 97 |
| 02 | जीव द्रव्य | 100 |
| 03 | अगृहीत (निश्चय) मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र | 104 |
| 04 | गृहीत (व्यवहार) मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र | 109 |
| 05 | निश्चय सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र | 112 |
| 06 | व्यवहार सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र | 116 |
| 07 | कारण-कार्य | 122 |
| 08 | निमित्त कारण | 129 |
| 09 | धर्म, अधर्म, आकाश व काल | 133 |
| 10 | निश्चय-व्यवहार | 139 |
| 11 | ज्ञेय-श्रद्धेय-ध्येय (दृष्टि का विषय) | 145 |
| 12 | व्यवहार नय की उपयोगिता | 150 |


## भाग - 6


| | | |
|---|---|---|
| 01 | प्रयोजनभूत तत्व (पदार्थ) | 154 |
| 02 | ज्ञेय-हेय-उपादेय | 160 |
| 03 | जीव-अजीव तत्व संबंधी भूल | 163 |
| 04 | आश्रव-बंध तत्व संबंधी भूल | 167 |
| 05 | संवर, निर्जरा व मोक्ष तत्व संबंधी भूल | 172 |
| 06 | चार-अनुयोग | 176 |
| 07 | पाँचवे गुणस्थान वाले श्रावक की प्रतिमायें | 183 |
| 08 | पाँचवे गुणस्थान वाले श्रावक के अणुव्रत | 186 |
| 09 | गुण-व्रत और शिक्षा-व्रत | 190 |

## भाग - 7


| | | |
|---|---|---|
| 01 | पाँचवे गुणस्थान वाले श्रावक के दैनिक कर्म | 194 |
| 02 | पूजा | 200 |
| 03 | पूजा के प्रकार और उसका फल | 203 |
| 04 | छठवे-सातवे गुणस्थान वाले मुनिराज के महाव्रत | 207 |
| 05 | मुनिराज की पाँच समिति | 212 |
| 06 | मुनिराज की तीन गुप्ति और पाँच-इन्द्रिय विजय (निग्रह) | 216 |
| 07 | छः आवश्यक | 219 |
| 08 | प्रतिक्रमण | 225 |
| 09 | देव-स्तुति (संकलित) | 229 |


## भाग - 8


| | | |
|---|---|---|
| 01 | गुणस्थान | 236 |
| 02 | उपशम और क्षपक श्रेणी | 244 |
| 03 | बहिरात्मा-अंतरात्मा-परमात्मा | 252 |
| 04 | पाँच-भाव | 257 |
| 05 | अनेकांत और स्याद्वाद | 263 |
| 06 | षट्कारक | 269 |
| 07 | चार अभाव | 277 |
| 08 | भगवान राम | 284 |
| 09 | बारह भावना (संकलित) | 291 |


मैं कौन हूँ आया कहाँ से ? और मेरा रूप क्या ?
सम्बन्ध दुःखमय कौन है ? स्वीकृत करूँ परिहार क्या ?
इसका विचार विवेक पूर्वक, शान्त होकर कीजिये ।
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के, सिद्धान्त का रस पीजिए ।।
किसका वचन उस तत्व की, उपलब्धि में शिवभूत है ।
निर्दोष नर का वचन रे ! वह स्वानुभूति प्रसूत है ।।
तारो अरे ! तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिये ।
सर्वात्म में समदृष्टि हो, यह वच हृदय लख कीजिये ।।

**-अमूल्य तत्व विचार**

आत्मभ्रांति सम रोग नहि, सद्गुरु वैद्य सुजाण ।
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहि, औषध विचार ध्यान ।।

**-आत्मसिद्धि**

1

# णमोकार मंत्र

**णमो अरिहंताणं**
**णमो सिद्धाणं**
**णमो आइरियाणं**
**णमो उवज्झायाणं**
**णमो लोए सव्व साहूणं**

समकित : णमोकार मंत्र जैन धर्म का मूल मंत्र है। इसे पंच नमस्कार मंत्र, अपराजित मंत्र आदि नामों से भी जाना जाता है। यह एक अनादि-निधन[1] मंत्र है।

प्रवेश : भाईश्री ! इसका अर्थ क्या है ?

समकित : लोक[2] में सब अरिहंतों को नमस्कार हो, सब सिद्धों को नमस्कार हो, सब आचार्यों को नमस्कार हो, सब उपाध्यायों को नमस्कार हो और सब साधुओं को नमस्कार हो।

प्रवेश : अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु कौन हैं ?

समकित : यह पंच-परमेष्ठी या पंच-परमेष्टी कहलाते हैं।

प्रवेश : परमेष्ठी व परमेष्टी में क्या अंतर है ?

समकित : जो परम-पद[3] में स्थित हैं, उन्हें परमेष्ठी कहते हैं व जो परम-इष्ट[4] हैं, उन्हें परमेष्टी कहते हैं। दोनों एक ही बात है, क्योंकि जो परमपद में स्थित हैं, वही तो हमारे परम इष्ट हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! णमोकार मंत्र मे इन पंच परमेष्ठियों को क्यों नमस्कार किया गया है ?

समकित : उन जैसे गुणों[5] को पाने के लिये उनको नमस्कार किया गया है।

---

1.eternal 2.universe 3.supreme-states 4.most-favored 5.qualities

प्रवेश : अच्छा ! भाईश्री कौन-कौन से गुण हैं पंच परमेष्ठियों में ?

समकित : हमारा अगला विषय यही है।

## अरिहंत परमेष्ठी

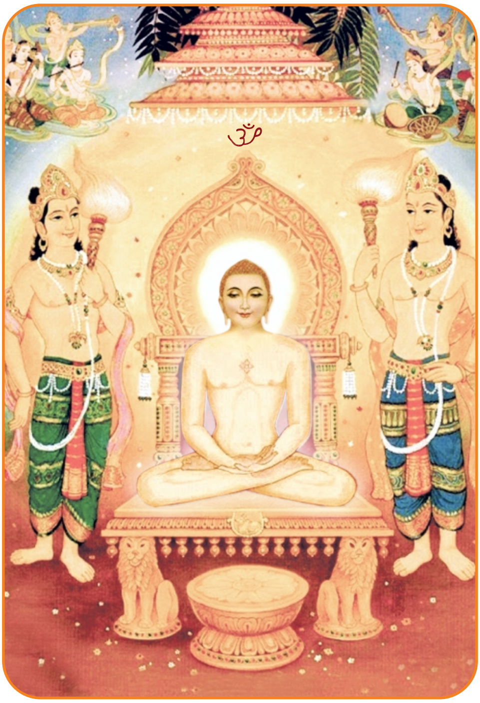

## सिद्ध परमेष्ठी

2

# अरिहंत-सिद्ध

## (सच्चे देव)

समकित : जैसा कि हमने देखा कि हम प्रतिदिन[1] णमोकार मंत्र का पाठ[2] करके पंच परमेष्ठियों को नमस्कार करते हैं। लेकिन उनके बारे में समझे बिना उनको नमस्कार करना सच्चा नमस्कार नहीं है।

प्रवेश : भाईश्री ! तो फिर पंचपरमेष्ठी के बारे में हमे समझाईये न ?

समकित : हाँ सुनो ! मैं एक-एक करके समझाता हूँ।

**अरिहंत परमेष्ठी-** जिन्होंने गृहस्थपना[3] त्यागकर, मुनिधर्म[4] अंगीकार कर, स्वंय[5] को जानकर, मानकर[6] व स्वयं में लीन[7] होकर चार घाति कर्मों का नाश करके अनंत चतुष्टय (अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य) प्रगट[8] किया है, उन्हें अरिहंत परमेष्ठी कहते हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! ये घाति-कर्म क्या होते हैं ?

समकित : घात का मतलब है-नुकसान[9] पहुँचाना। जो कर्म हमारे गुणों का घात करते हैं यानि कि हमें नुकसान पहुँचाते हैं, उन्हें घाति-कर्म कहते हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! क्या अनंत-ज्ञान आदि चार ही अरिहंत परमेष्ठी के गुण हैं ?

समकित : यह चार तो उनके मुख्य-गुण[10] हैं। इनके अलावा और भी गुण हैं। उनकी बात समय मिलने पर करेंगे।

समकित : **सिद्ध परमेष्ठी-** जिन्होंने गृहस्थ अवस्था का त्यागकर, मुनिधर्म अंगीकार कर, स्वयं की साधना से चार घाति-कर्मों को नाश[11] कर अरिहंत-दशा[12] प्रगट करके, कुछ समय बाद आयु पूरी होने पर बाकी चार अघाति-कर्मों का भी नाश होने पर, शरीर आदि का संबंध[13] छूट जाने से पूर्ण मुक्त[14] दशा को प्राप्त कर लिया है व लोक में सबसे ऊपर सिद्ध शिला के ऊपर विराजमान[15] हैं। उन्हें सिद्ध परमेष्ठी कहते हैं।

---

1.daily 2.chanting 3.familyhood 4.monkhood 5.self 6.belief 7.immersed 8.achieve 9.harm 10.major qualities 11.destroy 12.omniscient state 13.bondage 14.liberate 15.seated

प्रवेश : भाईश्री ! अघाति-कर्म किसे कहते हैं ?

समकित : जो कर्म हमारे गुणों (अनुजीवी) का घात नहीं करते यानि कि हमें कोई नुकसान नहीं पहुँचाते हैं उन्हें अघाति कर्म कहते हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! इसका अर्थ यह है कि अरिहंत परमेष्ठी के चार घाति-कर्म नष्ट हो गये हैं और सिद्ध परमेष्ठी के चार घाति व चार अघाति यानि कुल-मिलाकर[1] सभी आठों कर्म नष्ट[2] हो गये हैं ?

समकित : हाँ, बिल्कुल सही कहा।

प्रवेश : भाईश्री ! जैसे अरिहंत परमेष्ठी के चार घाति कर्म नष्ट होने से चार मुख्य गुण (अनंत चतुष्टय) प्रगट हुए हैं। उसी तरह सिद्ध परमेष्ठी के बाकी[3] चार अघाति कर्म नष्ट होने से चार और कौनसे गुण प्रगट हुए हैं ?

समकित : चार घाति कर्मों के साथ-साथ चार अघाति कर्मों का भी नाश हो जाने से सिद्ध परमेष्ठी के कुल आठ गुण प्रगट हो गये हैं:

1. अनंत ज्ञान
2. अनंत दर्शन
3. अनंत सुख (क्षायिक-सम्यक्त्व)
4. अनंत वीर्य
5. अव्यावाधत्व
6. अवगाहनत्व (अक्षय-स्थिति)
7. सूक्ष्ममत्व (अरूपित्व)
8. अगुरुलघुत्व

प्रवेश : भाईश्री ! यह सब तो बहुत कठिन है। हमें तो अरिहंत व सिद्ध परमेष्ठी का सामान्य-स्वरूप[4] ही समझा दीजिये।

समकित : तो सुनो ! जो स्वयं को जानकर, मानकर व स्वयं में पूर्णरुप-से[5] लीन होकर, पूर्ण-वीतरागी[6], पूर्ण-ज्ञानी[7] व पूर्ण-सुखी[8] हो गये हैं, वे अरिहंत और सिद्ध परमेष्ठी हैं। व यही सच्चे-देव[9] हैं।

1.in-totality 2.destroy 3.remaining 4.general-aspect 5.completely
6.completely detached 7.omniscient 8.completely blissful 9.true god

प्रवेश : भाईश्री ! सिद्ध परमेष्ठी के सभी कर्म नष्ट हो गये हैं, जबकि अरिहंत परमेष्ठी के अघाति कर्म बचे हुए हैं। फिर भी णमोकार मंत्र में सिद्ध परमेष्ठी से पहले अरिहंत परमेष्ठी को नमस्कार क्यों किया गया है?

समकित : क्योंकि सिद्ध भगवान शरीर, वाणी आदि से रहित[1] हैं और मोक्ष[2] में रहते हैं। लेकिन अरिहंत भगवान जब तक सिद्ध नहीं हो जाते तब तक शरीर, वाणी आदि के साथ हमारे बीच में रहते हैं व अनका उपदेश[3] होता है। उनके उपदेश से हमारा भला होता है। उनका उपकार[4] हम पर ज्यादा है। इसलिए णमोकार मंत्र में सिद्ध भगवान से पहले उनको नमस्कार किया गया है।

प्रवेश : भाईश्री ! आचार्य, उपाध्याय और साधु परमेष्ठी का स्वरूप भी समझा दीजिये।

समकित : हमारा अगला विषय यही है।

अशरीरी-सिद्ध भगवान, आदर्श तुम्हीं मेरे ।
अविरुद्ध शुद्ध चिद्‌घन, उत्कर्ष तुम्हीं मेरे ।। टेक ।।

सम्यक्त्व सुदर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहन ।
सूक्ष्मत्व वीर्य गुणखान, निर्बाधित सुखवेदन ।।
हे गुण अनन्त के धाम, वन्दन अगणित मेरे ।
रागादि रहित निर्मल, जन्मादि रहित अविकल ।
कुल गोत्र रहित निष्कुल, मायादि रहित निश्छल ।।
रहते निज में निश्चल,निष्कर्म साध्य मेरे ।
रागादि रहित उपयोग, ज्ञायक प्रतिभासी हा ।
स्वाश्रित शाश्वत-सुख भोग, शुद्धात्म-विलासी हो ।।
हे स्वयं सिद्ध भगवान, तुम साध्य बनो मेरे ।
भविजन तुम-सम निज-रूप, ध्याकर तुम-सम होते ।
चैतन्य पिण्ड शिव-भूप, होकर सब दुख खोते ।।
चैतन्यराज सुखखान, दुख दूर करो मेरे ।

1.devoided 2.salvation 3.preachings 4.compassion

3

# आचार्य-उपाध्याय-साधु

## (सच्चे गुरु)

समकित : पिछली कक्षा में हमने सच्चे देव यानि कि अरिहंत व सिद्ध परमेष्ठी का स्वरूप समझा था। अब हम सच्चे गुरु यानि कि आचार्य, उपाध्याय व साधु परमेष्ठी का स्वरूप समझेंगे।

प्रवेश : भाईश्री ! आचार्य, उपाध्याय, साधु ही सच्चे-गरु[1] हैं, फिर आप ?

समकित : जिस तरह तुम्हारे स्कूल के टीचर, लौकिक-शिक्षा-गुरु हैं। माता-पिता, जन्म-गुरु हैं उसी तरह मैं धार्मिक-शिक्षा-गुरु[2] हूँ। लेकिन आचार्य, उपाध्याय व साधु तो धर्म-गुरु यानि कि सच्चे गुरु हैं, परम पूज्य हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! तो क्या शिक्षा-गुरु, जन्म-गुरु पूज्य[3] नहीं हैं ?

समकित : वे लौकिक-दृष्टि[4] से तो पूज्य हैं, लेकिन धार्मिक दृष्टि से नहीं।

प्रवेश : भाईश्री ! तो फिर आचार्य, उपाध्याय व साधु का स्वरूप समझाईए न।

समकित : **आचार्य परमेष्ठी-** जो स्वयं की साधना की अधिकता[5] से प्रमुख पद प्राप्त करके मुनि-संघ के नायक[6] हुए हैं और जो मुख्यरूप-से[7] तो स्वयं की साधना में ही लीन रहते हैं, लेकिन कभी-कभी करुणाबुद्धि[8] से पात्र[9] जीवों को धर्म का उपदेश देते हैं, दीक्षा देते हैं व अपने दोष बताने वालों को प्रयाश्चित देते हैं। ऐसा आचरण[10] करने व कराने वाले आचार्य परमेष्ठी कहलाते हैं। इनके पंचाचार आदि 36 गुण होते हैं।

**उपाध्याय परमेष्ठी-** जो समस्त उपलब्ध[11] जैन आगम[12] के ज्ञाता होकर मुनि संघ में पढ़ने-पढ़ाने के अधिकारी हुए हैं। जो सभी आगम का सार[13] यानि कि स्वयं-की-साधना[14] में लीन रहते हैं, लेकिन कभी-कभी करुणा बुद्धि से आगम को स्वयं पढ़ते हैं व दूसरों को पढ़ाते हैं, वे उपाध्याय परमेष्ठी कहलाते हैं। इनके 25 गुण होते हैं।

---

1.true teachers 2.religious educator 3.venerable 4.worldly-perspective 5.supremeness 6. head 7.mainly 8.compassion 9.deserving 10.conduct 11.available 12.scriptures 13.essence 14.self-experience

**साधु परमेष्ठी-** आचार्य व उपाध्याय के अलावा सभी मुनि साधु कहलाते हैं। आचार्य व उपाध्याय की तरह यह भी स्वयं की साधना में लीन रहते हैं। साथ ही महाव्रत आदि मूल गुणों को निर्दोष-रूपसे[1] पालते हैं, समस्त आरंभ-परिग्रह[2] से रहित हैं, तपस्वी[3] हैं व दुनिया के प्रपंचों[4] से हमेंशा दूर रहते हैं। उन्हें साधु परमेष्ठी कहते हैं। साधु के पास आचार्य व उपाध्याय की तरह संघ का संचालन[5] करने व पढ़ाने की जिम्मेदारी नहीं होती। यही इनके बीच का मुख्य अंतर[6] है।

प्रवेश : भाईश्री ! आचार्य, उपाध्याय और साधु का सामान्य स्वरूप और समझा दीजिये।

समकित : जो स्वयं को जानकर, मानकर व स्वयं में आंशिकरूप-से[7] लीन होने से आंशिक वीतरागी व आंशिक सुखी हैं व पूर्ण वीतरागता[8] और पूर्ण-सुख[9] की ओर लगातार अपने कदम बढ़ा रहे हैं, वे साधु (आचार्य, उपाध्याय व साधु) हैं, वही सच्चे गुरु हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! पंच परमेष्ठियों के पास तो बहुत अच्छे-अच्छे गुण हैं। अब समझ में आया कि णमोकार मंत्र में पंचपरमेष्ठी को क्यों नमस्कार किया गया है।

समकित : पंचपरमेष्ठी का स्वरूप समझकर अब जब तुम णमोकार मंत्र में उनको नमस्कार करोगे तो सच्चा नमस्कार होगा।

प्रवेश : भाईश्री ! बाकी सब तो समझ में आ गया लेकिन एक बात समझ में नहीं आयी कि पंच परमेष्ठी को नमस्कार करने से लाभ[10] क्या है ?

समकित : वह तुमको अगली कक्षा में बताऊँगा। थोड़ा धीरज[11] रखो। जल्दी का काम शैतान का होता है।

> संत के बिना अंत की बात का अंत नहीं पाया जाता।
>
> **-आत्मसिद्धि**

1.flawlessly 2.household tasks & possessions 3.ascetic 4.delusions 5.management 6.difference 7.partially 8.complete detachment 9.complete bliss 10.benefit 11.patience

# 4

# णमोकार मंत्र का महत्व एवं फल

समकित : भाईश्री ! णमोकार मंत्र बहुत ही महत्वपूर्ण[1] मंत्र है। णमोकार मंत्र के महत्व[2] का अंदाज इसी बात से लगाया जा सकता कि जैनियों के बच्चे-बच्चे को यह याद रहता है।

प्रवेश : भाईश्री णमोकार मंत्र में ऐसी क्या बात है कि यह इतना महत्वपूर्ण है ?

समकित : वैसे तो बहुत सी बाते हैं लेकिन जो सबसे अच्छी बात है वह यह कि यह एक ऐसा मंत्र है जिसमें भगवान से कुछ माँगा नहीं गया है। क्योंकि माँगने से महत्व कम हो जाता है।

प्रवेश : अच्छा, मतलब णमोकार मंत्र में कुछ माँगा नहीं गया इसलिये यह महत्वपूर्ण है, बस... ?

समकित : दूसरा यह कि णमोकार मंत्र में किसी एक पूज्य व्यक्ति को नहीं, बल्कि पूज्य पदों[3] को नमस्कार किया गया है। और पूज्यता आती है गुणों[4] से यानि कि णमोकार मंत्र में गुणों को नमस्कार किया गया है। इसलिये यह केवल जैनों का नहीं, बल्कि जन-जन का मंत्र है।

प्रवेश : भाईश्री ! इससे क्या फर्क पड़ता है ?

समकित : यदि किसी एक पूज्य व्यक्ति को नमस्कार करते तो सिर्फ उनको ही नमस्कार पहुँचता, लेकिन गुणों को नमस्कार करने से उन सभी पूज्य व्यक्तियों को नमस्कार पहुँच जाता है, जिनके पास वे गुण हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! यह तो हुई महत्व ही बात। णमोकार मंत्र पढ़ने यानि कि पंच परमेष्ठी को नमस्कार करने का फल क्या है ?

---

1.significant 2.significance 3.venerable-states 4.qualities

समकित : **ऐसो पंचणमोयारो सव्वपावप्पणासणो।**

**मंगलाणं च सव्वेसिं पढ़मं होहि मंगलम् ।।**

अर्थ- यह णमोकार मंत्र सब पापों को नष्ट (खत्म) करने वाला है, सभी मंगलो में पहला मंगल है व इसको पढ़ने से मंगल होता है।

प्रवेश : अरे वाह ! यह तो बहुत अच्छा रहा, कितने भी पाप करो, णमोकार मंत्र पढ़ने से तो सब पाप नष्ट (खत्म) हो ही जायेंगे।

समकित : ऐसा सोचने वालों के एक भी पाप नष्ट (खत्म) नहीं होते, क्योंकि णमोकार मंत्र पढ़ते समय भी उनको ऐसे अनाप-शनाप विचार[1] आते रहते हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! यह मंगल क्या होता है ?

समकित : आज नहीं कल।

परमात्मा में परम स्नेह चाहे जिस विकट मार्ग से होता हो तो भी करना योग्य ही है।

**-श्रीमद् राजचन्द्र वचनामृत**

अहो ! देव-शास्त्र-गुरु मंगल हैं, उपकारी हैं। हमें तो देव-शास्त्र-गुरु का दासत्व चाहिए।

जिनेन्द्र मन्दिर, जिनेन्द्र प्रतिमा मंगलस्वरूप हैं: तो फिर समवसरण में विराजमान साक्षात् जिनेन्द्रभगवान की महिमा और उनके मंगलपने का क्या कहना ! सुरेन्द्र भी भगवान के गुणों की महिमा का वर्णन नहीं कर सकते, तब दूसरे तो क्या कर सकेंगे ?

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1.useless thoughts

# 5
# मंगल

समकित : पिछली कक्षा में तुमने मंगल का मतलब पूछा था। आज हम मंगल का मतलब समझेंगे।

जो पापों को गलावे (खत्म करे) व सुख को लाये उसे **मंगल** कहते हैं।

प्रवेश : ऐसे मंगल कौन हैं ?

समकित : तुम रोज ही चत्तारि दण्डक पाठ में पढ़ते हो।

**चत्तारि मंगलं, अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,**

**साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।**

प्रवेश : भाईश्री ! यह हम पढ़ते तो हैं लेकिन इसका मतलब हमें नहीं पता।

समकित : बिना मतलब समझे कोई भी चीज रट्टू तोते की तरह पढ़ते रहना यह समझदार लोगों का काम नहीं है।

प्रवेश : भाईश्री ! अब से हम समझकर ही कोई पाठ पढ़ा करेंगे।

समकित : तो सुनो ! इस पाठ का अर्थ ऐसा है–लोक में चार मंगल हैं, अरिहंत भगवान मंगल हैं, सिद्ध भगवान मंगल हैं, साधु मंगल हैं और केवली भगवान का बताया हुआ वीतरागी जैन धर्म मंगल है।

प्रवेश : णमोकार मंत्र में तो पाँच परमेष्ठी की बात की थी लेकिन यहाँ चत्तारि दण्डक में तो अरिहंत, सिद्ध व साधु इन तीन परमेष्ठियों को ही मंगल कहा ?

समकित : आचार्य और उपाध्याय परमेष्ठी भी तो साधु ही हैं। बस उनके पास संघ की कुछ जिम्मेदारियाँ अधिक[1] हैं। पर हैं तो आखिर[2] साधु ही। और फिर मोक्ष जाने के लिए अरिहंत, सिद्ध और साधु बनना तो जरुरी है लेकिन आचार्य व उपाध्याय बनना नहीं।

---

1.additional 2.ultimately

प्रवेश : इसका मतलब यह हुआ कि अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु व वीतरागी जैन धर्म मंगल है ?

समकित : हाँ, यह सभी मंगल हैं और इनमें भक्ति-भाव[1] होने से, हमें इनके बताये हुए रास्ते पर चलने की प्रेरणा[2] मिलती है और हमारा भी मंगल होता है।

प्रवेश : चत्तारि दण्डक में तो मंगल के साथ उत्तम व शरण की भी बात आती है, वह क्या है ?

समकित : इसकी चर्चा हम अगली कक्षा में करेंगे।

निरखो अंग-अंग जिनवर के, जिनसे झलके शांति अपार ।।टेक।।

चरण-कमल जिनवर कहें, घूमा सब संसार ।
पर क्षणभंगुर जगत में, निज आत्मतत्व ही सार ।
यातें पद्मासन विराजे जिनवर, झलके शांति अपार ।।1।।

हस्त-युगल जिनवर कहें, पर का कर्ता होय ।
ऐसी मिथ्या बुद्धि से ही, भ्रमण-चतुर्गति होय ।
यातें कर पे कर विराजे जिनवर, झलके शांति अपार ।।2।।

लोचन-द्वय जिनवर कहें, देखा सब संसार ।
पर दुःखमय गति-चार में, ध्रुव आत्मतत्व ही सार ।
यातें नासादृष्टि विराजे जिनवर, झलके शांति अपार ।।3।।

अन्तर्मुख मुद्रा अहो, आत्मतत्व दरसाय ।
जिन-दर्शन कर निज-दर्शन पा सत्-गुरु वचन सुहाय ।
यातें अन्तर्दृष्टि विराजे जिनवर झलके शांति अपार ।।4।।

1.gratitude 2.inspiration

# 6

# उत्तम व शरण

समकित : पिछली कक्षा में हमने देखा कि अरिहंत, सिद्ध, साधु व केवली भगवान का बताया हुआ वीतरागी जैन धर्म लोक में मंगल है। आज हम उत्तम व शरण के बारे में चर्चा करेंगे।

**उत्तम** कहते हैं सबसे महान[1] को। सबसे महान का मतलब है–सबसे अच्छा यानि कि वह चीज जिससे अच्छा दुनिया में और कुछ भी न हो।

प्रवेश : ऐसे उत्तम कौन हैं ?

समकित : लोक (दुनिया) में चार उत्तम हैं, जैसा कि हम रोज बोलते हैं:

**चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,**

**साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ।**

अर्थ– लोक में चार उत्तम हैं, अरिहंत भगवान उत्तम हैं, सिद्ध भगवान उतम हैं, साधु (आचार्य, उपाध्याय व साधु) उत्तम हैं और केवली भगवान का बताया हुआ वीतरागी जैन धर्म उत्तम है।

प्रवेश : और शरण ?

समकित : **शरण** सहारे[2] को कहते हैं। जो हमको भयरहित[3] करे वही शरण है। मंगल और उत्तम की तरह शरण भी चार हैं:

**चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्ण्त्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।**

अर्थ– मैं चार की शरण में जाता हूँ, मैं अरिहंत भगवान की शरण में जाता हूँ, सिद्ध भगवान की शरण में जाता हूँ, साधु (आचार्य, उपाध्याय व साधु) की शरण में जाता हूँ और केवली भगवान द्वारा बताये गये वीतरागी जैन धर्म की शरण में जाता हूँ।

---

1.greatest 2.aid 3.fearless

प्रवेश : पंचपरमेष्ठी की शरण में जाना तो समझ में आता है लेकिन वीतरागी जैन धर्म की शरण में जाने का मतलब क्या है ?

समकित : पंच परमेष्ठी द्वारा बताया गया मार्ग (रास्ता) ही वीतरागी जैन धर्म है। उस रास्ते पर चलना ही जैन धर्म की व पंच परमेष्ठी की शरण में जाना है।

प्रवेश : वह मार्ग (रास्ता) क्या है ?

समकित : वह रास्ता है- स्वयं[1] की शरण में जाना। पंच परमेष्ठी भी यही कर रहे हैं। वह भी स्वयं की शरण में हैं। इसलिए पंचपरमेष्ठी भी जिसकी शरण में हैं, हमें भी उसी की शरण में जाना चाहिए। ऐसा करने से हमारे सारे दुःख[2] दूर होकर सच्चे-सुख[3] की प्राप्ति[4] हो सकती है। सच्चे सुख की प्राप्ति ही मोक्ष की प्राप्ति है।

प्रवेश : यह केवली कौन होते हैं ? क्या तीर्थंकर को ही केवली कहते हैं ?

समकित : अगली कक्षा में यह भी पता चल जायेगा।

देखो जी आदीश्वर स्वामी, कैसा ध्यान लगाया है ।
कर ऊपर कर सुभग विराजै, आसन थिर ठहराया है ।।टेक।।
जगत विभूति भूति सम तजकर, निजानन्द पद ध्याया है ।
सुरभित श्वासा आशा वासा, नासा दृष्टि सुहाया है ।।1।।
कंचन वरन चले मन रंच न, सुर-गिरि ज्यों थिर थाया है ।
जास पास अहि मोर मृगी हरि, जाति विरोध नशाया है ।।2।।
शुध-उपयोग हुताशन में जिन, वसुविधि समिध जलाया है ।
श्यामलि अलकावलि सिर सोहे, मानो धुआँ उड़या है ।।3।।
जीवन-मरन अलाभ-लाभ जिन सबको नाश बताया है ।
सुर नर नाग नमहिं पद जाके ''दौल'' तास जस गाया है ।।4।।

1.self 2.miseries 3.real bliss 4.achievement

# 7

# सामान्य केवली व तीर्थंकर

समकित : पिछली कक्षा में तुमने केवली व तीर्थंकर के बारे में पूछा था। आज हम उसी बारे में बात करेंगे।

प्रवेश : जी भाईश्री ! मुझे तो रात-भर इसी बात का इंतजार रहा।

समकित : अरे ! इतनी वेसब्री ठीक नहीं। हर काम अपना समय आने पर ही होता है। सुनो ! जिन्होंने गृहस्थ दशा त्यागकर, मुनि धर्म अंगीकार कर, स्वयं[1] की साधना द्वारा चार घाति-कर्मों का नाश करके अनंत चतुष्टय प्रगट कर लिये हैं, वे सभी अरिहंत भगवान केवलज्ञान (अनंत-ज्ञान) आदि वाले होने के कारण केवली कहलाते हैं। यह केवली ही अरि (शत्रुओं[2]) यानि कि घाति-कर्मों का हनन (नाश) करने वाले होने के कारण अरिहंत कहलाते हैं।

प्रवेश : यह केवलज्ञान (अनंत-ज्ञान[3]) क्या होता है ?

समकित : जो ज्ञान सबको एक साथ जाने उसे केवलज्ञान कहते हैं। केवलज्ञानी यानि कि केवली को कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता।

प्रवेश : और तीर्थंकर ?

समकित : केवली या कहो कि अरिहंत दो प्रकार के होते हैं:

1. सामान्य केवली या अरिहंत
2. तीर्थंकर केवली या अरिहंत

प्रवेश : क्या ये दोनों ही भगवान नहीं हैं ?

समकित : क्यों नहीं हैं ? जिन्होंने घाति-कर्मों का नाश किया, केवलज्ञान आदि प्रगट किये यानि कि अरिहंत दशा प्रगट की, वे सभी भगवान हैं। चाहे तीर्थंकर केवली हों या सामान्य केवली।

---

1.self 2.enemies 3.infinite-knowledge

प्रवेश : फिर दोनों में अंतर क्या है ?

समकित : जो धर्म-तीर्थ यानि कि मोक्ष-मार्ग[1] का उपदेश देते हैं, तीर्थंकर प्रकृति नाम के महान पुण्य के उदय[2] के कारण जो समवसरण आदि बाहरी-वैभव[3] से सहित होते हैं, उन्हें तीर्थंकर कहते हैं। वे चौबीस होते हैं।

प्रवेश : उनको तीर्थंकर प्रकृति का उदय क्यों होता है ?

समकित : क्योंकि, उन्होंने पिछले जन्म में यह मंगल भावना भायी थी कि यह मोक्षमार्ग का उपदेश जन-जन तक पहुँचे।

प्रवेश : वे चौबीस तीर्थंकर कौन-कौन से हैं ?

समकित: वे चौबीस तीर्थंकर हैं-

01. ऋषभदेव (आदिनाथ)
02. अजितनाथ
03. संभवनाथ
04. अभिनंदननाथ
05. सुमतिनाथ
06. पद्मप्रभ
07. सुपार्श्वनाथ
08. चन्द्रप्रभ
09. पुष्पदंत (सुविधिनाथ)
10. शीतलनाथ
11. श्रेयांसनाथ
12. वासुपूज्य
13. विमलनाथ
14. अनंतनाथ
15. धर्मनाथ
16. शांतिनाथ
17. कुंथुनाथ
18. अरनाथ
19. मल्लिनाथ
20. मुनिसुव्रतनाथ
21. नमिनाथ
22. नेमिनाथ (अरिष्ट-नेमि)
23. पार्श्वनाथ
24. महावीर (वर्द्धमान,वीर, अतिवीर, सन्मति)

1.path to salvation 2.arise 3.external magnificence

प्रवेश : और सामान्य केवली ?

समकित : **सामान्य केवली को तीर्थंकर प्रकृति का उदय नहीं होने से समवसरण आदि बाहरी वैभव नहीं होता, लेकिन अंतरंग-वैभव[1] यानि कि अनंत चतुष्टय तीर्थंकर जैसा ही होता है।** सामान्य केवली तो अनेक होते हैं। भगवान भरत व बाहुबली सामान्य केवली ही तो थे।

प्रवेश : भाईश्री ! यह भरत व बाहुबली कौन थे ?

समकित : यह दोनों पहले तीर्थंकर राजा ऋषभदेव के पुत्र थे, जो आगे चलकर भगवान (सामान्य केवली) बने।

प्रवेश : कृपया पहले तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के बारे में बताईये।

समकित : ठीक है ! उनकी कहानी तुमको कल सुनाता हूँ।

राजा ऋषभदेव राजकुमारी ब्राह्मी व सुंदरी को पढ़ाते हुये

1.internal-magnificence

# ४
# तीर्थंकर ऋषभदेव

समकित : आज हम भगवान ऋषभदेव की कहानी सुनेंगे।

प्रवेश : हमने तो सुना है कि कोई जन्म से ही भगवान नहीं होता, भगवान तो पुरुषार्थ[1] से बना जाता है।

समकित : बिल्कुल ठीक सुना है। इंसान ही स्वयं की साधना करके भगवान बन जाते हैं।

प्रवेश : अच्छा इसीलिए हम रोज कक्षा खत्म होने के बाद पढ़ते हैं-

**भक्त नहीं, भगवान बनेंगे।**

समकित : हाँ, आखिर जैन धर्म भक्त से भगवान बनाने वाला धर्म ही तो है।

प्रवेश : भाईश्री ! अब तो इंतजार नहीं हो पा रहा।

समकित : हाँ, हाँ सुनाता हूँ। राजकुमार ऋषभदेव का जन्म अयोध्या के क्षत्रिय राजा नाभिराय की रानी मरुदेवी के गर्भ से हुआ था।

प्रवेश : वे क्षत्रिय थे ? यानि कि जैन नहीं थे ?

समकित : यह तुमसे किसने कह दिया कि क्षत्रिय का मतलब अजैन होता है। क्षत्रिय का मतलब तो होता है-राज्य[2] करने वाले। जो राज्य करता है चाहे वह जैन हो या अजैन, क्षत्रिय ही है। क्षत्रिय यह उनका वर्ण (पेशा[3]) था और जैन उनका धर्म था। चौबीसों तीर्थंकरों का जन्म राज्य करने वाले क्षत्रिय जैन राजाओं के यहाँ ही हुआ है।

प्रवेश : तो फिर बड़े होकर राजकुमार ऋषभदेव ने भी राज्य किया ?

समकित : हाँ, उन्होंने राज्य भी किया और शादी भी। राजा ऋषभदेव की दो रानियाँ थी। पहली नंदा और दूसरी सुनंदा, रानी नंदा से उनको भरत आदि सौ पुत्र और ब्राह्मी नाम की पुत्री थी।

---
1.efforts 2.rule 3.profession

प्रवेश : और रानी सुनंदा से ?

समकित : रानी सुनंदा से बाहुबली नाम का पुत्र और सुंदरी नाम की पुत्री थी।

प्रवेश : उनकी पुत्रियाँ भी थी ?

समकित : हाँ, और वह उनसे बहुत स्नेह करते थे। तभी तो उन्होंने पुत्रों की तरह अपनी पुत्रियों को भी पढ़ाया-लिखाया।

प्रवेश : उन्होंने अपनी पुत्री ब्राह्मी व सुंदरी को क्या पढ़ाया ?

समकित : उन्होंने ब्राह्मी को अक्षर-विद्या[1] व सुंदरी को अंक-विद्या[2] सिखाई। आज भी राजकुमारी ब्राह्मी के नाम पर ब्राह्मी-लिपि[3] प्रचलित[4] है।

प्रवेश : यह तो हुई राजा ऋषभदेव की बात, वे भगवान ऋषभदेव कैसे बने ?

समकित : एक बार की बात है राजा ऋषभदेव का जन्मदिन मनाया जा रहा था। राजसभा में नीलांजना नाम की देवी का नृत्य[5] चल रहा था। अचानक नृत्य करते-करते नीलांजना की मृत्यु हो गयी। संसार की नश्वरता[6] को देख ऋषभदेव को संसार से वैराग्य[7] हो गया और सब कुछ त्याग कर उन्होंने वन-जंगल में जाकर मुनि-दीक्षा अंगीकार[8] कर ली और छह महीने तक स्वयं की साधना में लीन रहे। उसके बाद छह महीने तक उन्हें आहार नहीं मिला।

प्रवेश : मतलब पूरे एक साल तक उन्होंने कुछ नहीं खाया ?

समकित : हाँ, एक साल बाद अक्षय-तृतीया(आखातीज) के दिन उन्हें हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस ने इक्षु-रस[9] का आहार-दान दिया। उसी दिन से यह अक्षय-तृतीया पर्व[10] चल पड़ा व राजा श्रेयांस को दानवीर कहा जाने लगा।

प्रवेश : राजा ऋषभदेव, मुनि ऋषभदेव तो बन गये लेकिन भगवान ऋषभदेव वह कैसे बने ?

---

1.letters 2.numbers 3.brahmi-script 4.popular 5.dance-performance 6.mortality 7.detachment 8.adopt 9.sugarcane-juice 10.festival

समकित : पूरे एक हजार वर्ष तक वे वन-जंगल में मौन रहकर स्वयं की साधना करते रहे व एक दिन पूर्ण-आत्मलीनता[1] हो जाने पर उन्हें अनंत चतुष्टय यानि कि केवलज्ञान आदि की प्राप्ति हो गयी। अब वे साधु से केवली यानि कि अरिहंत हो गये। अरिहंत होते ही उनको तीर्थंकर प्रकृति का उदय आ गया और उनके उपदेश के लिए इंद्र के कहने पर कुबेर द्वारा समवसरण[2] की रचना की गयी। समवसरण में भगवान के उपदेश (दिव्य-ध्वनि) के द्वारा भव्य[3] जीवों को सच्चे सुख (मोक्ष) के मार्ग[4] का ज्ञान हुआ।

प्रवेश : फिर ?

समकित : उसके बाद आयु पूरी होने पर वे शरीर आदि को भी छोड़कर सिद्ध हो गये। यानि कि लोक में सबसे ऊपर जाकर मोक्ष में स्थित[5] हो गये व हमेंशा वहाँ ही रहेंगे न चलेंगे न बोलेंगे न खायेंगे-पीयेंगे।

प्रवेश : फिर वहाँ रहकर वह क्या करेंगे ?

समकित : वे वहाँ रहकर हमेंशा, हर समय, अनंत-सुख यानि कि सच्चे व पूर्ण सुख का भोग[6] करेंगे। इसी का नाम तो मोक्ष है।

प्रवेश : हमें भी यदि ऐसा सुख पाना हो तो क्या करना होगा ?

समकित : जो उन्होंने किया। स्वयं[7] यानि कि आत्मा[8] की साधना करनी होगी।

प्रवेश : यह **स्वयं** यानि कि **आत्मा** कौन है? कैसा है? और आत्मा की साधना किसे कहते हैं ?

समकित : यह हम अगली कक्षा में देखेंगे।

प्रयोजन तो एक आत्मा का ही रखना। आत्मा का रस आये वहाँ विभावका रस झर जाता है।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1.complete self-immersedness 2.discourse pavilion 3.deserving 4.path 5.seated 6.experience 7.self 8.soul

# 9
# शुद्धातम है मेरा नाम

**शुद्धातम है मेरा नाम,**
**मात्र जानना मेरा काम,**
**मुक्तिपुरी है मेरा धाम,**
**मिलता जहाँ पूर्ण विश्राम।**

अर्थ- आपके पिछले सवाल के जवाब में कवि कहते हैं कि मैं शुद्ध आत्मा हूँ। मेरा काम सिर्फ जानना है। और मेरा असली घर मोक्ष है जहाँ सिद्ध भगवान रहते हैं, क्योंकि वहीं पूर्ण व सच्चा सुख मिलता है।

प्रवेश : पूर्ण व सच्चा सुख किसे कहते हैं ?

समकित : इस सवाल के जवाब में कवि कहते हैं:

**जहाँ भूख का नाम नहीं है,**
**जहाँ प्यास का काम नहीं है,**
**खाँसी और जुखाम नहीं है,**
**आधि-व्याधि का नाम नहीं है,**
**सत् शिव सुंदर मेरा धाम।**

अर्थ- सच्चा व पूर्ण सुख उसे कहते हैं, जहाँ भूख-प्यास आदि की तकलीफ (आकुलता) नहीं है, सर्दी-जुखाम आदि कोई बीमारी नहीं है। न कोई मानसिक[1] बीमारी (कष्ट) है न ही शारीरिक[2]। ऐसा सच्चा व पूर्ण सुख तो मोक्ष में ही मिलता है इसलिए मोक्ष ही सत्य है, हमारा भला करनेवाला (शिव) है और सबसे सुंदर है।

प्रवेश : ऐसे मोक्ष को पाने का उपाय क्या है ?

समकित : इस सवाल के जवाब में कवि कहते हैं:

**स्व-पर भेद विज्ञान करेंगे,**
**निज आतम का ध्यान करेंगे,**

---

1.mental 2.physical

**राग-द्वेष का त्याग करेंगे,**
**चिदानंद रस पान् करेंगे,**
**सब सुख दाता मेरा धाम।**

अर्थ- मोक्ष की प्राप्ति के लिये हमको भेद-विज्ञान करना होगा यानि कि स्वयं को जानना होगा, स्वयं मे अपनापन करना होगा व स्वयं का ध्यान करना होगा यानि कि स्वयं मे लीन होना होगा। ऐसा भेद-विज्ञान करने से हमारे दुःखों के कारण मोह[1], राग-द्वेष[2] खत्म हो जायेंगे एवं पूर्ण ज्ञान व पूर्ण आनंद (सुख) हमको प्राप्त होगा। क्योंकि मेरा आत्मा ही मेरे सुख का घर है। **जो मैं स्वयं हूँ।**

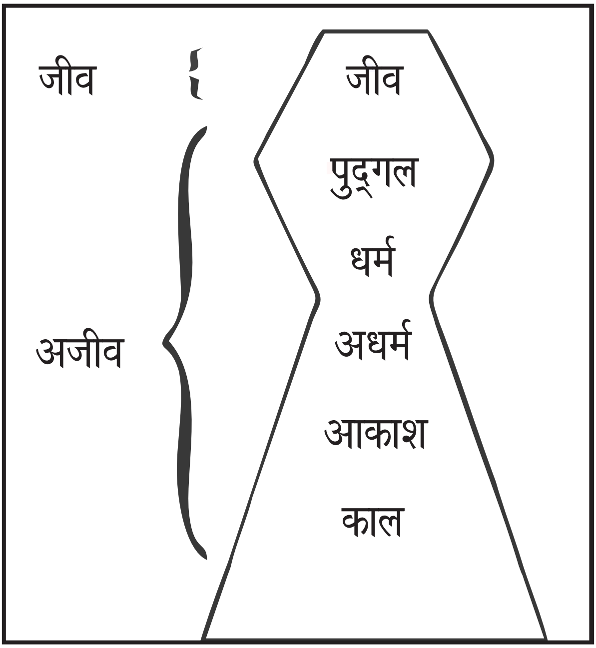


**विश्व/लोक**

1.false belief 2.attachment-malice

# 1

# विश्व

प्रवेश : भाईश्री ! स्तवन[1] में आता है कि भगवान सर्वज्ञ हैं, यानि वे सब कुछ जानते हैं। कृपया बताईए वे क्या-क्या जानते हैं ?

समकित : जो कुछ विश्व में है वह सब भगवान जानते हैं।

प्रवेश : विश्व में क्या-क्या है ?

समकित : विश्व में वस्तुएँ[2] हैं। जिस चेयर पर तुम बैठे हो वह भी एक वस्तु है, यह पुस्तक भी एक वस्तु है, यह ब्लैकबोर्ड, पंखा यहाँ तक कि हम और तुम भी एक वस्तु हैं। वस्तु को ही द्रव्य कहते हैं। वास्तव-में[3] इन **द्रव्यों का समूह[4] ही विश्व है।** यानि कि यह विश्व, द्रव्यों से मिलकर बना है।

प्रवेश : भाईश्री ! और द्रव्य किनसे मिलकर बना है ?

समकित : **गुणों[5] का समूह द्रव्य है**, यानि कि द्रव्य गुणों से मिलकर बना है।

प्रवेश : भाईश्री ! इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक[6] द्रव्य, गुणों से भरपूर है ?

समकित : हाँ, प्रत्येक द्रव्य में अनंत गुण हैं। गुण का अर्थ है- शक्ति[7]।

प्रवेश : भाईश्री ! किसी उदाहरण[8] से समझाईये।

समकित : **जैसे मान लो**, आम एक द्रव्य है और उसमें एक रंग नाम का गुण है, एक रस[9] नाम का गुण है, एक गंध[10] नाम का गुण है। ऐसे अनेक गुणों से मिलकर ही आम बना है। इसीलिए कहते है कि गुणों का समूह ही द्रव्य है।

---

1.prayer 2.objects 3.actually 4.group 5.attributes
6.each & every 7.ability 8.example 9.taste 10.smell

प्रवेश : अच्छा मतलब द्रव्यों का समूह विश्व है और गुणों का समूह द्रव्य। तो फिर गुण किसका समूह है ?

समकित : एक के बाद एक होने वाली पर्यायों का समूह गुण है।

प्रवेश : भाईश्री ! यह पर्याय क्या होती हैं ?

समकित : पर्याय कहते हैं दशा/अवस्था/हालत/states को।

प्रवेश : जैसे ?

समकित : **जैसे हमने माना था कि** आम एक द्रव्य है, रंग उसका गुण है और हरापन, पीलापन, कालापन उसकी पर्यायें[1]। जो कि एक के बाद एक[2] बदलती रहती हैं।

प्रवेश : मतलब पहले आम (द्रव्य) के रंग (गुण) की हरी पर्याय होती है, उसके बाद पकने पर पीली और उसके बाद सड़ जाने पर काली पर्याय होती है, यही न ?

समकित : हाँ, बिल्कुल सही समझे। द्रव्य और गुण वैसे के वैसे[3] रहते हैं लेकिन उनकी पर्याय बदलती रहती हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! यह द्रव्य कितने प्रकार[4] के होते हैं ?

समकित : द्रव्य छह प्रकार के होते हैं:

1. जीव 2. पुद्गल 3. धर्म 4. अधर्म 5. आकाश 6. काल

इनमें पहला जीव[5] द्रव्य है। बाकी के पाँच (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल) अजीव[6] द्रव्य हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! यह जीव-अजीव क्या होता है ?

समकित : यह हम अगली कक्षा में समझेंगे। तुम भी घर पर पूछ कर आना।

1.states 2.serially 3.as it is 4.types 5.living 6.non-living

# 2

# जीव-अजीव

समकित : पिछली कक्षा में हमने छह द्रव्यों के नाम देखे थे। जिसमें पहला जीव द्रव्य है। बाकी के पाँच अजीव द्रव्य हैं। आज हम उनको समझेंगे। लेकिन पहले तुम बताओ।

प्रवेश : भाईश्री ! दादी ने बताया कि जो जान सकता है, सुख-दुख का अनुभव[1] कर सकता है वह जीव द्रव्य है और जो जान नहीं सकते, सुख-दुख का अनुभव नहीं कर सकते वह अजीव द्रव्य हैं।

समकित : बिल्कुल सही कहा। जिसमें ज्ञान गुण है, वह जीव द्रव्य होता है और जिसमें ज्ञान गुण नहीं है वह अजीव द्रव्य होता है। ज्ञान गुण का मतलब है- जानने की शक्ति[2] ।

प्रवेश : तो क्या पुद्‌गल आदि पाँच द्रव्य जान नहीं सकते ?

समकित : नहीं।

प्रवेश : यह पुद्‌गल क्या होता है ?

समकित : यह चेयर जिसपर तुम बैठे हो, यह पैन जिससे तुम लिख रहे हो, यह कागज जिस पर तुम लिख रहे हो, यहाँ तक कि जो कुछ तुमको दिखाई देता है, वह सब पुद्‌गल ही तो है। क्योंकि पुद्‌गल ही तो दिखाई देता है ।

प्रवेश : ऐसा क्यों ?

समकित : क्योंकि जैसे सिर्फ जीव में ही ज्ञान गुण है, दूसरे द्रव्यों मे नहीं। वैसे ही सिर्फ पुद्‌गल में ही रंग (वर्ण) नाम का गुण है, दूसरे द्रव्यों मे नहीं। और रंग गुण की पर्याय ही तो दिखाई देती हैं।

---

1.experience 2.ability

प्रवेश : भाईश्री ! ऐसे तो हमारा शरीर भी दिखाई देता है, तो क्या यह भी पुद्गल है ?

समकित : हाँ, बिल्कुल।

प्रवेश : लेकिन आपने तो कहा कि जिसमें ज्ञान गुण है, यानि कि जो जान सकता है वह जीव है ?

समकित : तो ?

प्रवेश : तो शरीर में जो आँख है वह देखती है, कान सुनता है, नाक सूँघती है। यह सब एक तरह से जानना ही तो है ?

समकित : हाँ, यह सब जानना ही है, लेकिन यह जानने वाला शरीर या उसके अंग[1] नहीं बल्कि शरीर के अंदर (साथ) रहने वाला जीव है, यानि कि आत्मा[2] है या कहो कि **हम स्वयं** हैं।

प्रवेश : लेकिन आत्मा तो दिखती नहीं। आँख वगैरह ही जानने का काम करती हुई दिखती हैं ?

समकित : यदि ऐसा है तो फिर मृत्यु हो जाने पर आँखें क्यों नहीं देखती, कान क्यों नहीं सुनते, नाक क्यों नही सूँघती ? कुछ भी जानने का काम क्यों नहीं होता ? सुख-दुख का अनुभव[3] क्यों नहीं होता ?

प्रवेश : भाईश्री ! यह तो हमने कभी सोचा ही नहीं कि ऐसा क्यों होता है ?

समकित : ऐसा इसलिए होता है कि जो जानने वाला जीव यानि आत्मा था वो इस गति के शरीर को छोड़कर दूसरी गति के शरीर में चला गया।

प्रवेश : भाईश्री ! यह गति क्या होती हैं ?

समकित : वह मैं कल बताऊँगा।

1.parts 2.soul 3.experience

# 3
# गतियाँ

समकित : कल हमने देखा था कि जीव एक गति के शरीर को छोड़कर, दूसरी गति के शरीर में चला जाता है। आज हम समझेंगे कि यह गति क्या है?

प्रवेश : भाईश्री ! थोड़ा आसान करके समझायें, क्योंकि यह शब्द सुनने में ही नये से लगते हैं।

समकित : हाँ बिल्कुल ! जीव की स्थूल-पर्यायों को गति कहते हैं।

प्रवेश : जीव की स्थूल-पर्याय मतलब ?

समकित : मोटे तौर पर[1] संसार में जीव चार स्थूल-पर्यायों में पाये जाते हैं। इनको ही गति कहते हैं।

प्रवेश : वे गतियाँ कौन-कौन सी होती हैं ?

समकित : गतियाँ चार होती हैं:

1. मनुष्य 2. तिर्यंच 3. नरक 4. देव

प्रवेश : अच्छा ! जैसे हम मनुष्य हैं, पशु-पक्षी आदि तिर्यंच हैं ?

समकित : हम मनुष्य गति के शरीर में हैं, इसलिए हम मनुष्य कहलाते हैं। असल में तो हम सब **जीव यानि कि आत्मा** हैं।

प्रवेश : और तिर्यंच ?

समकित : पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, कीड़े-मकोड़े आदि तिर्यंच गति के शरीर में हैं, इसलिए वे तिर्यंच कहलाते हैं। हैं तो वे भी हमारी तरह जीव (आत्मा) ही।

---

1.broadly

जब जीव मनुष्य गति का शरीर छोड़कर तिर्यंच गति के शरीर में चला जाता है तब तिर्यंच कहलाने लगता है और जब तिर्यंच गति का शरीर छोड़कर मनुष्य गति के शरीर में चला जाता है तब मनुष्य कहलाने लगता है।

प्रवेश : इसका मतलब वो किसी भी गति के शरीर में जाये, कुछ भी कहलाये असल में रहता वह जीव (आत्मा) ही है।

समकित : हाँ, बिल्कुल सही समझे।

प्रवेश : हम सब मनुष्य गति में है, पशु-पक्षी आदि तिर्यंच गति में हैं। फिर नारकी और देव ?

समकित : जो मनुष्य या तिर्यंच गति का शरीर छोड़कर नरक गति के शरीर में जन्म लेते हैं, उन्हें नारकी कहते हैं व जो देव गति के शरीर में जन्म लेते हैं उन्हें देव कहते हैं।

प्रवेश : सुना है कि नरक में तो बहुत दुःख सहने पड़ते हैं ?

समकित : नरक क्या, चारों गतियों में दुःख ही दुःख हैं। हाँ, इतना जरुर है कि नरक में सबसे ज्यादा हैं।

प्रवेश : नरक में सबसे ज्यादा दुःख क्यों हैं ?

समकित : क्योंकि वहाँ के जीव (नारकी) बहुत तीव्र[1] कषाय (क्रोध आदि) वाले हैं और वहाँ का वातावरण भी बहुत ही भयानक[2] है । शरीर को जला देने वाली भयंकर गर्मी और शरीर को गला देने बाली भयंकर सर्दी वहाँ पड़ती है। खाने को भोजन नहीं, पीने को पानी नहीं। जबकि कषाय (इच्छा) ज्यादा होने के कारण भूख-प्यास बहुत तेज लगती है। हमेंशा मार-काट मची रहती है। तीव्र कषाय के कारण नारकी जीव आपस में लड़ते रहते हैं।

प्रवेश : इसका मतलब है नरक में जीव अपनी कषायों के कारण ही दुःखी हैं ?

1.intense 2.terrible

समकित : नरक में ही नहीं, **चारों ही गतियों में जीव अपने मिथ्यात्व[1] व कषायों[2] के कारण ही दुःखी है।**

प्रवेश : तो क्या स्वर्ग के देव भी दुःखी हैं ?

समकित : हाँ बिलकुल ! यह बात और है कि देवों की कषाय दूसरों के मुकाबले थोड़ी मंद[3] होती है। इसलिए देवता दूसरों के मुकाबले थोड़े कम दुःखी हैं पर हैं तो दुःखी ही। क्योंकि जब तक मिथ्यात्व व कषाय पूरी तरह से खत्म नहीं हो जाती तब तक पूरी तरह से दुःख दूर नहीं हो सकता, सच्चा सुख नहीं मिल सकता।

प्रवेश : मतलब चारों ही गतियों में दुःख ही दुःख है। इनमें रहकर सच्चा सुख नहीं मिल सकता ?

समकित : हाँ, मिथ्यात्व व कषायों के कारण चारों गतियों में भटकने का नाम ही संसार है और संसार में सुख नहीं हो सकता। क्योंकि यदि संसार में सुख होता तो तीर्थंकर, संसार यानि कि चारों गतियों का त्याग कर के पंचम[4] गति में क्यों जाते ?

प्रवेश : यह पंचम गति क्या है ? आपने तो कहा था कि गतियाँ चार होती हैं?

समकित : तुमने ध्यान से नहीं सुना। मैंने कहा था संसार में चार गतियाँ हैं। पंचम गति तो संसार से पार है, यानि कि मोक्ष ही पंचम गति है।

प्रवेश : जीव चारों गतियों मे क्यों भटकता है ?

समकित : इसका उत्तर हम अगली कक्षा में देखेंगे।

> अनुकूलता में नहीं समझता तो भाई ! अब प्रतिकूलता में तो समझ ! किसी प्रकार समझ... समझ और वैराग्य लाकर आत्मा में जा।
>
> **–बहिनश्री के वचनामृत**

1.false belief 2.attachment-malice 3.low 4. fifth

# 4

# मिथ्यात्व और कषाय

समकित : कल हमने देखा कि जीव एक गति से दूसरी गति में भटक-भटक कर अनेक दुःख भोग रहा है।आज हम इस भटकन के कारण को समझेंगे। क्या तुम बता सकते हो कि वे कारण कौन से हैं ?

प्रवेश : भाईश्री ! कल आपने कहा था कि चारों गतियों में जीव अपने मिथ्यात्व और कषाय के कारण ही दुःखी हो रहा है, तो चारों गतियों में भटकने का कारण भी शायद मिथ्यात्व और कषाय ही होंगे ?

समकित : शायद नहीं, 100 प्रतिशत[1] यही कारण है। मिथ्यात्व और कषाय ही चारों गतियों में भटकने के कारण हैं और यह ही चारों गतियों में रहकर दुःखी होते रहने के भी कारण हैं और इसी का नाम संसार है।

प्रवेश : यह मिथ्यात्व और कषाय क्या बला है ?

समकित : यह बला नहीं, हमारी ही गल्तियाँ हैं।

प्रवेश : कृपया एक-एक करके समझाईए।

समकित : हाँ, ठीक है !

**मिथ्यात्व-** स्वयं को यानि कि आत्मा को नहीं पहिचानना ही मिथ्यात्व[2] है और जो आत्मा को नहीं पहिचानने देते बल्कि हमें संसार में ही फसा कर रखते हैं, ऐसे कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु में श्रद्धा[3] रखना भी मिथ्यात्व कहलाता है।

प्रवेश : ये कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु क्या होते हैं ?

समकित : जो वीतराग, सर्वज्ञ व हित-उपदेशी नहीं हैं ऐसे देवी-देवता **कुदेव** हैं। मोही (मिथ्यात्वी) व रागी-द्वेषी (कषायी) एवं कषाय को धर्म बताने वाले साधु **कुगुरु** हैं और उनके द्वारा लिखे गये कषाय को धर्म बताने वाले कल्पित[4] शास्त्र **कुशास्त्र** हैं। इनका साथ करने से हम भी

---

1.percent 2.false belief 3.faith 4.imaginary

झूठे रास्ते में लग जाते हैं और अपनी आत्मा से व आत्मा का ज्ञान देने वाले सच्चे देव-शास्त्र-गुरु से दूर हो जाते हैं।

प्रवेश : और कषाय ?

समकित : **कषाय-** आत्मा में लीन नहीं होना और दूसरों की तरफ देख-देख कर राग-द्वेष यानि कि क्रोध, मान, माया व लोभ करते रहना यह कषाय है।

प्रवेश : मतलब कषाय चार होती हैं ?

समकित : हाँ, कषाय चार होती हैं:

1. क्रोध[1] 2. मान[2] 3. माया[3] 4. लोभ[4]

प्रवेश : कृपया एक-एक कर के समझाईये ?

समकित : ठीक है, सुनो ! जब हम अपने में लीन नहीं होते, तब दूसरों में ही लीन रहते हैं। यानि कि दूसरों की तरफ देख-देख कर उनको अपने हिसाब-से चलाना चाहते हैं और यदि वे हमारे हिसाब से न चले तो हम उनपर क्रोध (गुस्सा) करते हैं। उनको अपने हिसाब से चलाने के लिये छल-कपट (मायाचारी) करते हैं। यदि वे हमारे हिसाब से चलें तो हम मान (घमंड) करते हैं कि देखो सब कुछ हमारे हिसाब से ही चलता है और आगे भी इसी प्रकार से चलता रहे ऐसा लोभ करते हैं।

प्रवेश : किस कषाय के फल से कौन-सी गति होती है ?

समकित : सामान्यतयः[5] तीव्र[6] क्रोध के फल में जीव को नरक गति में जाना पड़ता है। क्रोधी व्यक्ति, जो सभी पर चीखते-चिल्लाते रहते हैं। न खुद शांति-से रहते हैं और न ही दूसरों को रहने देते हैं, वे नरक गति में जन्म लेते हैं। तीव्र मायाचारी के फल से जीव को तिर्यंच गति में जाना पड़ता है। मायावी व्यक्ति रात-दिन मन में कुछ, वचन में कुछ और दिखावा कुछ ऐसी कुटिलता[7] करते रहते हैं।

1. anger 2.pride 3.deceit 4.greed 5.generally 6.intense 7.craftiness

प्रवेश : मनुष्य व देवगति, में जन्म किस कषाय की तीव्रता[1] से होता है ?

समकित : तीव्र नहीं, मंद-कषाय वाले जीव मनुष्य व देव-गति में जन्म लेते हैं। यानि कि जो जीव रात-दिन चीजों को इकट्ठा करने में नहीं लगे रहते, खुद शांति से रहते हैं और दूसरों को भी रहने देते हैं, कभी किसी को नीचा दिखाने का भाव नहीं रखते व सभी के साथ सरलता का व्यवहार करते हैं और धर्म में अपना मन लगाते हैं वे मनुष्य व देव गति में जन्म लेते हैं।

प्रवेश : तो हमें हमेंशा कषाय को मंद करने की कोशिश करनी चाहिए ?

समकित : नहीं, हमें हमेंशा कषाय के अभाव[2] की कोशिश करनी चाहिए ताकि हम पंचम गति यानि मोक्ष को पा सकें। जब हम कषायों का अभाव करने की कोशिश करते हैं तब कषायें अपने-आप ही मंद[3] होने लग जाती हैं यानि कि हम तीव्र-कषाय या कहो कि पापों से बच जाते हैं।

प्रवेश : अच्छा तो तीव्र-कषाय को ही पाप कहते हैं ?

समकित : हाँ, बिल्कुल !

प्रवेश : भाईश्री ! पाप के बारे में बताईए न।

समकित : अभी बहुत देर हो गयी है, कल बताऊँगा।

मार्ग में चलते हुए यदि कोई सज्जन साथी हो तो मार्ग सरलता से कटता है। पंच परमेष्ठी सर्वोत्कृष्ट साथी हैं। इस काल में हमें गुरुदेव उत्तम साथी मिले हैं। साथी भले हो, परन्तु मार्ग पर चलकर ध्येय तक पहुँचना तो अपने को ही है।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1.high intensity 2.destruction 3.low

# 5

# पाप

समकित : कल हमने मिथ्यात्व और कषाय के बारे में समझा। साथ ही हमने यह भी देखा था कि **तीव्र-कषाय को ही पाप कहते हैं।**

प्रवेश : और पुण्य ?

समकित : जैसे तीव्र-कषाय पाप कहलाती है, वैसे ही **मंद-कषाय पुण्य कहलाती है।**

प्रवेश : क्या ? पुण्य भी कषाय का ही प्रकार[1] है ? कैसे ?

समकित : हाँ, कल हमने देखा था कि स्वयं मे लीन न होकर, दूसरों में ही लीन रहना कषाय है। जब हम स्वयं में लीन नहीं होते तब दूसरों में लीन होते हैं यानि कि दूसरों का कुछ न कुछ करना चाहते हैं। दूसरों का अच्छा करना/चाहना, वह मंद कषाय यानि कि पुण्य है और दूसरों का बुरा करना/चाहना, वह तीव्र कषाय यानि कि पाप है।

प्रवेश : पाप तो पाँच होते हैं न ?

समकित : हाँ ! 1. हिंसा[2] 2. झूठ[3] 3. चोरी[4] 4. कुशील[5] 5. परिग्रह-सग्रह[6], ये पाँच पाप तो कषाय रूप हैं। लेकिन इनसे भी बड़ा पाप है-मिथ्यात्व। मिथ्यात्व सब पापों का बाप है। **मिथ्यात्व जैसे बड़े पाप के छूटे बिना कषाय जैसे छोटे पाप सही मायनों में नहीं छूटते।** इसलिये हमें सबसे पहले मिथ्यात्व छोड़ने का प्रयास[7] करना चाहिए।

प्रवेश : हाँ, मिथ्यात्व के बारे में तो आपने पिछली कक्षा में बताया था। अब हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व परिग्रह के बारे में भी बता दीजिये। ताकि हम बड़े-छोटे सभी पापों को छोड़ सकें।

समकित : ठीक है, ध्यान से सुनो !

---

1.type 2.violence 3.lie 4.theft 5.characterlessness
6.possessions-gathering 7.effort

आत्मा में मोह, राग-द्वेष की उत्पत्ति ही **हिंसा** है। मोह यानि कि मिथ्यात्व और राग-द्वेष यानि कि कषाय।

प्रवेश : भाईश्री ! हमने तो सुना था कि किसी जीव को मारना, सताना, दुःख पहुँचाना हिंसा है ?

समकित : हाँ, तो किसी को मारने, सताने, दुःख पहुँचाने के भावों का मूल कारण मोह, राग-द्वेष ही तो हैं। यदि हम मोह, राग-द्वेष यानि कि मिथ्यात्व और कषाय को खत्म कर दें, यानि कि स्वयं को जानकर, स्वयं में अपनापन कर, स्वयं में ही लीन हो जायें, तो किसी को मारने का क्या, बचाने का भाव[1] भी नहीं आयेगा।

प्रवेश : अरे वाह ! और असत्य ?

समकित : सत्य[2] को न समझना की **असत्य**[3] है। क्योंकि जब तक सत्य को समझेंगे ही नहीं, तब तक सत्य बोलेंगे भी कैसे ?

प्रवेश : मैं तो समझता था कि सिर्फ सत्य नहीं बोलना ही असत्य है। चोरी तो किसी दूसरे की चीज को उससे बिना पूछे उठा लेना ही है न ?

समकित : यह तो है ही, लेकिन इससे भी बढ़कर जो चीज हमारी नहीं है, उसकी इच्छा[4] रखने का भाव भी **चोरी** ही है।

प्रवेश : और कुशील ?

समकित : दूसरे की माँ, बहिन, बेटी को गलत नजर[5] से देखना, उनके प्रति गंदा[6] भाव रखना **कुशील** है।

प्रवेश : और रुपया-पैसा, सोना-चाँदी वगैरह परिग्रह है ?

समकित : असल में तो रुपया-पैसा, सोना-चांदी परिग्रह नहीं। बल्कि उनको जोड़ने का भाव, उनमें लीनता-तल्लीनता ही **परिग्रह** है। जब उनको जोड़ने का भाव यानि कि उनमें लीनता-तल्लीनता खत्म हो जाती है, तब वह सब भी छूटे बिना नहीं रहते। वही सच्चा[7] परिग्रह त्याग है।

---

1. feeling 2.truth 3.lie 4.desire 5. evil eye 6. evil 7. real

प्रवेश : परिग्रह कितने प्रकार के होते हैं ?

समकित : परिग्रह दो प्रकार के होते हैं :

1. अंतरंग परिग्रह[1] 2. बहिरंग परिग्रह[2]

मिथ्यात्व और कषाय अंतरंग परिग्रह हैं और जमीन-मकान, सोना-चाँदी आदि बहिरंग परिग्रह हैं। **अंतरंग परिग्रह छूटे बिना बहिरंग परिग्रह सही मायनों[3] में नहीं छूट सकते।**

प्रवेश : भाईश्री ! अंतरंग परिग्रह में भी सबसे पहला नंबर तो मिथ्यात्व का है। अब मैं सबसे पहले मिथ्यात्व को छोड़ने की कोशिश करूँगा।

समकित : प्रवेश तुम बाते तो बहुत बड़ी-बड़ी करते हो लेकिन कल बाजार में अंजीर[4] शेक पी रहे थे। तुम्हारा ऐसा आचरण[5] देखकर ही लोग कहने लगते हैं कि आत्मा-परमात्मा की बड़ी-बड़ी बातें करने वाले सामान्य[6] जैनाचार भी नहीं पालते।

प्रवेश : भाईश्री ! यह जैनाचार क्या होता है ?

समकित : जैन कुल में पैदा होकर भी जैनाचार नहीं जानते। यह तो हमारा कुलाचार[7] है। ठीक है कल बताता हूँ।

परिग्रह की मूर्च्छा पाप का मूल है।

नीति के विधान पर पैर नहीं रखना। **–श्रीमद् राजचन्द्र वचनामृत**

नीति वह वस्त्रों के समान है और धर्म वह गहनों के समान है। जिस प्रकार बिना वस्त्रों के गहने शोभा नहीं देते, उसी प्रकार बिना नीति के धर्म शोभायमान नहीं होता।

**–गुरुदेवश्री के वचनामृत**

1.internal possessions 2.external possessions 3.real sense 4.fig 5.conduct 6.general 7.custom

# 6

# जैनाचार
## (अष्टमूल गुण)

समकित : जिस प्रकार हिन्दु, मुस्लिम, सिख, ईसाई, आदि सभी धर्म वाले अपने-अपने कुलाचार[1] को पालते हैं। उसी प्रकार जैनियों को भी अपने कुलाचार का पालन[2] करना चाहिए। लेकिन हैरानी की बात तो यह है कि एक ओर जहाँ सभी धर्म वाले अपने-अपने कुलाचार को पालने में पक्के[3] होते जा रहे हैं वही जैनी अपने कुलाचार को भूलते जा है और इसीकारण उनकी पहचान[4] भी मिटती जा रही है।

प्रवेश : अरे ! कुलाचार न पालने का इतना नुकसान[5] है ?

समकित : यह तो साधारण नुकसान है। कुलाचार न पालने का फल[6] तो नरक है।

प्रवेश : क्या ? मुझे तो नरक में नहीं जाना। अब तो मैं बराबर कुलाचार का पालन करुँगा। कृपया बताईये कुलाचार किसे कहते हैं जिसको न पालने से जीव को नरक जाना पड़ता हैं ?

समकित : तीन मकारः मद्य (शराब), माँस व मधु[7] और पाँच उदम्बर फल[8]: बड़, पीपर, ऊमर, कठूमर व पाकर (अंजीर) इनका सेवन[9] नहीं करना ही हमारा कुलाचार है। जो इनका सेवन करता है वो नरक में जाता है।

प्रवेश : क्यों ?

समकित : क्योंकि इन सब चीजों का सेवन करने से त्रस जीवों की हिंसा का पाप लगता है।

प्रवेश : ऐसा क्यों ?

समकित : मैं एक-एक करके समझाता हूँ।

---

1.custom 2.follow 3.strict 4.identity 5.harm 6.result
7.honey 8.five type of figs 9.consumption

शराब तो एक प्रकार से त्रस जीवों का ही रस है क्योंकि शराब बनाने के लिये पहले अनाज/फलों को सड़ाया-गलाया जाता है। फिर उनका रस निकालकर डिस्टीलेशन किया जाता है। इसलिये शराब बनाने में उन सभी त्रस जीवों की हिंसा हो जाती है।

शराब पीने वालों को उन सभी जीवों की हिंसा का महापाप तो लगता ही है, साथ में शराब पीकर वह अपने होश[1] खो बैठता हैं। साथ में उसका पैसा, शरीर और इज्जत सब मिट्टी में मिल जाती है।

प्रवेश : हाँ और शराब पीने वालों पर कोई भरोसा[2] भी नहीं करता, चाहे वह उसके परिवार का व्यक्ति ही क्यों न हो।

समकित : सही कहा ! शराब की तरह माँस भी बिना त्रस जीवों की हिंसा के नहीं मिल सकता। माँस के लिए पशुओं को जान से मारना पड़ता है।

प्रवेश : यदि कोई खुद से मरे हुए पशु का माँस खाये तो ?

समकित : खुद से मरे हुए पशु के माँस में लगातार अनेक त्रस जीव पैदा होते रहते हैं। इसलिये किसी भी प्रकार का माँस या बाजार की जिन पैकेट-बंद चीजों[3] में माँस या पशु के शरीर का कोई अंश[4] होने की संभावना[5] हो उसको खाना या छूना भी महापाप है। वैसे भी शाकाहारी लोग[6] जितने स्वस्थ्य[7] रहते हैं उतने माँसाहारी[8] नहीं।

प्रवेश : और शहद ? उसमें तो किसी को नहीं मारना पड़ता ?

समकित : शहद तो मधुमक्खी की उल्टी[9] है। वह फूलों का रस चूसकर अपने छत्ते में जाकर उस रस की उल्टी कर देती है। उल्टी गंदगी है। उसमें बहुत सारे त्रस जीव होते हैं। इतना ही नहीं छत्ते में से शहद निकालते समय भी बहुत सी मधुमक्खियों की हिंसा हो जाती है।

और यदि न भी हो तो मधुमक्खियों को अपनी कड़ी मेहनत से इकट्ठे किये गये शहद से बहुत राग[10] होता है और हम अपने स्वार्थ[11] के लिये उनसे उनकी प्रिय वस्तु छीन लेते हैं। जिससे उनको बहुत दुःख (कष्ट)

1.consciousness 2.trust 3.packaged food items 4.part 5.possibility 6.vegetarians 7.healthy 8.non-vegetarians 9.vomit 10.attachment 11.interest

पहुँचता है। ठीक उसी तरह जिस तरह हमसे हमारी प्रिय वस्तु छिन जाने से हमको बहुत दुःख होता है। इसलिए शहद की एक बूंद के सेवन में भी कई प्रकार से पाप ही पाप है।

प्रवेश : यह पाँच उदम्बर फल किसे कहते हैं ?

समकित : ऐसे फल जिनके अंदर अनेक छोटे-बड़े त्रस जीव होते हैं,उन्हें उदम्बर फल कहते हैं। यह पाँच होते हैं:

1 बड़[1] 2. पीपर[2] 3. ऊमर[3] 4. कठूमर[4] 5. पाकर[5] (अंजीर)

बड़ या बरगद

पीपर या पीपल

ऊमर या गूलर

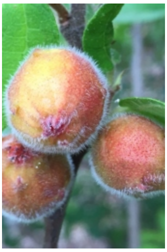
कठूमर या कठगूलर

पाकर या अंजीर

प्रवेश : अच्छा पाकर ही अंजीर कहलाता है ?

समकित : हाँ, पाकर को ही उर्दू में अंजीर कहते हैं। अरब लोगों[6] के हमारे देश में आने से पहले इसे पाकर कहते थे। इसी कारण से बहुत से लोग यह तो जानते है कि पाकर उदम्बर फल है, खाने लायक नहीं है लेकिन वे ये नहीं जानते कि अंजीर ही पाकर है। जानकारी होने के बाद तो जरूर ही इसे खाना छोड़ देना चाहिये।

प्रवेश : आपने सही कहा। इन आठों चीजों के खाने से बहुत त्रस जीवों की हिंसा का पाप होता है। इसका फल तो नरक ही होगा ?

समकित : हाँ, क्योंकि ऐसी चीजों का सेवन बिना तीव्र कषाय के नहीं हो सकता और तीव्र कषाय का फल नरक है।

प्रवेश : भाईश्री ! क्या यही श्रावक के अष्ट मूल गुण हैं ?

1.strangler fig 2.sacred fig 3.cluster fig 4.hairy fig 5.common fig 6.arabians

समकित : हाँ, जब आत्मज्ञानी व्रती श्रावक प्रतिज्ञा[1] पूर्वक नौ-कोटि[2] से इनका त्याग करते हैं तो उनके लिए यह व्रती श्रावक के अष्ट मूल-गुण कहलाते हैं और हमारे-तुम्हारे लिए कुलाचार या सामान्य जैनाचार कहलाते हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! तो क्या नेमिनाथ तीर्थंकर के कुल[3] के लोग इस सामान्य[4] जैनाचार को भी नहीं पालते थे ?

समकित : क्यों ?

प्रवेश : हमने सुना है कि उनकी शादी में बारातियों के भोजन के लिए पशुओं को बाँध कर रखा गया था ?

समकित : अरे ! कैसी बाते करते हो। तीर्थंकर के कुल के लोग माँसाहारी हो सकते हैं क्या ? पशुओं को राजमार्ग[5] के दोनों तरफ इसलिये बाड़ों[6] में बाँध कर रखा गया था ताकि रास्ता खाली रहे और राजकुमार नेमिनाथ की बारात आसानी से निकल सके क्योंकि गोधूलि वेला (शाम) के समय पशु रास्ते को जाम कर देते थे।

प्रवेश : तो फिर वे पशु रो क्यों रहे थे ?

समकित : क्योंकि ऐसा करने से बछड़े[7] अपनी माँओं से बिछड़ गये थे।

प्रवेश : अच्छा ये बात थी! नेमिनाथ भगवान की कहानी विस्तार से सुनाईये न

समकित : आज नहीं कल।

जुआ आमिष मदिरा दारी, आखेटक चोरी परनारी।
एही सात व्यसन दुखदाई, दुरित मूल दुर्गति के भाई।। -पं. बनारसीदास जी

दर्वित ये सातों व्यसन, दुराचार दुखधाम।
भावित अंतर-कल्पना, मृषा मोह परिणाम।।
अशुभ में हार शुभ में जीत, यहै द्यूत कर्म।
देह की मगनताई, यहै मांस भखिबो।।
मोह की गहल सों अजान यहै सुरापान।
कुमति की रीति गणिका को रस चखिबो।।
निर्दय है प्राण-घात करबो यहै शिकार।
पर-नारी संग पर-बुद्धि को परखिबो।।
प्यार सौं पराई सौंज गहिबे की चाह चोरी।
एई सातों व्यसन विडारि ब्रह्म लखिबो।।

1.pledge 2.nine-combinations 3.clan 4.general 5.highway 6.fencing 7.calves

# 7
# नेमिनाथ-श्रीकृष्ण

समकित : आज मैं तुमको बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ और नौवें नारायण श्री कृष्ण की कहानी सुनाने वाला हूँ। ध्यान से सुनना।

प्रवेश : नारायण किसे कहते हैं ?

समकित : नारायण ऐसे सम्राट[1] को कहते है जिसका राज्य आधे भरत क्षेत्र पर होता है जो कि बहुत बड़ा क्षेत्र[2] है। नारायण की आज्ञा[3] में सोलह हजार राजा राज्य करते हैं और सोलह हजार ही नारायण की रानियाँ होती हैं। वह सुदर्शन चक्र जैसी अनेक विभूतियों[4] का मालिक होता है।

प्रवेश : और तीर्थंकर की विभूति ?

समकित : तीर्थंकर की विभूति से तो किसी और की विभूति की तुलना[5] ही नहीं की जा सकती। वह तो सबसे महान विभूतियों के धारक[6] होते हैं।

प्रवेश : क्या ये दोनों सगे[7] भाई थे ?

समकित : नहीं, यह दोनों चचेरे[8] भाई थे। राजकुमार नेमिनाथ के पिता महाराजा समुद्रविजय और श्रीकृष्ण के पिता श्री वसुदेव सगे भाई थे।

प्रवेश : राजकुमार नेमिनाथ के पिता कहाँ के राजा थे ?

समकित : वे शौर्यपुर के राजा थे। उनकी पत्नी महारानी शिवादेवी के गर्भ से राजकुमार नेमिनाथ का जन्म हुआ था जिनको अरिष्ट-नेमि नाम से भी जाना जाता है।

प्रवेश : राजकुमार नेमिनाथ और श्रीकृष्ण की तो अच्छी दोस्ती होगी ?

समकित : हाँ, क्यों नहीं होगी। दोनों ही चचेरे भाई, दोनों ही शूरवीर[9]। लेकिन जहाँ श्रीकृष्ण राज-पाट[10], घर-परिवार के कामों में अत्यंत व्यस्त[11] थे, वहीं राजकुमार नेमिनाथ संसार-शरीर-भोगों से बहुत विरक्त[12] थे।

---

1.emperor 2.area 3.command 4.splendours 5.comparision 6.owner 7.real 8.cousin 9. brave 10.kingdom 11.busy 12.detatched

प्रवेश : फिर उन्होंने शादी नहीं की ?

समकित : वे करना तो नहीं चाहते थे लेकिन माता-पिता और रिश्तेदारों के सामने उनकी एक न चली। उन्हें मजबूरन शादी के लिए हाँ भरनी पड़ी।

प्रवेश : तो फिर उनकी शादी किससे हुई ?

समकित : उनकी सगाई[1] जूनागढ़ की राजकुमारी राजमती (राजुल) से हो गयी थी लेकिन....

प्रवेश : लेकिन ?

समकित : लेकिन बारत के समय रास्ते के दोनों ओर बँधे हुए पशुओं का रोना सुनकर उन्हें वैराग्य उमड़ आया और आत्मज्ञानी राजकुमार नेमिनाथ ने मुनि दीक्षा लेने का निर्णय कर लिया व गिरनार पर्वत[2] की ओर चल दिये।

प्रवेश : उनको किसी ने रोका नहीं ?

समकित : महापुरुष एक बार जिस रास्ते पर चलने का निर्णय[3] कर लेते हैं फिर किसी के रोके नहीं रुकते। गिरनार पर्वत के वन[4] में जाकर समस्त अंतरंग-बहिरंग परिग्रह का त्यागकर उन्होंने जिन दीक्षा धारण कर ली और आत्मध्यान[5] में मग्न हो गये।

प्रवेश : अरे बेचारी राजुल का क्या हाल हुआ होगा ?

समकित : राजुल बेचारी नहीं थी। नेमिनाथ की तरह वह भी आत्मज्ञानी थी। इस घटना को देख कर उनको भी संसार-शरीर-भोगों से वैराग्य हो गया और उन्होंने भी गिरनार पर्वत की एक गुफा में जाकर दीक्षा धारण कर ली और आत्म-ध्यान में लीन हो गयीं।

प्रवेश : यह ठीक रहा। वे भी नेमिनाथ के साथ उनके ही मार्ग पर चली गयीं।

---

1.engagement 2.Gir-hills 3.Decision 4.jungle 5.self-meditation

समकित : नहीं, साथ तो संसार में होता है। मोक्षमार्ग में तो सबको अकेले ही चलना पड़ता है। वे नेमिनाथ के नहीं किन्तु स्वयं के स्वांतः-सुखाय मोक्षमार्ग पर आगे बढ़ी थी। अब उनको नेमिनाथ संसार के दूसरे पुरुषों के समान भाई जैसे ही थे।

प्रवेश : और श्रीकृष्ण ?

समकित : श्री कृष्ण शांति-से[1] अपना राज्य करते रहे। भविष्य[2] में वे भी तीर्थंकर होंगे।

प्रवेश : अरे वाह ! इसके बाद मुनिराज नेमिनाथ का क्या हुआ ?

समकित : दीक्षा लेने के बाद मुनिराज नेमिनाथ आत्मलीनता को बढ़ाते गये और पूर्ण (100 प्रतिशत) आत्मलीनता हो जाने पर वे पूर्ण वीतरागी, पूर्ण सुखी व सर्वज्ञ (केवलज्ञानी) हो गये। उनके समवसरण की रचना हुई। लगभग सारे देश मे उनका विहार हुआ, दिव्य उपदेश हुआ, जिससे भव्य जीवों को मोक्षमार्ग का ज्ञान हुआ।

प्रवेश : फिर ?

समकित : आयु पूरी होने पर उन्होंने गिरनार पर्वत से सिद्ध दशा (मोक्ष) को प्राप्त किया। उनके कुल में और भी लोग मुनि दीक्षा धारण कर गिरनार पर्वत से मोक्ष गये। सम्मेदशिखर के बाद गिरनार जैनियों का सबसे महत्वपूर्ण निर्वाण क्षेत्र है।

प्रवेश : भाईश्री ! इस कहानी में तो बहुत आनंद आया। जिनवाणी में इतनी अच्छी-अच्छी बातें आयी कहाँ से हैं ?

समकित : यह कल की जिनवाणी स्तुति पढ़कर तुमको समझ में आ जायेगा।

पूर्णता के लक्ष्य से की गई शुरुआत ही सच्ची शुरुआत है। **-गुरुदेवश्री**

1.peacefully 2.future

## 8

# जिनवाणी स्तुति

वीर हिमाचलतैं निकसी, गुरु गौतम के मुख कुंड ढरी है ।
मोह महाचल भेद चली, जग की जड़ता तप दूर करी है ।।

ज्ञान पयोनिधि माँहि रली, बहु भंग तरंगनिसों उछरी है ।
ता शुचि शारद गंगा नदी प्रति, मैं अंजुलि कर शीश धरी है ।।

या जगमंदिर मे अनिवार, अज्ञान अंधेर छयो अति भारी ।
श्री जिन की धुनि दीपशिखा सम, जो नहिं होत प्रकाशन हारी ।।

तो किस भांति पदारथ पांति, कहाँ लहते रहते अविचारी ।
या विधि संत कहें धनिं है, धनिं हैं जिन वैन बड़े उपकारी ।।

**सारांश –** यह जिनवाणी की स्तुति है। इसमें दीपशिखा[1] के समान अज्ञान-अंधकार[2] को नाश करने वाली पवित्र जिनवाणी-रूपी गंगा को नमस्कार किया गया है। जिनवाणी अर्थात जिनेन्द्र भगवान द्वारा दिया गया तत्वोपदेश[3], उनके द्वारा बताया गया मुक्ति का मार्ग।

हे जिनवाणी-रूपी पवित्र गंगा ! तुम महावीर भगवान रूपी हिमालय पर्वत से प्रवाहित[4] होकर गौतम-गणधर के मुखरुपी कुण्ड[5] में आई हो। तुम मोहरूपी महान पर्वतों[6] को भेदती हुई जगत के अज्ञान और ताप (दुःखो) को दूर कर रही हो। सप्तभंगी-रूप-नयों[7] की तरंगों[8] से उल्लसित होती हुई ज्ञानरूपी समुद्र में मिल गई हो।

ऐसी पवित्र जिनवाणी-रूपी गंगा को मैं अपनी बुद्धि और शक्ति अनुसार अंजलि में धारण करके शीश[9] पर धारण करता हूँ।

इस संसार रूपी मंदिर में अज्ञान रूपी घोर अंधकार छाया हुआ है। यदि इस अज्ञान अंधकार को नष्ट करने के लिए जिनवाणी रूपी

1.lamp-flame 2.darkness of ignorance 3.preachings 4. flow 5.pond 6.mountains 7.seven-perspectives 8.waves 9. forehead

दीपशिखा नहीं होती तो फिर तत्वों का वास्तविक-स्वरूप[1] किस प्रकार जाना जाता ? वस्तु स्वरुप अविचारित[2] ही रह जाता। अतः संत कवि कहते हैं कि जिनवाणी बड़ी ही उपकार करने वाली है, जिसकी कृपा से हम तत्व का सही स्वरुप समझ सके। मैं उस जिनवाणी को बारम्बार नमस्कार करता हूँ।

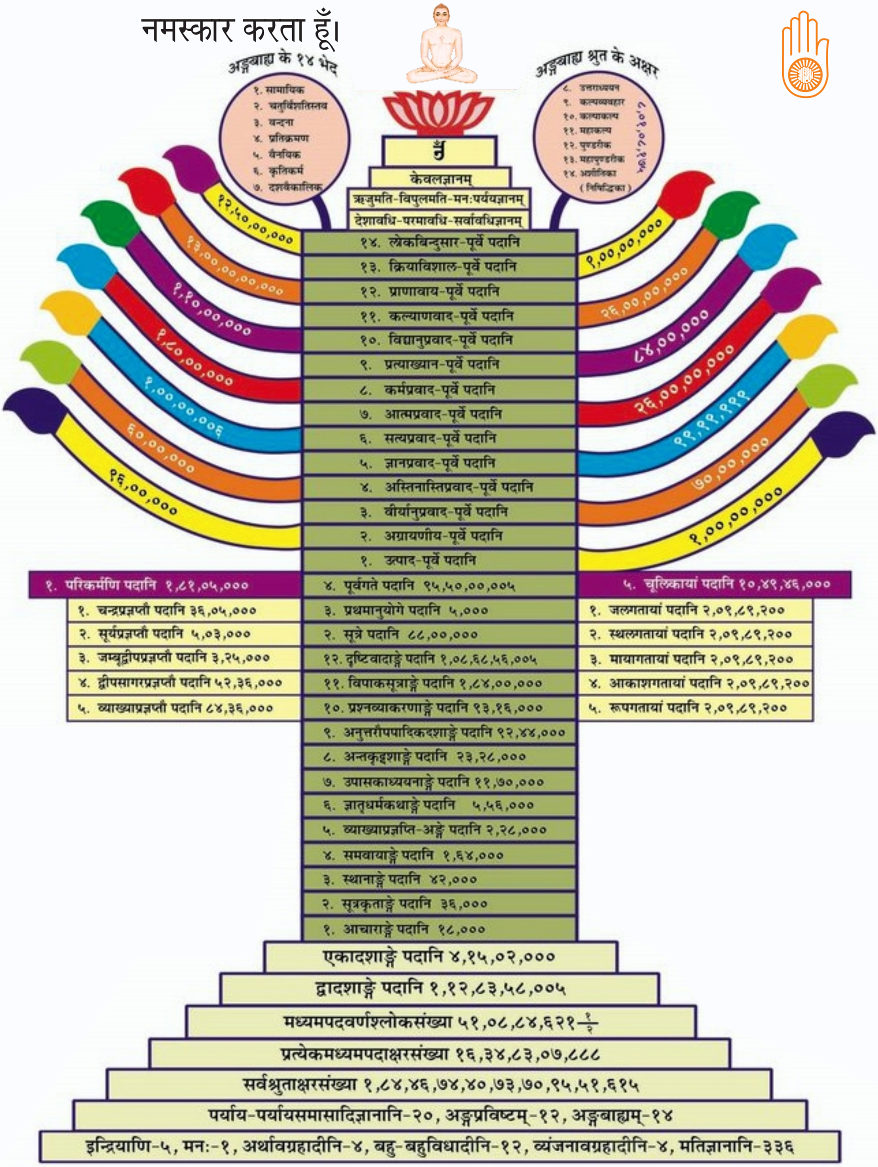


1.real-aspect 2.un-determined

1

# जिनेन्द्र स्तवन

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, भविजन की अब पूरो आस।
ज्ञान भानु का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनास।।

जीवों की हम करूणा पालें, झूठ वचन नहीं कहें कदा।
परधन कबहुँ न हरहुँ स्वामी, ब्रह्मचर्य व्रत रखें सदा।।

तृष्णा लोभ न बढ़े हमारा, तोष सुधा नित पिया करें।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा, तिस की सेवा किया करें।।

दूर भगावें बुरी रीतियाँ, सुखद रीति का करें प्रचार।
मेल-मिलाप बढ़ावें हम सब, धर्मोन्नति का करें प्रसार।।

सुख-दुख में हम समता धारें, रहें अचल जिमि सदा अटल।
न्याय-मार्ग को लेश न त्यागें, वृद्धि करें निज आतमबल।।

अष्ट करम जो दुःख हेतु हैं, तिनके क्षय का करें उपाय।
नाम आपका जपें निरन्तर, विघ्न शोक सब ही टल जाय।।

आतम शुद्ध हमारा होवे, पाप मैल नहिं चढ़े कदा।
विद्या की हो उन्नति हम में, धर्म ज्ञान हूँ बढ़े सदा।।

हाथ जोड़कर शीश नवावें, तुमको भविजन खड़े-खड़े।
यह सब पूरो आस हमारी, चरण शरण में आन पड़ें।।

**सारांश-** यह स्तुति सच्चे देव की है। सच्चा देव उन्हें कहते हैं, जो वीतरागी, सर्वज्ञ और हितोपदेशी हो। वीतरागी वह कहलाते हैं जो

मोह, राग-द्वेष से रहित हो और सर्वज्ञ उन्हें कहते हैं जो लोकालोक के समस्त पदार्थों[1] को एकसाथ जानते हों। वही आत्महित का उपदेश देने वाले होने से हितोपदेशी कहलाते हैं। वीतराग भगवान से प्रार्थना करता हुआ भव्य जीव सबसे पहले यही कहता है कि मैं मिथ्यात्व का नाश और सम्यकज्ञान को प्राप्त करूँ क्योंकि मिथ्यात्व का नाश किये बिना धर्म की शुरुआत ही नहीं हो सकती।

इसके बाद वह अपनी भावना[2] व्यक्त[3] करता हुआ कहता है कि मेरी प्रवृत्ति पाँचों पापों और कषायों में न जावे। मैं हिंसा न करूँ, झूठ न बोलूँ, चोरी न करूँ, कुशील सेवन न करूँ तथा लोभ वश परिग्रह संग्रह न करूँ, सदा संतोष[4] धारण किये रहूँ और मेरा जीवन धर्म की सेवा में लगा रहे।

हम धर्म के नाम पर फैलने वाली कुरीतियों[5] को दूर कर के धार्मिक क्षेत्र में सही परम्पराओं का निर्माण[6] करें तथा परस्पर में वात्सल्य[7] रखें। हम सुख में प्रसन्न होकर फूल न जावें और दुःख को देखकर घबरा न जावें, दोनों ही दशाओं में धैर्य[8] से काम लेकर समताभाव[9] रखें और न्यायमार्ग[10] पर चलते हुए लगातार आत्मबल में वृद्धि[11] करते रहें।

आठों ही कर्म दुःख के निमित्त[12] हैं, कोई भी शुभ-अशुभ कर्म सुख का कारण नहीं हैं, अतः हम उनके नाश का उपाये करते रहें। आपका स्मरण[13] सदा रखें जिससे सन्मार्ग[14] में कोई विघ्न न आवें।

हे भगवन् ! हम और कुछ भी नहीं चाहते हैं, हम तो सिर्फ यही चाहते हैं कि हमारी आत्मा पवित्र हो जावे और उसे मिथ्यात्व आदि पापरूप मैल कभी भी मैला न करें तथा हमारा तत्वज्ञान लगातार बढ़ता रहे।

हम सभी भव्य जीव हाथ जोड़कर आपको नमस्कार कर रहे हैं, आपके चरणों की शरण में आ गये है, अब हमारी भावना जरूर ही पूरी होगी।

1.substances 2.feelings 3.express 4.satisfaction 5.malpractices 6.establishment 7.mutual-devotion 8. patience 9.equanimity 10.right-path 11.increment 12. formal-cause 13.remembrance 14.right-path

# 2

# इंद्रियाँ

प्रवेश : भाईश्री ! कल हमने जिनेन्द्र स्तवन पढ़ा था। भगवान को जिनेन्द्र क्यों कहते हैं ?

समकित : क्योंकि वे स्वयं में पूर्णरूप-से[1] लीन होकर मोह, राग-द्वेष व पाँच-इन्द्रियों के विषयों[2] को भोगने की इच्छा[3] को **जीत** कर परम सुखी हो गये हैं।

प्रवेश : यें पाँच इन्द्रियाँ और उनके विषय क्या हैं ?

समकित : पहले हम एक-एक करके पाँच-इन्द्रियों[4] को समझेंगे, फिर उनके विषयों[5] को समझेंगे।

प्रवेश : ठीक है, भाईश्री !

समकित : जीव और शरीर के चिन्ह[6] को इन्द्रियाँ कहते हैं। जीव के चिन्ह भाव इन्द्रियाँ और शरीर के चिन्ह द्रव्य-इन्द्रियाँ कहलाती हैं।

प्रवेश : मतलब ?

समकित : जीव का जो ज्ञान स्पर्श[7], रस[8], गंध[9] वर्ण[10], शब्द[11] को जानता है वह भाव-इन्द्रिय है। त्वचा, जीभ, नाक, आँख, कान आदि शरीर के अंग[12] जो जीव को स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, को जानने में निमित्त[13] हैं उन्हें द्रव्य-इन्द्रियाँ कहते हैं।

प्रवेश : इन्द्रियाँ कितनी होती हैं ?

समकित : इन्द्रियाँ पाँच होती हैंः 1. स्पर्शन 2. रसना ३. घ्राण 4. चक्षु 5. कर्ण

इसको हम इस चार्ट से समझ सकते हैंः

---

1. completely 2.materialistic-pleasures 3.desires 4.five-senses 5.subjects 6.signs 7.touch 8.taste 9.smell 10.colour 11. sound 12.body-parts 13.formal medium

| नाम | भाव इन्द्रिय | द्रव्य इन्द्रिय | इन्द्रिय विषय |
|---|---|---|---|
| स्पर्शन | स्पर्श को जानने वाला ज्ञान (पर्याय) | त्वचा आदि | हल्का-भारी, रूखा-चिकना, ठण्डा-गरम, कठोर-नरम |
| रसना | रस को जानने वाला ज्ञान (पर्याय) | जीभ | खट्टा, मीठा, कड़वा, कषायला, चरपरा |
| घ्राण | गंध को जानने वाला ज्ञान (पर्याय) | नाक | सुगंध-दुर्गंध |
| चक्षु | वर्ण को जानने वाला ज्ञान (पर्याय) | आँख | लाल, पीला, नीला, काला, सफेद |
| कर्ण | शब्द को जानने वाला ज्ञान (पर्याय) | कान | सुस्वर-दुस्वर |

प्रवेश : अरे वाह ! यह चार्ट तो बहुत ही अच्छा है।

समकित : चार्ट से समझ में आ गया होगा कि :

1. जीव का जो ज्ञान, स्पर्श[1] को जानता है वह भाव स्पर्शन इन्द्रिय और उसमें निमित्त शरीर की त्वचा आदि वह द्रव्य स्पर्शन इन्द्रिय कहलाती है।

2. जीव का जो ज्ञान, रस[2] को जानता है वह भाव रसना इंद्रिय और उसमें निमित्त शरीर की जीभ वह द्रव्य रसना इन्द्रिय कहलाती है।

3. जीव का जो ज्ञान, गंध[3] को जानता है वह भाव घ्राण इंद्रिय और उसमे निमित्त शरीर की नाक द्रव्य घ्राण इंद्रिय कहलाती है।

4. जीव का जो ज्ञान, वर्ण[4] को जानता है वह भाव चक्षु इन्द्रिय और उसमें निमित्त शरीर की आँख वह द्रव्य चक्षु इन्द्रिय कहलाती है।

5. जीव का जो ज्ञान, शब्द[5] को जानता है वह भाव कर्ण इंद्रिय और उसमें निमित्त शरीर के कान वह द्रव्य कर्ण इंद्रिय कहलाती है।

प्रवेश : इसका मतलब यह हुआ कि भाव इंद्रियाँ जीव के ज्ञान गुण की पर्याय (अवस्था) हैं, यानि कि जीव की हैं और द्रव्य इंद्रियाँ पुद्गल की पर्याय हैं, यानि की पुद्गल (शरीर) की हैं ?

1.touch 2.taste 3.smell 4.colour 5.sound

समकित : बिल्कुल ठीक समझे।

प्रवेश : और मन ?

समकित : मन को नोइंद्रिय भी कहते हैं। जीव का जो ज्ञान, विचार करता है उसे भाव मन कहते हैं और उसमें निमित्त शरीर के अंदर हृदय-स्थान[1] पर बहुत ही सूक्ष्म[2] पुद्‌गल का बना हुआ आठ पंखुड़ी के कमल के आकार जैसा अंग[3] द्रव्य-मन कहलाता है।

प्रवेश : क्या हम आँख, नाक की तरह द्रव्य-मन को देख सकते हैं ?

समकित : अरे बताया न, वह बहुत सूक्ष्म पुद्‌गल का बना हुआ है, इसलिये हम उसे देख नहीं सकते।

प्रवेश : अरे हाँ, मैंने ध्यान से नहीं सुना। भाईश्री अब पाँच इंद्रियों के विषयों को और समझा दीजिये।

समकित : इंद्रियाँ जिनको जानती हैं वह स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द ही तो इंद्रियों के विषय हैं।

प्रवेश : अरे हाँ सही तो है। भाईश्री भगवान ने इन विषयों को भोगने की इच्छा को कैसे जीता ?

समकित : भगवान ने उसे अपने अतींद्रिय ज्ञान से जीता।

प्रवेश : अतींद्रिय ज्ञान ?

समकित : सिर्फ स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द यानि कि सिर्फ पुद्‌गल को जानने वाला हमारा ज्ञान **इंद्रिय[4]-ज्ञान** कहलाता है और स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द आदि से रहित[5] अपने आत्मा को जानने वाला ज्ञान **अतींद्रिय[6] ज्ञान** कहलाता है। हमारा इंद्रिय ज्ञान इच्छाओं यानि कि दुःख का कारण है। क्योंकि हम उससे पुद्‌गल (दूसरों) को जानकर, उनमें अपनापन करते हैं व उनमें लीन होते हैं और तरह-तरह के मोह, राग-द्वेष/कषाय/इच्छायें करके दुःखी होते रहते हैं।

1.heart-place 2.minute 3.body-part 4.sense-dependent
5.devoided 6.sense-independent

भगवान का अतींद्रिय ज्ञान सुख का कारण है, क्योंकि भगवान उससे अपने आत्मा को जानकर, उसमें अपनापन कर, उसमें लीन होकर तरह-तरह के मोह, राग-द्वेष/कषाय/इच्छाओं का अभाव (खातमा) कर अनंत सुखी हो गये है।

प्रवेश : अच्छा, इसीलिये कहा जाता है कि भगवान ने इंद्रियों को जीत लिया है?

समकित : हाँ, भगवान ने इंद्रियों को जीत लिया है, इसलिये जिनेंद्र या जिन कहलाते हैं लेकिन आज-कल जिन के अनुयायी[1] कहलाने वाले जैन रसना इंद्रिय के विषय-**स्वाद** के इतने गुलाम बनते जा रहे हैं कि स्वाद के लिए कुछ भी खा लेते हैं। भक्ष्य-अभक्ष्य का भी विचार नहीं रखते।

प्रवेश : यह भक्ष्य-अभक्ष्य क्या होता है ?

समकित : यह मैं बाद में बताऊँगा। तुम इस बारे में घर पर पूछकर आना क्योंकि यह सिखाना तो घर वालों का ही काम है।

पाँच इन्द्रियों सम्बधी किन्हीं भी विषयों में आत्मा का सुख नहीं है, सुख तो आत्मा में ही है-ऐसा जानकर सर्व विषयों में से सुख बुद्धि दूर हो और असंगी आत्मस्वरूप की रुचि हो, तभी वास्तविक ब्रह्मचर्यजीवन होता है। ब्रह्मस्वरूप आत्मा में जितने अंश परिणमन-आत्मिक सुख का अनुभव-हो उतने अंश में ब्रह्मचर्य जीवन है। जितनी ब्रह्म में चर्या उतना पर विषयों का त्याग होता है।

जो जीव परविषयों से तथा परभावों से सुख मानता हो उस जीव को ब्रह्मचर्य जीवन नहीं होता, क्योंकि उसको विषयों के संग की भावना विद्यमान है।

वास्तव में आत्मस्वभावकी रुचि के साथ ही ब्रह्मचर्यादि सर्व गुणों के बीज पड़े हैं। इसलिये सच्चा ब्रह्मजीवन जीने के अभिलाषी जीवों का प्रथम कर्तव्य यह है कि-अतीन्द्रिय आनन्द से परिपूर्ण तथा सर्व परविषयों से रहित ऐसे अपने आत्मस्वभाव की रुचि करें, उसका लक्ष करें, उसका अनुभव करके उसमें तन्मय होने का प्रयत्न करें। **-गुरुदेवश्री के वचनामृत**

1.follower

# 3

# स्थावर और त्रस जीव

प्रवेश : भाईश्री ! मैंने भक्ष्य-अभक्ष्य के बारे में दादी से पूछा था। उन्होंने बताया जो चीजें खाने लायक हो उन्हें भक्ष्य कहते हैं और जो चीजें हमारे खाने लायक न हो उन्हें अभक्ष्य कहते हैं।

समकित : हाँ, बिलकुल ऐसा ही है। इसीलिए परिवार में बुजुर्गों का साथ रहना बहुत जरूरी है। सही शिक्षा और संस्कार तो बच्चों को उनसे ही मिलते हैं। उनको मेरा चरण स्पर्श बोलना।

प्रवेश : जी भाईश्री ! जब में रात में सोते समय दादी के चरण स्पर्श करूँगा तब आपकी तरफ से भी चरण स्पर्श बोल दूँगा।

समकित : ठीक है।

प्रवेश : भाईश्री ! कौनसी चीजें भक्ष्य हैं और कौनसी चीजे अभक्ष्य ?

समकित : जिन चीजों के बनाने और खाने में त्रस या फिर बहुत से स्थावर जीवों की हिंसा होती है व गंदी, नशीली और स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचाने वाली सभी चीजें अभक्ष्य हैं।

प्रवेश : यह स्थावर और त्रस जीव क्या होते हैं ? जैनाचार वाले पाठ के दिन भी मैं पूछने वाला था।

समकित : तो फिर क्यों नही पूछा ?

प्रवेश : मुझे लगा सभी मेरे ऊपर हँसेंगे।

समकित : अरे, उनके हँसने से तुम्हारा कुछ नुकसान नहीं होगा लेकिन यदि कोई बात समझ में नहीं आयेगी तो तुम्हारा बहुत नुकसान होगा इसलिए जहाँ समझ में न आये तुरंत पूछ लेना चाहिये।

जिन जीवों के पास सिर्फ एक स्पर्शन इंद्रिय है वह **स्थावर जीव** कहलाते हैं। जैसे- पेड़-पौधे, धरती, पानी, आग, हवा आदि।

जिन जीवों के पास स्पर्शन इंद्रिय के अलावा और भी इंद्रियाँ होती हैं वे **त्रस जीव** कहलाते हैं। जैसे-स्पर्शन और रसना ऐसी दो इंद्रियों वाली लट, इल्ली आदि। स्पर्शन-रसना-घ्राण ऐसी तीन इंद्रियों वाली चींटी आदि। स्पर्शन-रसना-घ्राण-चक्षु ऐसी चार इंद्रियों वाले भौंरा, तितली आदि व स्पर्शन-रसना-घ्राण-चक्षु-कर्ण ऐसी पाँच इंद्रियों वाले असंज्ञी पंच इंद्रिय जीव और पाँच इंद्रिय व मन वाले संज्ञी पंच-इंद्रिय जीव, यह सभी त्रस जीव कहलाते हैं।

प्रवेश : संज्ञी और असंज्ञी पंच इंद्रिय जीव मतलब ?

समकित : जिन पंच इंद्रिय जीवों के पास मन (विचार-शक्ति) नहीं होता वे **असंज्ञी पंच इंद्रिय** और जिनके पास मन होता है वह **संज्ञी पंच इंद्रिय** जीव कहलाते हैं।

प्रवेश : संज्ञी और असंज्ञी का अंतर सिर्फ पंच इंद्रिय जीवों में ही होता है ?

समकित : हाँ, क्योंकि एक इंद्रिय से लेकर चार इंद्रियों तक के जीव असंज्ञी यानि कि मन बिना के ही होते हैं। सिर्फ पंच इंद्रिय जीव में ही दोनों प्रकार के जीव होते हैं।

प्रवेश : असंज्ञी और संज्ञी पंच इंद्रिय जीव कौन-कौन से हैं ?

समकित : जिनके पास पाँच इंद्रियाँ तो हैं लेकिन मन नहीं, ऐसे पानी के साँप बगैरह असंज्ञी पंच इंद्रिय जीव हैं और जिनके पास सभी पाँच इंद्रियों के साथ सही-गलत का विचार करने की, सीखने की शक्ति यानि कि मन भी है, ऐसे गाय, भैंस, बकरी आदि तिर्यंच, नारकी, देव और मनुष्य यानि कि हम स्वयं संज्ञी पंच इंद्रिय जीव हैं। इसलिये हम भी त्रस जीव हैं।

प्रवेश : वह कौनसी अभक्ष्य चीजें हैं जिनके बनाने और खाने में त्रस या फिर बहुत से स्थावर जीवों की हिंसा होती है ?

समकित : आज मेरे गुरूजी आ रहे हैं इसलिये आज नहीं लेकिन कल मैं तुम्हें सभी तरह के अभक्ष्य के बारे में विस्तार से बताऊँगा।

# 4

# अभक्ष्य

समकित : कल तुमने पूछा था कि कौन-कौन सी चीजें अभक्ष्य हैं। तो आज हम अभक्ष्य के सभी प्रकारों की चर्चा करते हैं।

अभक्ष्य पाँच प्रकार के होते हैं:

1. त्रसघात 2. बहुघात 3. अनुपसेव्य 4. अनिष्टकारक 5. नशाकारक

प्रवेश : अरे, यह तो हमने पहली बार सुना है। कृपया एक-एक करके इनके बारे में समझाईये न ?

समकित : ठीक है ! ऐसी चीजें जिनको बनाने या खाने से त्रस जीवों का घात (हिंसा) होता है उन्हें त्रसघात अभक्ष्य कहते हैं जैसे कि माँस, पाँच उदम्बर फल, रात्रिभोजन, बिना छना पानी आदि।

प्रवेश : रात्रिभोजन भी अभक्ष्य है ? यदि रात्रि में भक्ष्य चीजें खायें तो ?

समकित : रात में सूर्य का प्रकाश नहीं होने के कारण बहुत सारे त्रस जीव पैदा हो जाते हैं जो रात में भोजन बनाते या करते समय हमारे भोजन और मुँह में चले जाते हैं। चाहे फिर वह भोजन अभक्ष्य हो या भक्ष्य ।

प्रवेश : हाँ, आजकल तो डॉक्टर भी रात्रिभोजन के लिये मना करते हैं ।

समकित : हाँ, क्योंकि हमारा शरीर रात्रि भोजन के लिये बना ही नहीं है। ज्यादातर पशु-पक्षी तक रात्रि में नहीं खाते। इसीप्रकार बिना-छने पानी की एक-एक बूँद में असंख्यात् त्रस जीव होते हैं। इसलिये वह भी अभक्ष्य है और स्वास्थ्य के लिये भी नुकसान दायक है। वैज्ञानिक भी माईक्रोस्कोप की मदद से यह साबित कर चुके हैं।

प्रवेश : और बहुघात ?

समकित : बहुघात का मतलब है-बहु स्थावर घात। जिन चीजों को बनाने या खाने में बहुत से (अनंत) स्थावर जीवों का घात होता है उन्हें बहुघात

अभक्ष्य कहते हैं। जैसे कि आलू, प्याज, लहसुन, गाजर, मूली, शकरकंद, अदरक आदि सभी जमीकंद बगैरह।

प्रवेश : कैसे ?

समकित : इन सभी जमीकंद के छोटे से छोटे कण में भी अनंत[1] स्थावर निगोदिया जीव होते हैं। इसलिये इनको बनाने या खाने से एक साथ अनंत स्थावर जीवों का घात (हिंसा) हो जाता है।

प्रवेश : अनुपसेव्य चीजों को खाने में भी जीवों का घात होता है ?

समकित : जीवों का घात तो होता ही है क्योंकि जीवों के मल-मूत्र, लार, वमन आदि को अनुपसेव्य पदार्थ (चीजें) कहते हैं और इन सब में तो नियम से त्रस जीव होते ही हैं। साथ ही साथ इन सब चीजों का सेवन दुनिया मे भी निंदनीय (बुरा) माना जाता है।

ऐसे लोक-निंद्य[2] चीजों का सेवन बिना लोलुपता यानि कि लोभ कषाय की तीव्रता के नहीं हो सकता और हमने देखा ही था कि कषाय की तीव्रता का फल नरक है।

प्रवेश : और शराब नशाकारक अभक्ष्य है ?

समकित : सभी नशीली चीजें जैसे कि शराब, भांग, अफीम, गांजा, चरस, तंबाकू, बीड़ी, सिगरेट, गुटखा आदि नशाकारक अभक्ष्य है। क्योंकि इनके बनने में हिंसा तो होती ही है, साथ ही साथ इनके सेवन से व्यक्ति सही-गलत का विवेक भी खो देता है। वैसे भी यह सब व्यसन की श्रेणी[3] में आते हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! ये व्यसन क्या होते हैं ?

समकित : वह मैं तुम्हें बाद में बताऊँगा। पहले अनिष्टकारक अभक्ष्य के बारे में समझलो। हमेंशा पहले जो काम कर रहे हो उसको पूरा करना चाहिये, उसके बाद ही नया काम शुरू करना चाहिये।

1.infinite 2.defaming 3.category

प्रवेश : जी भाईश्री !

समकित : जो चीजें स्वास्थ्य के लिये नुकसानदायक[1] हों, उन्हें अनिष्टकारक अभक्ष्य कहते हैं। चाहे फिर वे भक्ष्य ही क्यों न हो। जैसे शुगर के मरीज को एकदम शुद्ध शक्कर और हाई ब्लडप्रेशर के मरीज को एकदम शुद्ध नमक भी अभक्ष्य है।

प्रवेश : शुद्ध शक्कर और शुद्ध नमक खाने में तो जीव हिंसा नहीं होती, न ही ये लोकनिंद्य और नशाकारक हैं, फिर क्यों अभक्ष्य हैं ?

समकित : अरे भाई, हम स्वयं भी तो जीव हैं। सिर्फ दूसरे जीवों को कष्ट पहुँचाना ही हिंसा नहीं, स्वयं को कष्ट पहुँचाना भी हिंसा है। जो स्वयं की दया नहीं पाल सकता, वो दूसरों की दया क्या पालेगा ?

ऐसे स्वास्थ्य के लिये हानिकारक (अनिष्ट) पदार्थों के सेवन[2] से स्वयं को कष्ट पहुँचता है, स्वयं की हिंसा होती है। इसलिये ऐसी चीजों का सेवन नहीं करना चाहिये।

प्रवेश : आपने बताया था कि जीव को कष्ट शरीर की अवस्था[3] के कारण नहीं, बल्कि अपने मोह, राग-द्वेष के कारण होता है। यदि हमारे मोह, राग-द्वेष खत्म हो जायें तो फिर ऐसी चीजों के सेवन से हमको कष्ट नहीं होगा ?

समकित : जब हमारे मोह, राग-द्वेष खत्म हो जायेंगे तब हमको ऐसी चीजों के सेवन के भाव ही नहीं आयेंगे। क्योंकि तीव्र राग (कषाय) के कारण ही तो ऐसी चीजों के सेवन के भाव होते हैं जो अपने को और दूसरों को कष्ट पहुँचाती हैं। ऐसे तीव्र राग के कारण इन सभी प्रकार के अभक्ष्य का सेवन करने वाला जीव नरक में जाता है व बहुत कष्ट भोगता है।

प्रवेश : ओह !.....भाईश्री व्यसन ?

समकित : आज नहीं कल। सब कुछ एक साथ पढ़ लेंगे तो आगे पाठ और पीछे सपाट होता जायेगा।

---

1.harmful 2.consumption 3.condition

## 5

# सप्त व्यसन

समकित : क्यों प्रवेश काल रात में नींद आयी या नहीं ? कहीं रातभर व्यसन के बारे में ही तो नहीं सोचते रहे ?

प्रवेश : आपने कैसे पहिचाना कि मुझे रात में नींद नहीं आयी ? मैंने रात में दादी से व्यसन के बारे मे पूछा था।

समकित : क्या बताया दादी ने ?

प्रवेश : दादी ने बताया व्यसन सात होते हैं:

1.जुआ खेलना 2.माँस खाना 3.मदिरापान 4.वेश्यागमन करना 5. शिकार खेलना 6.चोरी करना 7.परस्त्रीसेवन

समकित : बिल्कुल सही और क्या बताया दादी ने ?

प्रवेश : दादी के पाठ का समय हो रहा था तो फिर उन्होंने आगे नहीं बताया ।

समकित : कोई बात नहीं। जो एक अक्षर का भी ज्ञान दे उसका बहुत उपकार है। आगे मैं बता देता हूँ। व्यसन कहते हैं लत[1] यानि कि बुरी आदत को।

प्रवेश : तो क्या सारी बुरी आदतें व्यसन हैं ?

समकित : असल में तो सारी बुरी आदतें व्यसन ही हैं और हमारी सबसे बुरी आदत जो कि अनादिकाल-से[2] चली आ रही है वह है स्वयं को नहीं जानना, स्वयं मे अपनापन नहीं करना व स्वयं में लीन नही होना और इसी कारण से सिर्फ दूसरों को जानते रहना, उनमें अपनापन करते रहना और उन्हीं में लीन-तल्लीन होकर राग-द्वेष (कषाय) करके आकुलित (अशांत) और दुःखी होते रहना व कर्मों का बंध करके संसार बढ़ाते रहना।

---

1.addiction 2.since-ever

प्रवेश : अरे ! यह तो कभी सोचा ही नहीं। यह तो वाकई सबसे बुरी आदत यानि कि सबसे बड़ा व्यसन है।

समकित : हाँ, इनको अंतरंग[1] या भाव-व्यसन कहते हैं और तुमको पता है कि इन्हीं भाव व्यसनों के कारण जुआ आदि बहिरंग[2] या द्रव्य-व्यसनों के सेवन के भाव होते हैं।

प्रवेश : वो कैसे ?

समकित : हमने देखा न कि मोह (मिथ्यात्व), राग-द्वेष (कषाय) आदि ही भाव व्यसन हैं। इन मोह, राग आदि की तीव्रता के कारण ही तो जुआ[3] आदि द्रव्य व्यसनों के सेवन का भाव होता है।

प्रवेश : अरे हाँ ! सातों व्यसनों को डीटेल में समझाईये न ?

समकित : हार-जीत को ध्यान में रखकर रुपये-पैसे, प्रॉपर्टी आदि से दाव या शर्त लगाकर कोई भी खेल खेलना या काम करना द्रव्य **जुआ** व्यसन है। जुआ खेलने वाला व्यक्ति हमेंशा ही फायदे की उम्मीद से या नुकसान के डर से आकुलित (अशांत) रहता है। उसका दिन का चैन[4] व रात की नींद उड़ी रहती है।

प्रवेश : हाऊजी (तम्बोला) भी तो पैसे लगाकर खेलते हैं, वह भी जुआ है ?

समकित : हाँ, बिल्कुल। मार कर या स्वयं मरे हुए जीवों के शरीर के अंगो को खाना यह द्रव्य **माँस भक्षण** (खाना) व्यसन है।

प्रवेश : ओह ! और मदिरापान तो शराब पीने को कहते हैं न ?

समकित : शराब और शराब जैसी दूसरी नशीली चीजें जैसे बियर, भांग, गांजा, आदि लत लगने बाली चीजों का सेवन द्रव्य **मदिरापान** व्यसन है।

वेश्या से प्रेम करना, उसके पास जाना यह द्रव्य **वेश्यागमन** व्यसन है।

प्रवेश : और शिकार खेलना मतलब हंटिंग[5] न ?

1.internal 2.external 3.gambling 4.peace 5.hunting

समकित : हाँ, बेचारे मूक पशु-पक्षियों को अपने मनोरंजन[1] के लिये मारना और मारकर खुश होना द्रव्य **शिकार** व्यसन है।

प्रवेश : वास्तव में कितने कठोर परिणाम होते होंगे ऐसे लोगों के जिनको दूसरों को कष्ट पहुँचाने में मजा आता है।

समकित : हमने भी पिछले जन्मों में कई बार ऐसे काम किये हैं और यदि इस जन्म में भी भगवान के बताये हुए रास्ते पर नहीं चले तो आगे भी यही करते रहेंगे।

प्रवेश : नहीं, हमको अब यह सब गंदे काम कभी नहीं करने हैं। भाईश्री यह परस्त्री क्या होती है ?

समकित : अपनी पत्नी के अलावा संसार की सारी स्त्रियाँ[2] पर-स्त्री हैं। अपनी पत्नी को छोड़कर दूसरी स्त्रियों से प्रेम करना व उनके पास जाना यह द्रव्य **पर-स्त्रीसेवन** व्यसन है।

बिना दी हुई वस्तु को उसके मालिक से पूछे बिना ले लेना या किसी को दे देना द्रव्य **चोरी** व्यसन है।

प्रवेश : वास्तव में यह सातों तो बहुत गंदे काम हैं और इनसे हमारा पैसा, इज्जत, स्वास्थ्य और धर्म सबकुछ नष्ट हो जाता है।

समकित : हाँ बिल्कुल। इसीलिये हमें इन सातों द्रव्य व्यसनों का और इनके मूल कारण[3] भाव व्यसन यानि कि मोह (मिथ्यात्व), राग-द्वेष (कषाय) का त्याग पहले में पहले करना चाहिए और मोह, राग-द्वेष के त्याग का एक मात्र उपाय है स्वयं को जानना, स्वयं में अपनापन करना और स्वयं में लीन होना। जब तक हम इन भाव और द्रव्य व्यसनों का त्याग नहीं करेंगे तब तक लगातार कर्मों का बंध[4] करके संसार में भटक-भटक कर दुःखी होते रहेंगे।

प्रवेश : भाईश्री बार-बार कर्मों की बात आती है, यह कर्म क्या हैं ?

समकित : कल हमको कर्म का पाठ ही तो पढ़ना है।

1.entertainment 2.females 3.root cause 4.bondage

6

# कर्म

समकित : आज का विषय है कर्म। कर्म दो प्रकार के होते हैं:

1. भाव कर्म 2. द्रव्य कर्म

प्रवेश : अच्छा कर्म भी व्यसन की तरह दो प्रकार के होते हैं ?

समकित : हाँ, जीव के यानि कि हमारे मोह (मिथ्यात्व) और राग-द्वेष (कषाय) परिणाम (पर्याय), **भाव कर्म** हैं और उनके निमित्त से बँधने-वाले[1] पुद्‍गल के परिणाम (पर्याय) **द्रव्य कर्म** हैं।

प्रवेश : इसका मतलब यह हुआ कि भाव कर्म-जीव की पर्याय हैं और द्रव्य-कर्म पुद्‍गल की ?

समकित : हाँ, एक जीव का कार्य (पर्याय) है और दूसरा पुद्‍गल का। इनमें आपस-में[2] निमित्त-नैमित्तिक संबंध[3] है।

प्रवेश : यह निमित्त-नैमित्तिक संबंध क्या होता है ?

समकित : वह मैं तुम्हें बाद में कभी समझाऊँगा। अभी तो सिर्फ इतना समझ लो कि इन दोनों में से एक होता है तो दूसरा होता ही है। यानि की जीव जब-जब मोह, राग-द्वेष आदि भाव कर्म करेगा, तब-तब द्रव्य कर्म बँधेंगे ही।

प्रवेश : हाँ और जब-जब द्रव्य कर्म का उदय[4] आयेगा, तब-तब जीव दुःखी होगा ?

समकित : हाँ, लेकिन द्रव्य कर्म के कारण नहीं बल्कि अपने खुद के मोह, राग-द्वेष आदि भाव कर्मों के कारण।

प्रवेश : मतलब ?

---

1.bonding 2.mutually 3.relation 4.arise

समकित : मतलब यह कि यदि जीव यानि कि हम अपने भावकर्म यानि कि मोह, राग-द्वेष को खत्म कर ले तो कोई द्रव्य कर्म का उदय हमें दु:खी नहीं कर सकता।

जैसे आत्मज्ञानी मुनिराज को तीव्र[1] असाता वेदनीय (द्रव्य-कर्म) का उदय होने पर भी मोह, राग-द्वेष आदि भाव-कर्म न के बराबर[2] होने से दु:ख नहीं होता बल्कि वे तो उल्टा अतींद्रिय आनंद का वेदन[3] करते हैं।

प्रवेश : ओह ! सही तो है। यदि कर्म ही जीव को दु:ख दें तो द्रव्य कर्म का उदय तो संसारी जीव को हमेंशा ही रहता है, तब तो जीव द्रव्य कर्म का गुलाम बन जाये और कभी सच्चे सुख को पाने का उपाय कर ही न सके।

समकित : वाह ! आज तो तुमने मुझे खुश कर दिया। गलती द्रव्य कर्मों की नहीं बल्कि हमारी ही है।

प्रवेश : भाईश्री ! जीव के यानि कि हमारे मोह, राग-द्वेष के परिणाम (भाव) तो भाव कर्म हुए, उनके निमित्त से बँधने वाले द्रव्य कर्म कौनसे हैं ?

समकित : द्रव्य कर्म मुख्यरूप-से[4] आठ प्रकार के होते हैं:

1.ज्ञानावरणीय कर्म 2.दर्शनावरणीय कर्म 3.मोहनीय कर्म 4.अंतराय कर्म 5.वेदनीय कर्म 6.आयु कर्म 7.नाम कर्म 8.गोत्र कर्म

प्रवेश : यह नाम तो बहुत कठिन हैं ?

समकित : मैं सरल कर देता हूँ।

**ज्ञानावरणीय कर्म–** जब जीव यानि कि हम अपने खोटे[5] भावों (मोह, राग-द्वेष) से अपने ज्ञान गुण का घात[6] करते हैं तब जिस द्रव्य कर्म का उदय मौजूद (निमित्त) होता है उसे ज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं।

**दर्शनावरणीय कर्म–** उसीप्रकार जब जीव अपने खुद के खोटे भावों से

1.intense 2.neglible 3.experience 4.mainly 5.faulty 6.harm

अपने दर्शन गुण का घात करता है तब जिस द्रव्य कर्म का उदय मौजूद (निमित्त) होता है उसे दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं।

प्रवेश : अरे वाह ! यह तो बहुत ही सरल हो गया।

समकित : **मोहनीय कर्म-** जब जीव अपने खुद के खोटे भावों (मोह, राग-द्वेष) से अपने सुख गुण का घात करता है तब जिस द्रव्य कर्म का उदय मौजूद (निमित्त) होता है उसे मोहनीय कर्म कहते हैं।

**अंतराय कर्म-** जब जीव अपने खुद के खोटे भावों से अपने वीर्य (बल) गुण का घात करता है तब जिस द्रव्य कर्म का उदय मौजूद (निमित्त) होता है उसे अंतराय कर्म कहते हैं।

प्रवेश : ज्ञान, दर्शन, सुख व वीर्य (बल) ये तो जीव के गुण हैं।

समकित : हाँ, इन चारों कर्मों का संबंध तो जीव के ज्ञान, दर्शन, सुख व वीर्य (बल) गुण के घात से ही तो है इसीलिये इनको घातिया कर्म कहते हैं।

प्रवेश : गुणों का घात मतलब ?

समकित : गुणों की पूर्ण व शुद्ध पर्याय प्रगट नहीं हो पाना ही गुणों का घात है।

प्रवेश : ये चार तो हुए घातिया कर्म, बाकी के चार ?

समकित : बाकी के चार अघातिया कर्म कहलाते हैं क्योंकि उनका संबंध जीव के गुणों (अनुजीवी गुणों) के घात होने से नहीं है।

प्रवेश : तो फिर अघातिया कर्मों का संबंध किससे है ?

समकित : सुनो !

**वेदनीय कर्म-** जब जीव अपने भावों के अनुसार[1] अनुकूल[2] या प्रतिकूल[3] संयोगों (स्त्री, पुत्र, मकान, रुपया-पैसा आदि) को पाता है तब जिस कर्म का उदय मौजूद (निमित्त) रहता है उसे वेदनीय कर्म कहते हैं।

1. according 2.favourable 3.unfavourable

**आयु कर्म-** जब जीव अपने भावों के अनुसार मनुष्य, देव, तिर्यंच या नरक आयु पाता है तब जिस द्रव्य कर्म का उदय मौजूद (निमित्त) रहता है उसे आयु कर्म कहते हैं।

**नाम कर्म-** जब जीव अपने भावों के अनुसार अच्छे या बुरे शरीर, रूप, रंग आदि पता है तब जिस कर्म का उदय मौजूद (निमित्त) रहता है उसे नाम कर्म कहते हैं।

**गोत्र कर्म-** जब जीव अपने भावों के अनुसार ऊँचे या नीचे आचरण करने वाले कुल[1] में जन्म लेता है तब जिस कर्म का उदय मौजूद (निमित्त) रहता है उसे गोत्र कर्म कहते हैं।

प्रवेश : अच्छा अब समझ में आया। इसीलिये कहते हैं कि घातिया कर्मों का नाश होने से अरिहंत भगवान को अनंत-ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य प्रगट हो जाते हैं। असल-में तो उन्होंने द्रव्य-कर्मों का नहीं बल्कि अपने मोह, राग-द्वेष आदि भाव-कर्मों का नाश किया है।

समकित : हाँ, बिलकुल सही। इन्हीं अरिहंत भगवान के शरीर आदि संयोगों के छूट जाने पर कहा जाता है कि अरिहंत भगवान बाकी[2] चार अघातिया-कर्मों का भी नाश करके सिद्ध दशा यानि कि मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। और तुम्हें पता है कि कल मोक्ष सप्तमी है। कल के ही दिन लगभग 2800 साल पहले पार्श्वनाथ भगवान ने सिद्ध दशा यानि कि मोक्ष की प्राप्ति की थी।

प्रवेश : अरे वाह ! भाईश्री पार्श्वनाथ भगवान के बारे में बताईये न ?

समकित : आज नहीं, आज बहुत देर हो गयी है। कल सुबह हमको जल्दी उठकर पार्श्वनाथ भगवान का प्रक्षाल व पूजन करने जाना है।

> जिस क्षण विकारी भाव किया उसी क्षण जीव उसका भोक्ता है, कर्म फिर उदय में आयेगा और फिर भोगा जायेगा ऐसा कहना वह व्यवहार है। **-गुरुदेवश्री के वचनामृत**

1.family 2.remaining

| अशुद्धता/अपूर्णता | मूल कर्म प्रकृति | उत्तर कर्म प्रकृति | |
|---|---|---|---|
| अज्ञान | ज्ञानावरण कर्म | मति., श्रुत., अवधि., मनःपर्यय., केवल ज्ञानावरण कर्म | |
| अदर्शन | दर्शनावरण कर्म | चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल, निद्रा, निद्रा-निद्रा,<br>प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि दर्शनावरण कर्म | |
| मोह | मोहनीय कर्म | दर्शन मोहनीय कर्म | मिथ्यात्व<br>सम्यक-मिथ्यात्व<br>सम्यक्त्व मोहनीय |
| राग-द्वेष | | चारित्र मोहनीय कर्म | अनंतानुबंधी (क्रो.मा.मा.लो.)<br>अप्रत्याख्यानावरणीय -"-<br>प्रत्याख्यानावरणीय -"-<br>संज्वलन -"-<br>नोकषायः<br>(हा.रा.अ.शो.भ.जु.स्त्री.पु.न.) |
| असमर्थता | अंतराय कर्म | दान अतंराय कर्म<br>लाभ अंतराय कर्म<br>भोग अंतराय कर्म<br>उपभोग अंतराय कर्म<br>वीर्य अंतराय कर्म | |
| संयोग | वेदनीय कर्म | साता वेदनीय कर्म<br>असाता वेदनीय कर्म | |
| आयु | आयु कर्म | देव आयु कर्म<br>नरक आयु कर्म<br>मनुष्य आयु कर्म<br>तिर्यंच आयु कर्म | |
| शरीरादि | नाम कर्म | शुभ नाम कर्म<br>अशुभ नाम कर्म | |
| कुल | गोत्र कर्म | उच्च गोत्र कर्म<br>निम्न गोत्र कर्म | |

# 7

# तीर्थंकर पार्श्वनाथ

समकित : आज हम मोक्ष सप्तमी यानि कि तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान के मोक्ष कल्याणक के दिन उनके जीवन के बारे में चर्चा करेंगे।

प्रवेश : भाईश्री ! यह कल्याणक क्या होते हैं ?

समकित : जो मांगलिक-प्रसंग[1] स्वयं के और दूसरों के कल्याण[2] में निमित्त हों, उन्हें कल्याणक कहते हैं। तीर्थंकरों के जीवन में ऐसे पाँच मांगलिक प्रसंग आते हैं जो उनके स्वयं के और दूसरों के कल्याण में निमित्त होते हैं।

प्रवेश : वे मांगलिक प्रसंग कौन-कौन से हैं ?

समकित : ऐसे पाँच मांगलिक प्रसंग जो भरत क्षेत्र के हर तीर्थंकर के जीवन में होते हैं जिन्हें पंच-कल्याणक कहते हैं, वे हैं:

1.गर्भ (च्यवन) कल्याणक 2.जन्म कल्याणक 3. दीक्षा (तप) कल्याणक 4.ज्ञान कल्याणक 5.मोक्ष (निर्वाण) कल्याणक

तीर्थंकर के ये पाँचों कल्याणक, स्वर्ग के इंद्रों द्वारा मनाये जाते हैं।

प्रवेश : पार्श्वनाथ भगवान के पाँचों कल्याणक की कहानी सुनाईये न ?

समकित : ठीक है ध्यान से सुनो।

**गर्भ (च्यवन) कल्याणक-** पार्श्वकुमार के अपनी माता के गर्भ में आने से पहले ही सौधर्म इन्द्र ने माता की सेवा में देवियों को नियुक्त[3] कर दिया व रत्नों[4] की वर्षा शुरु करवा दी।

प्रवेश : आपने तो बताया था कि इंसान ही भगवान बनते हैं, लेकिन साधारण-इंसानों के साथ ऐसा कहाँ होता है ?

---

1. auspicious-ocassions 2.welfare 3.appoint 4.jewels

समकित : भगवान हमारी तरह इंसान तो थे, लेकिन साधारण[1] इंसान नहीं। वे पिछले जन्मों से ही आत्मा की साधना शुरू कर सातिशय[2] पुण्य बाँध कर आये थे। हाँ, आत्म-साधना शुरू करने से पहले वे भी हम जैसे साधारण ही थे।

प्रवेश : इसका मतलब हम भी जब आत्मा की साधना शुरू कर देंगे तो विशेष[3] हो जायेंगे ?

समकित : हाँ बिल्कुल। सभी तीर्थंकर पहले हम जैसे साधारण थे, फिर आत्मा की साधना शुरू कर के विशेष हो गये।

प्रवेश : और जन्म कल्याणक ?

समकित : **जन्म कल्याणक–** आज से लगभग 2900 साल पहले काशी (बनारस) के राजा अश्वसेन की पत्नी महारानी वामादेवी के यहाँ पार्श्वकुमार का जन्म हुआ। सौधर्म इंद्र पार्श्वकुमार को सुमेरू पर्वत के पाण्डुक वन की पाण्डुक शिला पर ले गये और वहाँ क्षीरसमुद्र के प्रासुक जल से भरे विशाल कलशों से भगवान का जन्माभिषेक कराया।

प्रवेश : इतने छोटे बच्चे का इतने विशाल कलशों से अभिषेक ?

समकित : अरे ! भगवान जन्म से ही अतुल्य-बल[4] के धारी होते हैं। कोई उनका बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

प्रवेश : अरे वाह ! भगवान के आत्म-बल के साथ-साथ उनके पुण्य-उदय से शरीर-बल भी अतुल्य होता है।

समकित : हाँ, आत्मा की साधना करने वालों को पुण्य और पुण्य के फल की चाह नहीं रहती लेकिन ये दोनों उनके पीछे-पीछे दौड़ते हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! पर माता के गर्भ में आना और जन्म लेना तो कोई अच्छी बात नहीं है। इसी का नाम तो संसार है, फिर इन प्रसंगों को कल्याणक (मांगलिक) क्यों कहा जाता है ?

1.common 2.extra-ordinary 3.special 4.incredible-strength

समकित : हाँ, हमारा-तुम्हारा माता के गर्भ में आना, जन्म लेना कोई अच्छी बात नहीं है, न ही हमारे खुद के लिए कल्याणकारी है और न ही दूसरों के लिये। लेकिन तीर्थंकर का यह अंतिम गर्भ और जन्म है इसलिये उनके स्वयं के लिये तो कल्याणकारी है ही व अपने इस जन्म में वह दूसरों को भी जन्म-मरण के चक्कर[1] से छूटने का उपाय बतायेंगे, इसलिये दूसरों के लिए भी कल्याणकारी है।

प्रवेश : राजकुमार पार्श्वनाथ को वैराग्य कैसे हुआ ?

समकित : **दीक्षा (तप) कल्याणक-** एक बार जंगल में पार्श्वकुमार अपने दोस्तों के साथ हाथी पर बैठकर घूमने निकले। जंगल में उन्होंने देखा कि एक तपसी[2] आग जलाकर पंचाग्नि तप कर रहा है। पार्श्वकुमार ने अपने अवधिज्ञान से जान लिया कि जलती हुई लकड़ी मे नाग-नागिन का जोड़ा[3] भी जल रहा है तो उन्होंने दया वश तपसी को ऐसा पाप कार्य करने से मना किया जिसमें धर्म के नाम पर तीव्र हिंसा होती हो, क्योंकि **हिंसा में कभी भी धर्म नहीं हो सकता।** तपसी क्रोध से आग-बबूला हो गया। जब उस लकड़ी को काट कर देखा गया तो सच में उसमें नाग-नागिन का जोड़ा तड़प रहा था।

प्रवेश : फिर पार्श्वकुमार ने उनको मरने से बचा लिया ?

समकित : नहीं, **जिसकी आयु पूरी हो गयी हो उसे मरने से भगवान भी नहीं बचा सकते।**

प्रवेश : फिर ?

समकित : पार्श्वकुमार को उन पर दया आ गयी और उन्होंने नाग-नागिन के जोड़े को णमोकार मंत्र सुनाया व संबोधित[4] किया जिससे उन दोनों की कषाय मंद[5] हुई और वे मरकर भवनवासी देवों में धरणेंद्र और उसकी देवी के रूप में जन्मे ।

प्रवेश : चलो उनकी अच्छी गति हो गयी।

1.cycle 2.ascetic 3.couple 4.address 5.low

समकित : शायद तुमने गति वाला पाठ ध्यान से नहीं पढ़ा। चारों ही गतियाँ दुःख रूप हैं। एक पंचम गति यानि कि मोक्ष ही सच्चे सुख रूप है। इसलिये मात्र वही अच्छी गति है।

प्रवेश : तपसी का क्या हुआ ?

समकित : तपसी मरकर संवर नाम का देव हुआ।

प्रवेश : और पार्श्वकुमार ?

समकित : इस दुःखद-घटना[1] को देख पार्श्वकुमार को वैराग्य आ गया। वैराग्य की अनुमोदना[2] लोकांतिक देवों द्वारा की गयी। इंद्र और देवता लोग पार्श्वकुमार को पालकी[3] में बैठाकर वन में ले गये जहाँ उन्होंने सिद्धों को नमस्कार करके जिन दीक्षा धारण कर ली व आत्म-ध्यान[4] में मग्न हो गये व आत्मलीनता का बढ़ाने का पुरुषार्थ करने लगे। एक बार मुनिराज पार्श्वनाथ आत्म-ध्यान में मग्न थे उसी समय वो संवर देव वहाँ से निकला। मुनिराज को देख उसका पिछले जन्म का बैर जाग गया और उसने मुनिराज पार्श्वनाथ पर ओले-शोले, पत्थर-पानी बरसाकर घोर उपसर्ग किया।

प्रवेश : फिर मुनिराज पार्श्वनाथ की रक्षा कैसे हुई ?

समकित : मुनिराज पार्श्वनाथ का आत्मा तो आत्म-ध्यान से सुरक्षित[5] ही था। जिस कारण उनको जरा सा भी विकल्प[6] नहीं हुआ बल्कि वे तो आत्म-ध्यान में और गहरे उतरकर पहले से भी अधिक निर्विकल्प अतींद्रिय आनंद[7] का वेदन करने लगे।

प्रवेश : लेकिन शरीर ..?

समकित : बज्रवृषभ नाराज संहनन[8] होने के कारण उनका शरीर भी सुरक्षित था। हाँ, यह जरूर है कि धरणेन्द्र और उनकी देवी को पिछले जन्म का उपकार[9] याद आ गया और उनको भगवान की रक्षा करने का भाव हुआ और वे तुरन्त ही अपनी भावना को पूरा करने चले आये और आना भी चाहिये क्योंकि **उपकारी का उपकार भूलना महापाप है।**

1.sadly-incident 2.praising 3.sedan 4.self-meditation 5.protected 6.uneasiness 7.bliss 8.bodily-habitus 9.compassion

प्रवेश : फिर संवर देव का उपसर्ग दूर हुआ ?

समकित : **ज्ञान कल्याणक-** उपसर्ग तो दूर होना ही था क्योंकि मुनिराज पार्श्वनाथ आत्मलीनता की पूर्णता कर चार घातिया कर्मों का नाश कर भगवान (अरिहंत) पार्श्वनाथ जो बन गये थे।

प्रवेश : मतलब उन्होंने अरिहंत दशा को प्रगट कर लिया ? फिर तो उनका समवसरण भी लगा होगा ?

समकित : हाँ, सौधर्म इंद्र की आज्ञा[1] से कुवेर ने भव्य[2] समवसरण की रचना की। भगवान का दिव्य-उपदेश[3] लगभग पूरे भारत में हुआ।

प्रवेश : फिर ?

समकित : **मोक्ष (निर्वाण) कल्याणक-** सौ वर्ष की आयु पूरी होने पर आज से लगभग 2800 साल पहले श्रावण शुक्ल सप्तमी (मोक्ष-सप्तमी) के दिन बाकी रहे चार अघातिया कर्मों का नाश कर सम्मेद-शिखर के स्वर्णभद्र कूट[4] से भगवान सिद्ध हो गये यानि कि मोक्ष चले गये।

प्रवेश : फिर ....?

समकित : फिर क्या ? अब अनंत काल तक पूर्ण और अतींद्रिय आनंद का वेदन करेंगे और इस दुःखदायक[5] संसार में कभी-भी लौटकर नहीं आयेंगे।

प्रवेश : यह तो उन्होंने बहुत अच्छा किया।

समकित : ये तो हुई उनकी बात। अब कल तुम सोचकर आना कि तुमको क्या करना है और क्या बनना है।

> ज्ञान और वैराग्य एक-दूसरे को प्रोत्साहन देने वाले हैं। ज्ञान रहित वैराग्य वह सचमुच वैराग्य नहीं है किन्तु रुँधा हुआ कषाय है। परन्तु ज्ञान न होने से जीव कषाय को पहिचान नहीं पाता है। ज्ञान स्वयं मार्ग को जानता है, और वैराग्य है वह ज्ञान को कहीं फँसने नहीं देता किन्तु सबसे निस्पृह एवं स्वकी मौज में ज्ञान को टिका रखता है। ज्ञान सहित जीवन नियम से वैराग्यमय ही होता है। **-बहिनश्री के वचनामृत**

1.order 2.grand 3.divine-preachings 4.hill-top 5.miserable

## ४

# भगवान बनेंगे

समकित : तो प्रवेश, आज सोचकर आये जो कल मैंने तुमसे बोला था ?

प्रवेश : जी भाईश्री !

समकित : तो सुनाओ फिर !

प्रवेश : सम्यकदर्शन प्राप्त करेंगे।
सप्त-भयों से नहीं डरेंगे।
सप्त तत्व का ज्ञान करेंगे।
जीव-अजीव पहिचान करेंगे ।।

स्व-पर भेदविज्ञान करेंगे।
निजानन्द का पान करेंगे ।।
पंच प्रभु का ध्यान धरेंगे।
गुरूजन का सम्मान करेंगे ।।

जिनवाणी का श्रवण करेंगे।
पठन करेंगे, मनन करेंगे ।।
रात्रि भोजन नहीं करेंगे।
बिना छना जल काम न लेंगे ।।

निज स्वभाव को प्राप्त करेंगे।
मोह भाव का नाश करेंगे ।।
रागद्वेष का त्याग करेंगे।
और अधिक क्या बोलो वीरों ?
**भक्त नहीं, भगवान बनेंगे ।।**

समकित : बहुत बढ़िया। अब इसका अर्थ भी समझा दो।

प्रवेश : जी भाईश्री !
भगवान पार्श्वनाथ की तरह मोक्ष जाने के लिये मुझे भी सबसे पहले उनकी तरह ही सम्यकदर्शन[1] प्राप्त करना है यानि कि स्वयं को जानना है, स्वयं में अपनापन करना है ताकि मैं हम भी पार्श्वनाथ भगवान की

---

1.self-belief

तरह सातों प्रकार के भय[1] एवं उपसर्गों[2] से न डरूँ।

और ऐसे सम्यकदर्शन को पाने के लिये मुझे सबसे पहले सात-तत्वों[3] का यानि कि जीव और अजीव का सच्चा ज्ञान करना होगा।

और ऐसा तत्वज्ञान करके, मैं शरीर आदि अजीव तत्व नहीं बल्कि जानने-देखने के स्वभाव वाला जीव तत्व हूँ ऐसे भेद-विज्ञान का अभ्यास मैं हर-एक अनुकूल और प्रतिकूल प्रसंग[4] में करुँगा। और आत्मा के आनंद में लीन होने का प्रयास करूँगा।

और जब तक मैं स्वयं को जानकर, स्वयं में अपनापन कर पूर्ण रूप से स्वयं में लीन नहीं हो जाता तब तक पंच परमेष्ठी की शरण में रहूँगा। सच्चे वीतरागी गुरु भगवंतों की आज्ञा का पालन करुँगा। जिनवाणी को सुनूँगा-पढ़ूँगा और उसका चिंतवन व मनन करूँगा एवं रात्रि भोजन, बिना-छना जल, जमीकन्द[5] आदि का सेवन कभी नहीं करुँगा।

और एक दिन जरूर ही स्वयं को जानकर, स्वयं में अपनापन कर और पूर्ण रूप से स्वयं में लीन होकर मोह, राग-द्वेष आदि का अभाव (खातमा) कर अपने आत्मा के गुणों (स्वभाव) को प्रगट करुँगा क्योंकि मुझे मात्र भगवान का भक्त[6] नहीं बना रहना हैं बल्कि स्वयं भगवान बनना है। क्योंकि यही भगवान की आज्ञा है और भगवान की आज्ञा को मानने वाला ही भगवान का सच्चा भक्त है। इस प्रकार जब मैं भगवान बनने का प्रयास[7] शुरु करुँगा तो भगवान का सच्चा भक्त तो अपने-आप ही बन जाऊँगा।

भगवान की प्रतिमा देखकर ऐसा लगे कि अहा ! भगवान कैसे स्थिर हो गये हैं ! कैसे समा गये हैं ! चैतन्य का प्रतिबिम्ब हैं ! तू ऐसा ही है ! जैसे भगवान पवित्र हैं, वैसा ही तू पवित्र है, निष्क्रिय है, निर्विकल्प है। चैतन्य के सामने सब कुछ पानी भरता है।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1. fears 2.contrarities 3.seven-elements 4.incidents 5.roots/yams 6.devotee 7.efforts

## 1

# सुख

समकित : संसार के सभी जीव सुख चाहते हैं। चींटी से लेकर हाथी तक, मनुष्यों से लेकर देवताओं तक कोई भी जीव ऐसा नहीं है जो सुख न चाहता हो और संसार[1] में एक भी जीव ऐसा नहीं है जो सुख पाने का उपाय[2] न कर रहा हो।

कोई पड़े रहने में सुख मानता हैं तो पड़े रह कर और कोई हाथ-पैर चलाने में सुख मानता है तो हाथ-पैर चलाकर सुख पाने का उपाय कर रहा है। लेकिन इस सब के बाबजूद भी यह एक सर्वानुभूत-तथ्य[3] है कि कोई भी संसारी जीव सुखी नहीं है, सभी को कुछ न कुछ दुःख लगा ही रहता है।

जबकि ऐसा भी नहीं है कि इस जीव ने यह उपाय मनमाने किये हों बल्कि एक्सपर्ट्र्स[4] से सलाह[5] लेकर किये हैं। यदि यह मानता है कि मेरा शरीर स्वस्थ्य[6] रहने पर मैं सुखी रहूँगा तो अच्छे से अच्छे डॉक्टर की सलाह लेकर उपाय[7] किये। यदि इसको लगा कि मेरे पास बेशुमार पैसा रहेगा तो में सुखी रहूँगा तो अच्छे से अच्छे सी.ए. की सलाह लेकर उपाय किये और यदि उसने सोचा कि आलीशान घर होने पर सुख होगा तो अच्छे से अच्छे आर्किटेक्ट की सलाह लेकर उपाय किये लेकिन यह सब कुछ करने के बाद भी सुख नहीं पा सका या यूँ कहो कि दु:ख दूर नहीं हुआ।

प्रवेश : क्या इन सभी व्यक्तियों[8] की सलाह झूठी थी ? कोई झूठी सलाह क्यों देता है या झूठ क्यों बोलता है ?

समकित : यदि इसके कारणों[9] पर विचार किया जाये तो हमें तीन कारणें समझ में आते हैं: 1. राग 2. द्वेष 3. अज्ञान

इसे हम एक उदाहरण से समझ सकते हैं :

---

1.universe 2.measures 3.wellknown-fact 4.experts 5.advise
6.healthy 7.measures 8.persons 9.causes

बचपन में हम सबने एक कविता सुनी है- **जॉनी-जॉनी यस पापा, ईटिंग शुगर, नो पापा**...! क्या कभी हमने सोचा कि जॉनी ने झूठ क्यों बोला ? बहुत विचार करने पर इसके तीन ही कारण समझ में आते हैं:

1. जॉनी को शक्कर से **राग**[1] है और यदि वह सच बोलता है कि उसने ही शक्कर खायी है तो कल से शक्कर का डिब्बा छिपा कर रख दिया जायेगा।

2. जॉनी को कामवाली बाई से **द्वेष**[2] है और यदि वह झूठ बोलेगा तो शक सीधा काम वाली बाई पर जायेगा और कामवाली बाई की छुट्टी हो जायेगी।

3. जॉनी को शक्कर सम्बन्धी[3] **अज्ञान**[4] है यानि कि जॉनी जानता ही नहीं जो उसके मुँह में है उसे शक्कर कहते हैं।

अब हम जरा ठण्डे दिमाग से सोचें कि सुखी होने के लिये आजतक हमने जिन-जिन लोगों से सलाह ली क्या वह ऐसे ही रागी-द्वेषी व अज्ञानी नहीं थे ? और यदि थे तो फिर उनकी सलाह झूठी ही थी। इसी कारण आजतक उनकी सलाह के मुताबिक[5] अनेक उपाय करने के बाबजूद भी हम सुख न पा सके बल्कि दुःख ही बढ़ता गया। अब यदि हमको सच्चा सुख पाना है और दुःख से मुक्त होना है तो ऐसे व्यक्तियों की सलाह लेना चाहिये जो कि रागी-द्वेषी न होकर वीतरागी हों और अज्ञानी न होकर सर्वज्ञ हों।

प्रवेश : लेकिन रागी-द्वेषी, अज्ञानी व्यक्तियों की सलाह के मुताबिक उपाय करने पर भी तो लोग सुखी होते हुये देखे जाते हैं ?

स्मकित : इसका उत्तर हमको आगे के पाठों में मिलेगा।

> जिस ज्ञान के साथ आनन्द न आये वह ज्ञान ही नहीं है, किन्तु अज्ञान है।
>
> **-गुरुदेवश्री के वचनामृत**

1.attachment 2.malice 3.related
4.ignorance 5.accordingly

# 2

# सुख का स्वरूप

समकित : पिछला पाठ पढ़कर यह प्रश्न उठना स्वभाविक[1] है कि रागी-द्वेषी, अज्ञानी व्यक्तियों की सलाह के मुताबिक उपाय करने पर भी तो लोग सुखी होते हुये देखे जाते हैं। इस प्रश्न के समाधान[2] के लिये हमें सुख का वास्तविक (असली) स्वरूप[3] समझना होगा और उससे भी पहले हमें दुःख के असली स्वरूप को समझ लेना चाहिये क्योंकि असली सुख से हम परिचित[4] भले ही न हो लेकिन दुःख तो हम सभी हमेंशा से पा ही रहे हैं।

दुःख कहते हैं आकुलता[5] को और आकुलता का मूल कारण है-इच्छा[6], इसलिये वास्तव में इच्छा ही दुःख है और जब हम कहते हैं कि इच्छा ही दुःख है तो इसका अर्थ होता है कि इच्छा के मूल[7] में भी दुःख है, इच्छा पूर्ति[8] के उपाय में भी दुःख है और उसके फल[9] में भी दुःख ही है।

प्रवेश : भाईश्री ! कोई उदाहरण ?

समकित : जैसे किसी व्यक्ति को पानी पीने की इच्छा हुई और पानी पीने की इच्छा जब होती है कि जब प्यास लगे, प्यास यानि कि तृषा-वेदना। प्यास के नाम में ही वेदना यानि आकुलता (दुःख) शब्द जुड़ा हुआ है। कहने का मतलब यह है कि जब पानी पीने की इच्छा हुई तब दुःख हुआ, **इसप्रकार इच्छा के मूल में ही दुःख है।**

फिर अपनी इस इच्छा को पूरी करने के लिये वह व्यक्ति अपने आरामदायक बिस्तर से उठा और किचिन तक पानी लेने गया, गिलास उठाया, पानी भरा और पानी पीकर अपनी इच्छा की पूर्ति का उपाय किया जो कि आकुलता (दुःख) रूप था। यदि ऐसा न हो तो क्यों लोग पानी आदि लाने[10] के लिये नौकरों को रखते ? **इसप्रकार इच्छा की पूर्ति के उपाय में भी दुःख है।**

---

1.natural 2.solution 3.nature 4.familiar 5.uneasiness
6.desires 7.root 8.fulfilment 9.result 10.serving

और जब उसने पानी पी लिया तब उसकी पानी की इच्छा कुछ समय के लिये शान्त[1] हो गई और वही पानी दु:ख रुप लगने लगा तभी तो एक-दो गिलास पानी पीने के बाद व्यक्ति फिर पानी की ओर देखना भी पसंद नहीं करता और इतना ही नहीं जिस समय पानी पीने की इच्छा शान्त हुई उसी समय वापस अपने आरामदायक विस्तर पर जाकर बैठने की या फिर कोई और नयी इच्छा उत्पन्न हो गई। **इस प्रकार इच्छा के फल में भी दु:ख ही है।**

इसी तरह यह इच्छा यानि कि दु:ख का सिलसिला[2] बराबर चलता ही रहता है। जिस समय एक इच्छा कुछ समय के लिये शान्त[3] होती है उसी समय नयी इच्छा उत्पन्न (पैदा) हो जाती है और जिस समय वह नयी इच्छा शांत होती है तो उसी समय दोबारा वही पुरानी या कोई और नयी इच्छा उत्पन्न हो जाती है। इसप्रकार आकुलता का सिलसिला चलता ही रहता है, दु:ख लगातार बना ही रहता है।

और फिर इसकी इच्छाएँ असीमित-वस्तुओं[4] को भोगने की हैं। एक वस्तु इकट्ठी[5] करता है, तो दूसरी वस्तु छूट जाती है, कारण कि सभी वस्तुएँ एक ही व्यक्ति को प्राप्त हो जायें यह असंभव[6] है, क्योंकि संसार की स्थिति[7] कुछ इस प्रकार है- **एक अनार और सौ बीमार।**

और यदि किसी प्रकार ऐसा हो भी जाये तो इसके भोगने की शक्ति भी सीमित[8] है और यदि इसकी भोगने की शक्ति दूसरों की अपेक्षा कुछ ज्यादा भी हो, तो **जब दाँत होते हैं तब चने नहीं होते और जब चने होते हैं, तब दाँत नहीं होते।**

जैसे कि बचपन में भोगने का समय और शक्ति होती है लेकिन मनचाही[9] भोग सामग्री नहीं होती क्योंकि माँ-बाप के आधीन हैं। जवानी में भोग सामग्री और भोगने की शक्ति होती है लेकिन भोगने का समय नही होता और बुढ़ापे में भोग समग्री और समय होता है लेकिन भोगने की शक्ति नहीं होती। इस प्रकार दु:ख कभी मिटता नहीं।

1. suppress 2.sequence 3.suppress 4.infinite-objects 5.gather 6.impossible 7.situation 8.limited 9.desired

प्रवेश : भाईश्री ! यह तो बात रही, दुःख के असली स्वरूप की। अब असली सुख क्या है यह भी बता दीजिए ?

समकित : तो जैसे कि हमने देखा कि असल में दुःख नाम है-आकुलता का और आकुलता नाम है- इच्छा का। उसी प्रकार असली सुख नाम है-निराकुलता का और निराकुलता नाम है-इच्छा के अभाव का। ध्यान रहे यहाँ इच्छा के अभाव[1] का नाम सुख कहा गया है न कि इच्छाओं को दबाने[2] या इच्छाओं को पूरा[3] करने का। यह दोनों उपाय तो आकुलता रूप होने से दुःख ही हैं क्योंकि दोनों ही केस[4] में इच्छा (दुःख) तो उत्पन्न (पैदा) हो ही चुकी होती है। इच्छा उत्पन्न हुये बिना न तो इच्छा को दबाना संभव[5] है और न ही इच्छा को पूरा करना।

प्रवेश : भाईश्री ! फिर इच्छाओं के अभाव का अर्थ क्या है ?

समकित : इच्छा के अभाव का अर्थ है इच्छा का उत्पन्न (पैदा) ही न होना । वही निराकुलता है, वही सच्चा सुख है। यही कारण है कि सुख पाने का उपाय करने से पहले सुख का असली स्वरुप समझना बहुत ही जरुरी है। सुख का असली स्वरुप समझे बिना सुखी होने का उपाय करना एक बड़ी भूल है और उससे भी बड़ी भूल है ऐसे व्यक्तियों से सुख पाने के उपाय पूछना जो खुद इच्छा रूपी दुःख से दुःखी हैं, जिन्होंने खुद सच्चे सुख को नहीं पाया है।

यदि हमें सच्चा सुख पाना है तो ऐसे व्यक्तियों को खोजना होगा जो सच्चे सुख को पा चुके हैं। ऐसे व्यक्तियों की सलाह/उपदेश से ही हमें सच्चा सुख प्राप्त हो सकेगा।

प्रवेश : आपने पिछले पाठ में सच्चा सुख पाने के लिये वीतराग और सर्वज्ञ व्यक्तियों की सलाह की बात की थी और इस पाठ में सुखी व्यक्तियों की सलाह की बात की है। ऐसे वीतरागी, सर्वज्ञ और सुखी व्यक्ति कौन हैं ?

समकित : हमारा अगला विषय यही है।

1.abolishment 2.suppression 3.fulfilment 4.case 5.possible

# ③
# वीतराग-सर्वज्ञ-सुखी
## (हितोपदेशी)

समकित : पहले व दूसरे पाठ में हमने देखा कि सच्चे सुख को पाने के लिये हमको ऐसे व्यक्तियों की सलाह (उपदेश) की जरुरत है जो राग द्वेष से रहित वीतरागी हों, अज्ञान से रहित सर्वज्ञ हों और दुःख से रहित सुखी हों।

अब यह प्रश्न[1] खड़ा होता है कि ऐसे व्यक्ति कौन हैं ? इसका उत्तर है कि ऐसे अनंत तीर्थंकर भूतकाल[2] मे हुए हैं, ऐसे अनंत तीर्थंकर भविष्य[3] में होगे और ऐसे चौबीस तीर्थंकर वर्तमान[4] में भी इस परम पवित्र भारतीय बसुंधरा[5] पर हुए हैं।

जिसमें अंतिम[6] तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी ने भी पिछले तीर्थंकरों की ही तरह आत्म साधना के बल से वीतरागता, सर्वज्ञता और अनंत सुख को प्राप्त किया और अपनी उस सर्वज्ञता (केवलज्ञान) से विश्व के सभी पदार्थों[7] को एक साथ जान लिया। वास्तव में जान क्या लिया सहजरूप-से[8] उनके जानने में आ गये।

जो कुछ भी जानने में आया उसी का अंश[9] सहज रूप से उनकी दिव्य-ध्वनि (वाणी) में भी आ गया। जो कुछ वाणी में आया उसको श्री गौतम स्वामी आदि गणधरों ने बारह अंगो में वर्गीकृत[10] कर दिया जिसे उनके बाद होने वाले आचार्य भगवंतों ने आगम[11] के रुप में ताड़पत्रों[12] पर लिख दिया और उन आगमों का स्पष्टीकरण[13] समय-समय पर होने वाले ज्ञानी-संतों और विद्वानों के माध्यम[14] से होता रहा है जो कि आज हमको जिनवाणी के रूप[15] में हमको प्राप्त है।

प्रवेश : जिनवाणी में आखिर है क्या ?

---

1.question 2.past 3.future 4.present 5.land 6.last 7.substances 8.spontaneously 9.part 10.categorize 11. scriptures 12.palm-leaves 13. clarification 14.medium 15.form

समकित : वही जो आचार्यों ने लिखा, जो गणधरों ने बारह अंगों में वर्गीकृत किया, जो भगवान की दिव्य-ध्वनि (वाणी) में आया और जो भगवान के दिव्य केवलज्ञान में जानने में आया।

प्रवेश : भगवान के केवलज्ञान में क्या जानने में आया ?

समकित : वही जो कुछ विश्व[1] में है।

प्रवेश : विश्व में क्या है ?

समकित : विश्व में वस्तुएँ[2] हैं, जिनको हम द्रव्य नाम से भी जानते हैं।

प्रवेश : द्रव्य के बारे में विस्तार[3] से बताईये न।

समकित : आज नहीं कल।

द्रव्य-गुण-पर्याय में सारे ब्रह्माण्ड का तत्व आ जाता है। 'प्रत्येक द्रव्य अपने गुणों में रहकर स्वतंत्र रूप से अपनी पर्यायरूप परिणमित होता है', 'पर्याय द्रव्य को पहुँचती है, द्रव्य पर्याय को पहुँचता है': ऐसी-ऐसी सूक्ष्मता को यर्थार्थ रूप से लक्ष में लेने पर मोह कहाँ खड़ा रहेगा ?

**-बहिनश्री के वचनामृत**

परिणाम (पर्याय) परिणामी (द्रव्य) से भिन्न नहीं है, क्योंकि परिणाम और परिणामी अभिन्न वस्तु है, भिन्न-भिन्न दो नहीं हैं। पर्याय जिसमें से हो उससे वह भिन्न वस्तु नहीं हो सकती। सोना और सोने का गहना दोनों अलग हो सकते हैं ? कदापि नहीं होते । सोने में से अँगूठी की अवस्था हुई, वहाँ अँगूठी रूप अवस्था कहीं रह गई और सोना अन्यत्र कहीं रह गया ऐसा हो सकता है ? कभी नहीं होता...वस्तु (द्रव्य) के बिना अवस्था (पर्याय) नहीं होती और अवस्था के बिना वस्तु नहीं हो सकती।

**-गुरुदेवश्री के वचनामृत**

1.universe 2.objects 3.detail

# 4
# द्रव्य-गुण-पर्याय

समकित : पिछले पाठ में हमने देखा कि विश्व में अनंत वस्तुएँ यानि की द्रव्य[1] हैं। वास्तव में **अनंत[2] द्रव्यों का समूह[3] ही विश्व है।**

प्रवेश : जैसे ?

समकित : जैसे यह पुस्तक एक द्रव्य है, जिस टेबल पर रखकर आप इसको पढ़ रहे हैं वह और जिस कुर्सी पर हम बैठे हैं वह भी एक द्रव्य है और तो और हम स्वयं भी एक द्रव्य हैं। अन्तर बस इतना हैं कि पुस्तक, टेबल, कुर्सी आदि अजीव[4] द्रव्य हैं और हम सभी जीव[5] द्रव्य हैं, लेकिन हैं तो आखिर सभी द्रव्य ही न और सभी द्रव्य गुणों[6] से भरपूर हैं। वास्तव[7] में तो **गुणों का समूह ही द्रव्य है।**

प्रवेश : यह गुण क्या होते हैं?

समकित : द्रव्य की शक्तियों[8] को गुण कहते हैं। यह गुण सम्पूर्ण[9] द्रव्य की हर एक पर्याय में कायम[10] रहते हैं।

प्रवेश : यह पर्याय क्या होती है ?

समकित : हर-एक द्रव्य के हर-एक गुण की अवस्था[11] लगातार[12] बदलती रहती है जिसे हम पर्याय कहते हैं।

प्रवेश : जैसे ?

समकित : **मान लो** यह पेज एक अजीव द्रव्य है। अब जब यह द्रव्य है तो इसमें गुण भी जरूर होंगे। इसमें भी अनंत गुण हैं। जिनमे से एक रंग (वर्ण) नाम का गुण है जिसका अर्थ है कि इस अजीव द्रव्य में एक ऐसी शक्ति है कि इसका कुछ न कुछ रंग जरूर ही रहेगा, चाहे यह गल जाये, जल जाये या सड़ जाये।

---

1.objects 2.infinite 3.group 4. non-living 5.living 6.attributes 7.actual 8.capabilities 9.entire 10.sustained 11.state 12.continuously

प्रवेश : इसका मतलब यह हुआ कि जलने पर न तो यह द्रव्य नष्ट[1] होगा न इसका रंग नाम का गुण नष्ट होगा बस यदि कुछ नष्ट होगा तो इसके रंग नाम के गुण की सफेद पर्याय[2] ?

समकित : हाँ, बिल्कुल सही समझे। न तो कभी कोई द्रव्य नष्ट होता है न ही उसका कोई गुण। यदि कुछ नष्ट होता हैं तो वह है द्रव्य के गुण की पर्याय। द्रव्य और उसके गुणों का नष्ट न होना ही द्रव्य की शाश्वतता[3] है।

इसी प्रकार न अजीव द्रव्य बदलकर जीव द्रव्य होता है ना ही उसका रंग नाम का गुण बदल कर गंध नाम का गुण होता है। बस इसके रंग नाम के गुण की सफेद पर्याय बदलकर पीली/भूरी/काली हो जाती है।

प्रवेश : इसका मतलब यह हुआ कि न द्रव्य बदलते हैं, न ही उसके गुण बदलते हैं यदि कुछ बदलता है तो द्रव्य के गुणों की पर्याय ?

समकित : हाँ, बिल्कुल सही। द्रव्य और उसके गुणों का न बदलना ही द्रव्य की शुद्धता[4] है।

कुल मिलाकर हम इस निष्कर्ष[5] पर पहुँचते हैं कि द्रव्य और उसके गुण शाश्वत[6] और शुद्ध[7] रहते हैं, यदि कुछ अशाश्वत/क्षणिक[8] और अशुद्ध[9] होता है, तो वह है द्रव्य के गुणों की पर्याय।

प्रवेश : भाईश्री ! शाश्वत और शुद्ध द्रव्य के बारे में विस्तार से बताईये न ?

समकित : हमारा अगला पाठ यही है।

जिसने पर्याय दृष्टि हटा दी और द्रव्य दृष्टि प्रगट की वह दूसरे को भी द्रव्य दृष्टि से पूर्णानन्द प्रभु ही देखता है। पर्याय का ज्ञान करें, परन्तु आदरणीय-रूप में, दृष्टि के आश्रय-रूप में तो उसको त्रैकालिक ध्रुव शुद्ध द्रव्य ही है। **-गुरुदेवश्री के वचनामृत**

1.destroy 2.state 3.eternity 4.purity 5.conclusion 6.eternal 7.pure 8.momentary 9.impure

# 5

# द्रव्य का स्वरूप

समकित : जैसा कि हमने पिछले पाठ में देखा कि गुणों का समूह ही द्रव्य है और गुण की एक समय की अवस्था ही पर्याय है।

साथ ही हमने यह भी देखा कि गुण शाश्वत और शुद्ध हैं और गुणों का समूह द्रव्य भी शाश्वत और शुद्ध है। यदि कुछ क्षणिक और अशुद्ध होता है तो वह है द्रव्य के गुणों की पर्याय।

प्रवेश : द्रव्य कितने गुणों का समूह है ?

समकित : हर-एक द्रव्य अनंत[1] गुणों का समूह है।

प्रवेश : हर-एक गुण की कितनी पर्यायें होती हैं ?

समकित : हर एक गुण की अनादि काल से लेकर अनंत काल तक एक के बाद एक अनंत पर्यायें होती रहती हैं, लेकिन एक समय में केवल एक पर्याय ही प्रगट[2] रहती है, जिसको हम द्रव्य के गुण की वर्तमान-पर्याय[3] कहते हैं । इस प्रकार अनंत पर्यायों का समूह गुण है।

प्रवेश : क्या द्रव्य दो ही प्रकार के होते हैं जीव और अजीव ?

समकित : हाँ, द्रव्य के प्राथमिक-भेद[4] तो यही हैं-जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य। अब हम इनके प्रभेदों[5] की चर्चा करते हैं। पहले जीव द्रव्य के तो कोई भेद[6] होते ही नहीं, लेकिन अजीव द्रव्य जरूर पाँच प्रकार के होते हैं, जो कि हम इस चार्ट के द्वारा समझेगें:

1. जीव द्रव्य[7]

अजीव द्रव्य[8]

---

1.infinite 2.apparent 3.present-state 4.primary-classificatios
5.subtypes 6.types 7.living objects 8.non-living objects

2.पुद्गल द्रव्य[1]
3.धर्म द्रव्य[2]
4.अधर्म द्रव्य[3]
5.आकाश द्रव्य[4]
6.काल द्रव्य[5]

| द्रव्य | | गुण | पर्याय |
|---|---|---|---|
| जीव | जीव | ज्ञान, दर्शन, श्रद्धा, चारित्र | |
| अजीव | पुद्गल | स्पर्श, रस, गंध, वर्ण | |
| | धर्म | गति-निमित्तता | |
| | अधर्म | स्थिति-निमित्तता | |
| | आकाश | अवगाहन-निमित्तता | |
| | काल | परिणमन-निमित्तता | |
| | लोक | | |
| | अलोक | | |

प्रवेश : इसका मतलब यह हुआ कि द्रव्य कुल मिलाकर छः प्रकार के होते हैं ?

समकित : हाँ, जाति अपेक्षा द्रव्य छह प्रकार के होते हैं लेकिन संख्या[7] अपेक्षा अनंत।

प्रवेश : भाईश्री ! द्रव्य के बारे में तो आपने विस्तार[8] से समझा दिया अब गुणों के बारे में भी विस्तार से बताईये ?

समकित : आज नहीं, आज का समय पूरा हो गया है ।

1.matter 2.ether 3.non-ether 4.space 5.time 6.count 7.detail

# 6

# सामान्य गुण

समकित : जैसा कि हमने पिछले पाठ में देखा कि अनंत गुणों का समूह द्रव्य है और द्रव्य जाति अपेक्षा छः प्रकार के होते हैं। जाति अपेक्षा भले ही द्रव्य छह प्रकार के हों और इसी कारण उनके गुणों में विविधता[1] भी हो, लेकिन हैं तो आखिर सभी द्रव्य ही, तो द्रव्य होने के नाते इनके कुछ गुणों में समानता[2] भी होती है।

प्रवेश : जैसे .......?

समकित : जैसे हममें से कोई दिगम्बर, कोई श्वेताम्बर, कोई स्थानकवासी और कोई तेरापंथी है इसी कारण से हमारे रीति-रिवाज[3], बाहरी आचरण[4] आदि में विविधता होती है लेकिन यह सब होने के बाद भी हम सब हैं तो आखिर जैन ही। अतः 24 तीर्थंकरों की मान्यता, अहिंसक जीवन-शैली[5], अध्यात्मिकता[6] आदि अनेक गुणों में हम सब में समानता पायी जाती है वरना किस आधार[7] पर हम सभी जैन कहलायेंगे ?

प्रवेश : तो वे कौन सी समानतायें हैं जो सभी द्रव्यों में पायी जाती हैं ?

समकित : छहों द्रव्यों में ऐसे अनेक गुण पाये जाते हैं जो समान[8] हैं। इन गुणों को द्रव्य के सामान्य-गुण[9] कहते हैं जो कि अनंत होते हैं।

प्रवेश : भाईश्री! इनमें से कुछ प्रमुख[10] सामान्य गुण बताईये न।

समकित : कुछ प्रमुख समान्य गुण इस प्रकार हैं :

1. अस्तित्व गुण 2. वस्तुत्व गुण 3. द्रव्यत्व गुण
4. प्रदेशत्व गुण 5. अगुरुलघुत्व गुण 6. प्रमेयत्व गुण

प्रवेश : भाईश्री ! कृपया एक-एक करके समझाईये न।

समकित : आज नहीं कल।

---

1.diversity 2.similarity 3.customs 4.practices 5.lifestyle 6.spirituality 7.basis 8.common 9.common-attributes 10.major

# 7

# अस्तित्व गुण और अकर्तावाद

समकित : परमाणु-हथियारों[1] और जानलेवा-बीमारियों[2] के इस युग[3] में हर व्यक्ति इस चिंता[4] मे निमग्न[5] है कि कहीं इस विश्व का या फिर हमारा नाश ना हो जाये, लेकिन उसकी यह चिंता व्यर्थ[6] ही है क्योंकि भगवान की वाणी के अनुसार तो ऐसा होना असंभव है क्योंकि यह विश्व अनंत द्रव्यों का समूह है और हम खुद भी एक द्रव्य हैं और द्रव्य अनंत गुणों का समूह है व हर द्रव्य में एक अस्तित्व नाम का सामान्य गुण पाया जाता है जिसका अर्थ है कि **हर द्रव्य में एक ऐसी शक्ति है कि न तो द्रव्य की उत्पत्ति[7] हो सकती है और न ही उसका नाश[8] यानि कि द्रव्य अनादि-अनंत है।**

प्रवेश : भाईश्री ! चूंकि द्रव्य अनादि-अनंत है और गुणों का समूह ही द्रव्य है, तो गुण भी अनादि अनंत होते होंगे ?

समकित : हाँ, गुणों की भी उत्पत्ति और नाश नहीं होता। वे भी अनादि-अनंत हैं।

यदि कुछ नयी उत्पन्न या पुरानी नष्ट होती है तो वह है द्रव्य के गुणों की एक समय की पर्याय ।

प्रवेश : यह तो बिल्कुल वैसा ही है जैसा हम साईंस में पढ़ते हैं- Energy can neither be created, nor be destroyed. Only it can be transformed from one form to another.

समकित : हाँ, बिल्कुल ! आज के वैज्ञानिक भी इस बात को मानते हैं जो बात हमारे वीतराग-विज्ञान की अलौकिक-प्रयोगशाला[9] के महान वैज्ञानिक अनेक तीर्थंकर भगवंत अनंतकाल से कहते आ रहे हैं। यह बात और है कि आज हमको उन रागी-द्वेषी और अल्पज्ञ[10] वैज्ञानिकों की बात का भरोसा अधिक और वीतराग-सर्वज्ञ वैज्ञानिकों की बात का भरोसा कम है।

---

1.nuclear-weapons 2.life threatening diseases 3.era 4.tension 5.brooded 6.pointless 7.pro-creation 8.destruction 9.supernatural-lab 10.sciolist

प्रवेश : भाईश्री ! यदि प्रत्येक द्रव्य में यह अस्तित्व गुण न होता तो क्या होता ?

समकित : वही होता जो किसी को मंजूर[1] नहीं होता, यानि कि विश्व का नाश।

प्रवेश : क्यों ?

समकित : क्योंकि हम पहले ही देख चुके हैं कि अनंत द्रव्यों का **समूह** ही विश्व है। यदि एक भी नया द्रव्य उत्पन्न[2] हुआ या पुराना द्रव्य नष्ट[3] हुआ तो वह अनंत द्रव्यों का **समूह** नष्ट हो जायेगा और द्रव्यों का **समूह** नष्ट होने से पूरा विश्व नष्ट हो जायेगा, लेकिन अस्तित्व गुण के कारण ऐसा होना असंभव है यानि कि विश्व का नाश कभी नहीं हो सकता।

प्रवेश : हाँ, तत्वार्थ सूत्र में भी आता है-सत् द्रव्य लक्षणम् यानि कि द्रव्य का लक्षण[4] सत् (शाश्वतता) है और चूँकि द्रव्यों का समूह ही विश्व है, इसलिये विश्व का लक्षण भी सत् (शाश्वतता) होगा।

समकित : बहुत अच्छे ! अब जबकि हर द्रव्य में अस्तित्व गुण मौजूद[5] है जिसके कारण न तो विश्व उत्पन्न ही होता है, न ही नष्ट, तो फिर विश्व को उत्पन्न और नष्ट करने वाले किसी कर्ता-हर्ता[6], सर्व-शक्तिमान[7] परमात्मा की जरुरत भी नहीं रहती।

प्रवेश : यदि हम ऐसा माने कि कोई सर्व-शक्तिमान परमात्मा विश्व का कर्ता-हर्ता है तो क्या दिक्कत[8] है ?

समकित : यदि हम ऐसा माने कि कोई सर्व शक्तिमान परमात्मा ने इस विश्व को उत्पन्न[9] किया है तो फिर यह प्रश्न खड़ा होता है कि परमात्मा को किसने उत्पन्न किया ? तो फिर एक ही उत्तर से संतोष[10] करना पड़ता है कि परमात्मा तो स्वयं-सिद्ध[11] है यानि न तो उसे किसी ने उत्पन्न किया है न ही कोई उसका नाश कर सकता है।

प्रवेश : तो...?

1.accept 2.creat 3.destroy 4.nature 5.present 6. creator-destructor
7.almighty 8.problem 9.creat 10.satisfaction 11.self-existing

समकित : तो फिर यह प्रति-प्रश्न[1] खड़ा होता है कि जब एक द्रव्य यानि कि परमात्मा स्वयं-सिद्ध हो सकता है तो सभी द्रव्य यानि कि सम्पूर्ण विश्व क्यों नहीं ?

प्रवेश : ओह ! यह तो मैंने सोचा ही नहीं था।

समकित : हाँ, इन सभी प्रश्न, प्रति-प्रश्नों को विराम[2] देने वाला यह अस्तित्व गुण हैं। जिस गुण के कारण सभी द्रव्य यानि कि सम्पूर्ण[3] विश्व स्वयं-सिद्ध है।

प्रवेश : भाईश्री ! इस विश्व का कोई कर्ता-हर्ता भले ही नहीं हो, लेकिन पालक[4] तो हो ही सकता है ?

समकित : नहीं, ऐसा भी नहीं हो सकता।

प्रवेश : क्यों ?

समकित : यह मैं तुम्हें कल बताता हूँ।

कोई कहे कि-अँगूठी तो सोनार ने बनाई है, परन्तु सोनार ने अँगूठी नहीं बनाई, अँगूठी बनाने की इच्छा सोनार ने की है। इच्छा का कर्ता सोनार है परन्तु अँगूठी का कर्ता सोनार नहीं है, सोनार तो मात्र निमित्त है, उसने अँगूठी नहीं बनाई है। अँगूठी का कर्ता सोना है, सोने में से ही अँगूठी हुई है। उसी प्रकार चैतन्य (जीव) की जो भी अवस्था होती है वह चैतन्य द्रव्य से अभिन्न होने से उसका कर्ता चैतन्य है और जड़ (अजीव) की जो भी अवस्था हो वह जड़-द्रव्य से अभिन्न होने के कारण उसका कर्ता जड़ है।

प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र है, कोई किसी का कुछ कर नहीं सकता। स्वतन्त्रता की यह बात समझने में मँहगी लगती है, परन्तु जितना काल संसार में गया उतना काल मुक्ति प्रगट करने में नहीं चाहिये, इसलिये सत्य वह सुलभ है। यदि सत्य मँहगा हो तो मुक्ति होगी किसी की ? इसलिये जिसे आत्महित करना हो उसे सत्य निकट ही है।

**-गुरुदेवश्री के वचनामृत**

1.cross-question 2.pause 3.entire 4.guardian

# ४

# वस्तुत्व गुण और वस्तु स्वातंत्र्य

समकित : पिछले पाठ में हमने देखा कि प्रत्येक द्रव्य में पाये जाने वाले अस्तित्व गुण के कारण यह विश्व स्वयं-सिद्ध है। न कोई इसको उत्पन्न कर सकता है, न ही इसका नाश। तो एक प्रश्न जो सभी के मन में खड़ा होता है वह यह है कि भले ही इस विश्व का कोई कर्ता-हर्ता न हो लेकिन कोई इस विश्व का पालक (पालने वाला) तो हो ही सकता है। वैसे तो इस प्रश्न का बड़ा साधारण सा उत्तर यह है कि जिस वस्तु को अपनी उत्पत्ति और विनाश जैसे बड़े कामों के लिये दूसरों की जरुरत नहीं उसको अपने पालन जैसे छोटे काम के लिये दूसरों की जरुरत क्यों रहेंगी ?

प्रवेश : भाईश्री ! इसको गहराई[1] में जाकर समझाईये न ?

समकित : ठीक है ! इसको गहराई से समझने के लिये हर द्रव्य में पाये जाने वाले वस्तुत्व गुण के स्वरूप को समझते हैं। वस्तुत्व गुण का अर्थ है कि **हर द्रव्य में ऐसी शक्ति पायी जाती है जिस शक्ति के कारण हर द्रव्य अपना प्रयोजन-भूत[2] काम करने में सक्षम[3] है** यानि कि किसी भी द्रव्य को अपना प्रयोजन-भूत काम (पालन) करने के लिये किसी दूसरे द्रव्य की जरुरत नहीं है।

प्रवेश : क्या इसको हम इस तरह भी कह सकते हैं कि प्रत्येक द्रव्य अपना प्रयोजनभूत काम करने में सक्षम और दूसरों का कार्य करने में असक्षम है ?

समकित : हाँ, कह सकते हैं। वैसे भी हर द्रव्य में एक ऐसी अकर्तृत्व नाम की शक्ति मौजूद भी है जिस शक्ति के कारण एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं कर सकता।

प्रवेश : यदि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कार्य नहीं कर सकता तो दूसरा भी इसका कार्य नहीं कर सकता क्योंकि सामान्य गुण तो सभी द्रव्यों में समान रूप से पाये जाते हैं ?

---

1.depth 2.intended 3.capable

समकित : हाँ, बिल्कुल और वैसे भी यदि एक द्रव्य को अपना काम कराने के लिये दूसरे द्रव्य की जरुरत पड़े तो इसका अर्थ[1] यह हुआ कि वह द्रव्य स्वयं अपना काम करने में सक्षम[2] नहीं है और जो स्वयं ही अपना काम करने में सक्षम नहीं है तो दूसरा उसका काम किस तरह कर सकेगा ?

प्रवेश : हाँ, सही है।

समकित : हाँ और यदि वह स्वयं अपना काम करने में सक्षम है तो दूसरे को उसका काम करने की जरुरत ही क्या है और यदि एक द्रव्य का काम दूसरा द्रव्य करे, तो दूसरे द्रव्य का काम तीसरे द्रव्य को और तीसरे द्रव्य का काम चौथे द्रव्य को करना पड़ जायेगा। इस तरह तो विश्व में अनंत[3] पराधीनता[4] हो जायेगी।

प्रवेश : हाँ, इससे अच्छा तो होगा कि सब अपना-अपना काम करे। इससे पराधीनता भी नहीं होगी और व्यवस्था[5] भी बनी रहेगी।

समकित : हाँ, बिल्कुल। यही बात तो वस्तुत्व गुण कह रहा है कि सभी द्रव्य अपना-अपना प्रयोजनभूत काम करने में सक्षम है, उसे दूसरे से अपना काम करवाने की जरुरत नहीं है इसी कारण विश्व में अनंत वस्तु-स्वातंत्र्य[6] और व्यवस्था कायम है।

प्रवेश : सही है। हम सभी भी तो अपने-अपने जीवन में स्वतंत्रता और व्यवस्था चाहते हैं।

समकित : हाँ, यदि हम भगवान की वाणी में आयी हुई इस स्वतंत्र वस्तु व्यवस्था को स्वीकार[7] करें तो हमारे जीवन का सारा रोना-गाना मिट जायेगा।

प्रवेश : भाईश्री ! वो कैसे ?

1.meaning 2.capable 3.infinite 4.dependency 5.proper-order 6.mutual-independence 7.accept

समकित : रोने का मतलब है इस बात के लिये दुःखी होना कि मेरा कोई कुछ नहीं करता और गाने का मतलब है इस बात का अभिमान[1] करना कि मैंने फलाने के लिये ये किया, ढिकाने के लिये ये किया, तो वस्तुत्व गुण कहता है कि जब सब द्रव्य अपना-अपना काम करने में सक्षम है, कोई दूसरे का काम कर ही नहीं सकता तो फिर रोना-गाना किस बात का ?

प्रवेश : भाईश्री ! यह तो बहुत अच्छी तरह से समझ में आ गया कि भगवान या कोई और न तो इस विश्व का कर्ता-हर्ता हो सकता है, न ही पालक। लेकिन हम फिर जिनेन्द्र भगवान को मोक्ष/ कल्याण के कर्ता और संसार-रूपी दु:ख का हर्ता क्यों बोलते हैं ?

समकित : अरे भाई ! वास्तव में तो वस्तुत्व गुण के कारण हम खुद ही अपने मोक्ष/कल्याण के कर्ता (करने वाले) और संसार रूपी दुःख के हर्ता (दूर करने वाले) हैं। भगवान हमारे मोक्ष (कार्य) के कर्ता[2] और संसार रूपी दुःख के हर्ता[3] नहीं हो सकते लेकिन भगवान की वाणी में मोक्ष के मार्ग (रास्ते) का वर्णन आया है। उस मार्ग पर चलकर हम अपना मोक्ष (कार्य) प्रगट[4] कर सकते हैं। अतः भगवान और भगवान की वाणी को हमारे मोक्ष (कार्य) में निमित्त-कारण कहा गया है इसलिये भगवान और उनकी वाणी के प्रति अपना बहुमान[5] व्यक्त[6] करने के लिये उपचार-से[7] भगवान को मोक्ष (कल्याण) का कर्ता/दाता और संसार रूपी दुःख का हर्ता कह दिया जाता है।

प्रवेश : तो क्या ऐसा कहना गलत है ?

समकित : नहीं, ऐसा कहना गलत नहीं है लेकिन ऐसा यथार्थ मानना गलत (मिथ्यात्व) है। ऐसा कहना तो भक्ति-मार्ग की एक रीति[8] है। उसकी भी अपनी एक सार्थकता[9] है लेकिन एक सीमा[10] तक।

प्रवेश : और द्रव्यत्व गुण..?

समकित : आज नहीं कल।

1.pride 2.doer 3.destructor 4.achieve 5.gratitude
6.express 7.formally 8.tradition 9.utility 10.limit

# 9

# द्रव्यत्व गुण और परुषार्थ

समकित : मनुष्य जिन चिंताओं से सबसे अधिक दुःखी रहता है वह है इष्ट (अनुकूल) का वियोग और अनिष्ट (प्रतिकूल) का संयोग। वह चाहता है कि जो चीजें उसे अनुकूल[1] लगती हैं, उनका वियोग[2] न हो और जो चीजें उसे प्रतिकूल[3] लगती हैं, उनका संयोग न हो।

प्रवेश : जैसे ?

समकित : जैसे बालों के कालेपन का वियोग न हो और सफेदी का कभी संयोग न हो।

प्रवेश : लेकिन ऐसा होना तो प्रेक्टीकली[4] असंभव है ?

समकित : हाँ और यह सैद्धांतिक-रूप से[5] भी असंभव है, क्योंकि हर द्रव्य में एक द्रव्यत्व नाम का सामान्य गुण पाया जाता है।

प्रवेश : मतलब ?

समकित : द्रव्यत्व गुण का मतलब है **हर द्रव्य में एक ऐसी शक्ति पायी जाती है जिस शक्ति के कारण द्रव्य की पर्याय[6] हर समय बदलती ही रहती है।**

प्रवेश : द्रव्य की पर्याय ? पर्याय तो द्रव्य के गुणों की बदलती है न ?

समकित : द्रव्य की पर्याय का मतलब है-द्रव्य के गुणों की पर्याय, क्योंकि हम जानते हैं कि हर द्रव्य में अनंत गुण होते हैं, जिनकी पर्याय हर समय बदलती रहती है। जैसे गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं, वैसे ही अनंत गुणों की एक समय की पर्यायों को सामूहिकरुप-से[7] द्रव्य की पर्याय कहते हैं।

प्रवेश : मतलब जिस समय द्रव्य की नयी पर्याय उत्पन्न[8] होती है, उससे अगले समय वह नष्ट[9] हो जाती है व उसी समय नयी पर्याय उत्पन्न होती है?

---

1. favored 2.seperation 3.unfavored 4.practically 5.theoretically 6.state 7.collectively 8.occur 9.destroy

समकित : हाँ, बिल्कुल! जिस तरह गुणों का समूह द्रव्य है उसी तरह एक-के-बाद-एक[1] उत्पन्न होने वाली धारावाही[2] अनंत पर्यायों का समूह गुण है।

प्रवेश : अच्छा ! यदि ऐसा है तो किस समय कौन सी पर्याय उत्पन्न होगी और कौनसी पर्याय नष्ट होगी ये कैसे तय होता है ?

समकित : इसको हम एक जाप-माला[3] के माध्यम[4] से समझते हैं।

माला में मेरू[5] के बाजू से शुरु होकर एक के बाद एक 108 मोती होते हैं। जहाँ पहला मोती खत्म होता है, वही से दूसरा मोती शुरु हो जाता है। जहाँ दूसरा मोती खत्म होता है वहाँ से तीसरा मोती शुरु हो जाता है यानि कि सभी मोती अपने-अपने निश्चित स्थान पर नियत[6] रहते हैं। न ही तो उन मोतियों को आगे-पीछे किया जा सकता है न ही कोई नया मोती माला के अंदर डाला जा सकता है और ना ही माला में से कोई मोती बाहर निकाला जा सकता है और यदि हम ऐसा करना चाहते हैं तो हमको माला तोड़नी होगी।

उसी तरह जिस समय द्रव्य की एक पर्याय नष्ट होती है उसी समय दूसरी पर्याय उत्पन्न हो जाती है। द्रव्य की अनादि से अनंत काल तक की सभी पर्यायें अपने-अपने निश्चित-समय[7] पर उत्पन्न होती हैं। न ही तो उनको आगे-पीछे किया जा सकता है, न ही किसी अनिश्चित[8] पर्याय को उत्पन्न कराया जा सकता है और न ही किसी निश्चित[9] पर्याय को उत्पन्न होने से रोका जा सकता है। यानि कि यदि हम ऐसा करना चाहते हैं तो हमें द्रव्य को नष्ट करना होगा जो कि असंभव है क्योंकि द्रव्य तो सत् यानि कि अनादि-अनंत[10] है।

प्रवेश : ओह ! अब समझा।

समकित : हाँ ! इसलिये इस चिंता मे आकुलित/दुःखी होते रहना कि बालों की कालेपन की पर्याय नष्ट न हो और सफेदी की पर्याय उत्पन्न न हो, यह मात्र समय[11] और ऊर्जा[12] की बर्बादी है।

1.serially 2.sequential 3.rosary 4.example 5.central pearl 6.fix 7.certain-time 8.un-certain 9.certain 10.eternal 11.time 12.energy

प्रवेश : हाँ, क्योंकि दोनों ही पर्याय अपने-अपने निश्चित समय पर नष्ट और उत्पन्न होती हैं। न तो कोई उन्हें आगे-पीछे कर सकता है और न ही उत्पन्न होने से रोक सकता है।

समकित : बिल्कुल ! इस बात को हम कथानुयोग के माध्यम[1] से भी समझ सकते हैं। भगवान के ज्ञान में जीवों के भूत[2] और वर्तमान[3] के साथ-साथ भविष्य[4] के निश्चित[5] भव (पर्याय) भी जानने में आ जाते हैं।

प्रवेश : हाँ, यदि द्रव्यों की पर्याय निश्चित न होती तो भगवान जीवों (द्रव्यों) के निश्चित भवों (पर्यायों) को जैसे हैं वैसा कैसे जान पाते ?

समकित : हाँ, बिल्कुल !

प्रवेश : भाईश्री ! यह बात कथानुयोग आदि के माध्यम से समझ में तो आ जाती है, लेकिन यदि ऐसा है तो फिर मोक्ष का पुरुषार्थ[6] करने की भी क्या जरुरत है क्योंकि मोक्ष की पर्याय भी अपने निश्चित समय पर हो ही जायेगी। उसे भी तो हम आगे-पीछे नहीं कर सकते ?

समकित : अरे भाई ! यह बात तो भगवान की वाणी में आयी है और भगवान तो स्वयं ही प्रचंड (तीव्र[7]) पुरुषार्थी थे तो उन भगवान की वाणी में पुरुषार्थ का लोप[8] कैसे होगा ?

प्रवेश : फिर ?

समकित : भाई ! इस बात को स्वीकार करना ही अपने-आप में महान पुरुषार्थ[9] है और फिर पुरुषार्थ के बिना तो कोई भी पर्याय (काम) उत्पन्न होती ही नहीं क्योंकि हर पर्याय की उत्पति में निश्चित[10] पाँच समूवाय-कारण[11] लागू[12] होते हैं जो कि निम्न हैं:

1. स्वभाव (nature)

2. होनहार (destiny)

3. काललब्धि (time-quotient/ripeness)

1.medium 2.past 3.present 4.future 5.certain 6.efforts 7.intense 8.omission 9.effort 10.Certain 11.multitude-causes 12.apply

4. निमित्त (medium)

5. पुरुषार्थ (efforts)

1. **स्वभाव** बताता है कि किस द्रव्य में यह पर्याय (कार्य) होगी।

2. **होनहार** बाताती है कि क्या पर्याय (कार्य) होगी।

3. **काललब्धि** बताती है कि किस समय पर्याय (कार्य) होगी।

4. **निमित्त** बाताता है कि जब भी कार्य होगा तब किस पदार्थ[1] पर कार्य में अनुकूल[2] होने का आरोप आयेगा।

5. **पुरुषार्थ** बताता है कि जब कार्य होगा तब वीर्यगुण की पर्याय यानि पुरुषार्थ[3] क्या होगा।

इसका मतलब यह हुआ कि हर द्रव्य की हर निश्चित पर्याय पुरुषार्थ पूर्वक ही होती है तो फिर यह सिद्धांत[4] पुरुषार्थ का लोप करने वाला नहीं बल्कि पुरुषार्थ की पुष्टि[5] करने वाला ही हुआ।

प्रवेश : लेकिन भाईश्री आपने बताया पुरुषार्थ भी आत्मा के वीर्य गुण की पर्याय है तो वह भी तो अपने निश्चित समय पर ही होगी, उसको भी करने की क्या आवश्यकता[6] है ?

समकित : अरे भाई ! यदि ऐसा हो तो भगवान की वाणी में आये हुए सिद्धांतो[7] के जानकर मोक्षार्थी सम्यकदृष्टि ज्ञानी जीव भी पुरुषार्थहीन[8] सिद्ध[9] हो जायेंगे जबकि वे तो प्रचंड (तीव्र[10]) पुरुषार्थी होते हैं।

प्रवेश : कैसे ?

समकित : जिसप्रकार सम्यकदृष्टि ज्ञानी जीव यह जानते और मानते हुए कि हर पर्याय अपने निश्चित समय पर ही होती है और उस समय उसका पुरुषार्थ (वीर्य गुण की पर्याय) आदि पाँच समवाय कारण भी सहज उपस्थित[11] रहते हैं। फिर भी अभी पूर्ण वीतरागी न होने के कारण

1.substance 2.favored 3.effort 4.principle 5.confirmation 6.requirement 7.principles 8.efforts-inferior 9.prove 10.intense 11.available

जिस तरह उनको धन्धे-व्यापार के पुरुषार्थ का अशुभ राग आये बिना नहीं रहता उसी तरह मोक्ष के पुरुषार्थ का शुभ राग भी आये बिना नहीं रहता, बल्कि बढ़-चढ़ कर आता है।

प्रवेश : मतलब मोक्षार्थी जीव कभी भी पुरुषार्थ का लोप नहीं करते ?

समकित : हाँ, वे ऐसा नहीं करते। ऐसा करने वाले हमेशा भ्रष्ट[1] और स्वच्छंदी[2] जीव ही होते हैं क्योंकि भ्रष्ट और स्वच्छंदी जीव भगवान की वाणी को शास्त्र नहीं शस्त्र[3] की तरह प्रयोग करते हैं।

प्रवेश : और मोक्षार्थी जीव ?

समकित : मोक्षार्थी जीव तो शास्त्र में जहाँ जिस अपेक्षा[4] से जो बात कही गयी हो उस बात को वहाँ उस अपेक्षा से ही समझते हैं। छल[5] ग्रहण नहीं करते। इसी को जैन दर्शन का अनेकांतवाद व स्याद्वाद का सिद्धांत कहते हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! अगुरुलघुत्व आदि सामान्य गुण ?

समकित : आज नहीं, आज काफी देर हो चुकी है।

भगवान की आज्ञा से बाहर पाँव रखेगा तो डूब जायेगा। अनेकान्त का ज्ञान कर तो तेरी साधना यथार्थ होगी।

स्याद्वाद तो सनातन जैनदर्शन है उसे जैसा है वैसा समझना चाहिये। वस्तु त्रैकालिक ध्रुव है उसकी अपेक्षा से एक समय की शुद्ध पर्याय को भी भले ही हेय कहते हैं परन्तु दूसरी ओर, शुभराग आता है-होता है उसके निमित्त देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा का शुभ राग होता है। भगवान की प्रतिमा होती है उसे जो न माने वह भी मिथ्यादृष्टि है। भले ही उससे धर्म नहीं होता, परन्तु उसका उत्थापन करे तो मिथ्यादृष्टि है। शुभ राग हेय है, दुःखरूप है, परन्तु वह भाव होता है उसके निमित्त भगवान की प्रतिमा आदि होते हैं उनका निषेध करे तो वह जैन दर्शन को नहीं समझा है, इसलिये वह मिथ्यादृष्टि है।

**-गुरुदेवश्री के वचनामृत**

1.corrupt 2.self-willed 3.weapon 4.intention 5.excuse

10

# अगुरुलघुत्व गुण और परस्परोपग्रहो जीवानाम्

समकित : हम सभी तत्वार्थ सूत्र के सूत्र **परस्परोपग्रहो जीवानाम्** से अच्छी तरह से परिचित[1] हैं। जिसका मतलब होता है सभी जीव एक दूसरे पर परस्पर-उपकार[2] करने वाले हैं। वास्तव में यह व्यवस्था[3] मात्र जीव द्रव्य पर लागू[4] न होकर सभी द्रव्यों पर लागू होती है।

प्रवेश : कैसे ?

समकित : सभी द्रव्यों में पाये जाने वाले अगुरुलघुत्व गुण के कारण।

प्रवेश : अगुरुलघुत्व का क्या अर्थ है ?

समकित : अगुरुलघुत्व शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है अगुरु और अलघु यानि कि न तो द्रव्य में कुछ बढ़ता है और न ही द्रव्य में कुछ कम होता है। द्रव्य हमेशा जैसा है वैसे का वैसा ही रहता है।

प्रवेश : वैसे का वैसा रहता है, मतलब ?

समकित : मतलब हर द्रव्य में पाये जाने वाली अगुरुलघुत्व शक्ति के कारण **एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप नहीं होता। एक द्रव्य के गुण-पर्याय दूसरे द्रव्य के गुण-पर्याय रूप नहीं होते। दो द्रव्य मिलकर एक नहीं होते यानि कि जैसे हैं वैसे ही रहते हैं।**

प्रवेश : लेकिन इस बात का परस्परोपग्रहो जीवानाम् से क्या संबंध है ?

समकित : बहुत गहरा संबंध है। सोचो यदि अगुरुलघुत्व गुण न होता तो दो द्रव्य मिलकर एक हो जाते या एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप हो जाता। दोनों ही परिस्थितियों[5] में एक द्रव्य कम हो जाता और अनंत द्रव्यों का **समूह**[6] टूट जाता और द्रव्यों का **समूह** टूटने से विश्व का नाश हो जाता क्योंकि अनंत द्रव्यों का **समूह** ही तो विश्व है और यह विश्व नष्ट हो ऐसा हम कभी भी नहीं चाहेंगे और हम चाहें या न चाहें ऐसा होना

---

1. familiar 2.mutual-compassion 3.concept 4.apply 5.situations 6.group

नामुमकिन[1] है क्योंकि हम पहले ही देख चुके हैं कि द्रव्य का लक्षण[2] सत् होने से विश्व का लक्षण भी सत् यानि कि अनादि-अनंत है।

प्रवेश : भाईश्री ! लेकिन अभी भी यह समझ में नहीं आया कि इस बात का परस्परोपग्रहो जीवानाम् से क्या संबंध हैं ?

समकित : अरे भाई ! अगुरुलघुत्व गुण के ही कारण एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं होता, दो द्रव्य मिलकर एक नहीं होते और एक द्रव्य के गुण-पर्याय दूसरे द्रव्य के गुण-पर्याय रूप नहीं होते। इसी कारण एक के बाद एक होने वाली अनंत पर्यायों का समूह गुण, अनंत गुणों का समूह द्रव्य और अनंत द्रव्यों का समूह विश्व नष्ट होने से बच जाता है या कहो सभी द्रव्य नष्ट होने से बच जाते हैं। यही सभी द्रव्यों का एक दूसरे पर परस्पर-उपकार[3] है।

प्रवेश : अच्छा ! अब समझ में आया कि अगुरुलघुत्व गुण के कारण एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की सीमा[4] (द्रव्य, गुण, पर्याय, प्रदेश) में प्रवेश[5] नहीं करता और इस प्रकार एक दूसरे को नष्ट होने से बचाकर एक दूसरे पर अनंत उपकार करता है।

समकित : हाँ, बिल्कुल सही समझे।

प्रवेश : लेकिन हमने तो सुना था कि एक जीव (द्रव्य) द्वारा दूसरे जीव (द्रव्य) की भलाई[6] करना परस्परोपग्रहो जीवानाम् है ?

समकित : हाँ भाई ! लौकिक-दृष्टि[7] से यह बात भी सही है। उसका भी अपना एक महत्व[8] है लेकिन यहाँ तो पारमार्थिक-दृष्टि[9] से बात की जा रही है। समझदार को तो अनेकांतवाद और स्याद्वाद की ही शरण है। वह तो हर बात को अपेक्षा[10] सहित ही ग्रहण[11] करता है।

प्रवेश : भाईश्री ! प्रदेशत्व और प्रमेयत्व सामान्य गुण ?

समकित : प्रदेशत्व गुण का मतलब है कि **हर द्रव्य में एक ऐसी शक्ति पायी जाती है जिस शक्ति के कारण द्रव्य का कुछ न कुछ आकार[12] जरुर रहता है।**

1.impossible 2.nature 3.mutual-compassion 4.boundary 5.entry 6.welfare 7.worldly-perspective 8.significance 9.spiritual-perspective 10.perspective 11.accept 12.shape

प्रवेश : जैसे ?

समकित : जैसे कभी जीव का आकार हाथी के शरीर जैसा हो जाता है तो कभी चींटी के शरीर जैसा। यानि कि जिस गति में जीव जाता हैं उस गति के शरीर जैसा जीव (आत्मा) का भी आकार हो जाता है। ठीक वैसे ही जैसे गिलास में रखे हुये पानी का आकार गिलास के आकार जैसा हो जाता है और वही पानी जब कटोरे में रखा जाता है तो उसका आकार कटोरे जैसा हो जाता है।

प्रवेश : ओह ! और प्रमेयत्व गुण ?

समकित : प्रमेयत्व गुण का मतलब है कि **हर द्रव्य में एक ऐसी शक्ति पायी जाती है जिस शक्ति के कारण द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान का विषय जरूर बनता है** यानि कि किसी न किसी के जानने में जरूर आता है।

प्रवेश : लेकिन बहुत सी सूक्ष्म[1] चीजें तो ऐसी भी हैं जो किसी के भी जानने में नहीं आती ?

समकित : नहीं, वे चीजें भी किसी के जानने में आये या न आये लेकिन अनंत सिद्धों और अरिहंतों (केवलियों) के जानने में तो आती ही हैं।

प्रवेश : अरे वाह ! यह तो सोचा ही नहीं था।

समकित : हाँ ! कितने ही लोग इस बात के लिये रोते रहते हैं कि हमे कोई नहीं जानता लेकिन प्रमेयत्व गुण कहता है कि अनंत सिद्ध उनको जानते हैं।

प्रवेश : कई लोग तो दान आदि भी सिर्फ इसीलिये करते हैं कि सभी लोग उनको जाने ।

समकित : हाँ, सही कहा। लेकिन प्रमेयत्व गुण उनको कहता है कि भाई कई नहीं, अनंत लोग (सिद्ध भगवान) तुमको आज से नहीं अनादि से जान रहे हैं लेकिन इससे तुम्हारा क्या फायदा हुआ और होने वाला है ? परमात्मा तो कहते हैं कि तुम्हारा फायदा तो इसमें है कि तुम खुद

1.minute

अपने को जानो और अपनी इस दुर्लभ[1] मनुष्य पर्याय को सार्थक[2] करो।

प्रवेश : भाईश्री ! सामान्य गुण तो हो गये। अब विशेष गुणों के बारे में और बता दीजिये।

समकित : हमारा अगला विषय यही है।

द्रव्य उसे कहते हैं जिसके कार्य के लिये दूसरे साधनों की राह न देखना पड़े।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

प्रत्येक द्रव्य अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से है। जीव, जीव के द्रव्य-गुण पर्याय से है और अजीव अजीव के द्रव्य-गुण-पर्याय से है। इस प्रकार सभी द्रव्य परस्पर असहाय हैं प्रत्येक द्रव्य स्वसहायी है तथा पर से असहायी है। प्रत्येक द्रव्य किसी भी पर द्रव्य की सहायता लेता भी नहीं है और कोई भी पर द्रव्य को सहायता देता भी नहीं है। शास्त्र में 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' कथन आता है, परन्तु वह कथन उपचार से है। वह तो उस-उस प्रकार के निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का ज्ञान कराने के लिये है। उस उपचार का सच्चा ज्ञान वस्तुस्वरूप की मर्यादा समझ में आये तभी होता है, अन्यथा नहीं होता।

**-गुरुदेवश्री के वचनामृत**

तू सत्‌की गहरी जिज्ञासा कर जिससे तेरा प्रयत्न बराबर चलेगा, तेरी मति सरल एवं सुलटी होकर आत्मा में परिणमित हो जायगी। सत्‌के संस्कार गहरे डाले होंगे तो अन्त में अन्य गति में भी सत् प्रगट होगा। इसलिये सत्‌के गहरे संस्कार डाल।

सारे दिन में आत्मार्थको पोषण मिले ऐसे परिणाम कितने हैं और अन्य परिणाम कितने हैं वह जाँचकर पुरूषार्थ की ओर झुकना। चिंतवन मुख्यरूप से करना चाहिये। कषाय के वेग में बहने से अटकना, गुणग्राही बनना।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1.rare 2.utilize

# 1
# विशेष गुण

पिछले पाठों में हमने देखा कि किस प्रकार सभी द्रव्यों में समान रूप से पाये जाने वाले सामान्य गुणों के द्वारा जैन दर्शन के मूल-सिद्धान्तों[1] की सिद्धि[2] होती है और इनके स्वरूप के निर्णय[3] से हम किस प्रकार अपनी चिन्ता[4] और आकुलताओं[5] से मुक्त[6] हो सकते हैं।

अब हम द्रव्य के उन विशेष-गुणों[7] की चर्चा करेंगे जो सभी द्रव्यों में न पाये जाकर अपने-अपने द्रव्यों में पाये जाते हैं यानि कि जो सभी द्रव्यों को एक-दूसरे से जुदा[8] कर उनको छह जातियों[9] (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल) में बाँट देते हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! छहों द्रव्यों के विशेष गुणों के बारे में बताईये न।

समकित : अभी तो हम छह द्रव्यों में से मात्र जीव और पुद्गल के ही विशेष गुणों की चर्चा करेंगे क्योंकि जीव द्रव्य तो हम स्वयं[10] ही है व उसी का असली परिचय[11] हमको करना है और पुद्गल द्रव्य से तो हम काफी कुछ परिचित[12] हैं ही।

इसलिए हम सबसे पहले पुद्गल के विशेष गुणों की चर्चा करेंगे।

यह पुस्तक, टेबल, चेयर व हमारा शरीर सब अनंत पुद्गल परमाणुओं[13] का समूह है। वास्तव-में[14] तो एक अविभागी-पुद्गल-परमाणु[15] ही पुद्गल द्रव्य है। शरीर आदि पुद्गल परमाणुओं (द्रव्यों) का समूह होने से ही पुद्गल कहलाते हैं।

प्रवेश : जैसा कि आपने बताया कि गुणों का समूह ही द्रव्य है, तो पुद्गल द्रव्य किन-किन गुणों का समूह है यानि कि पुद्गल द्रव्य में कौन-कौन से गुण पाये जाते हैं ?

---

1.basic-principles 2.confirmation 3.understanding 4.worries 5.uneasiness 6.free 7.special-attributes 8.differenciate 9.races 10.self 11.awareness 12.aware 13.molecules 14.actually 15.undivisible-molecules

समकित : सभी द्रव्यों की तरह पुद्गल द्रव्य भी अनंत सामान्य और विशेष गुणों का समूह है। अस्तित्व आदि सामान्य गुण जो सभी द्रव्यों में समानरूप-से[1] पाये जाते हैं, उनकी चर्चा तो हम पिछले पाठों में कर चुके है। अब हम पुद्गल द्रव्य के विशेष गुणों की चर्चा करेंगे जो केवल पुद्गल द्रव्य में ही पाये जाते हैं जीव आदि अन्य द्रव्यों में नहीं। इस प्रकार पुद्गल द्रव्य के यह विशेष गुण, पुद्गल द्रव्य को जीवादि अन्य द्रव्यों से अलग पहिचान[2] दिलाते हैं।

अन्य द्रव्यों की तरह ही पुद्गल द्रव्य के विशेष गुण तो अनंत हैं लेकिन यहाँ हम उनमें से चार मुख्य गुणों की चर्चा करेंगे जो कि निम्न हैं:

1. स्पर्श touch
2. रस taste
3. गंध smell
4. वर्ण colour

इन गुणों का क्रमशः[3] अर्थ है कि हर पुद्गल द्रव्य में ऐसी शक्तियाँ मौजूद[4] हैं कि हर अवस्था में उसका कुछ न कुछ स्पर्श, रस, गंध, रंग (वर्ण) जरूर हो सके।

प्रवेश : गुण तो ठीक लेकिन इनकी पर्यायें ?

समकित : हाँ, गुण हैं तो पर्याय भी होंगी ही, क्योंकि गुणों की एक समय की अवस्था (कार्य[5]) को ही तो पर्याय कहते हैं। जिसे हम निम्न चार्ट के द्वारा समझ सकते हैं:

| द्रव्य | गुण | पर्याय |
|---|---|---|
| पुद्गल | स्पर्श | हल्का-भारी, रूखा-चिकना, कठोर-नरम, ठण्डा-गरम |
| | रस | खट्टा, मीठा, कड़वा, कषायला, चरपरा |
| | गंध | सुगंध-दुर्गंध |
| | वर्ण | लाल, पीला, नीला, काला, सफेद |

इस चार्ट में हमने देखा कि चिकना-खुरदुरा[6] आदि स्पर्श गुण की, मीठा-खट्टा आदि रस गुण की, सुगंध-दुर्गंध गंध गुण की व लाल-पीली आदि वर्ण गुण की पर्यायें हैं जो हर समय बदलती रहती हैं।

1.equally 2.identity 3.respectively 4.present 5.state 6.smooth-rough

प्रवेश : यदि हर गुण की पर्याय हर समय बदलती रहती है, तो फिर तो पुस्तक के इस पेज का रंग (वर्ण-गुण की पर्याय) हर समय बदलना चाहिये। लेकिन ऐसा तो नहीं दिखायी देता, यह तो हर समय सफेद ही दिखायी दे रहा है।

समकित : पहली बात तो यह है कि जो हमारे जानने में नहीं आता वह हो ही न ऐसा कोई नियम तो है नहीं। दूसरी बात यह कि हमारा अल्प-ज्ञान[1] समय-समय के सूक्ष्म-परिवर्तनों[2] को पकड़ने में असमर्थ[3] होता है, लेकिन स्थूल-परिवर्तन[4] को पकड़ने में तो हमारा अल्प-ज्ञान भी समर्थ[5] है।

प्रवेश : कैसे ?

समकित : जरा सोचो जब इस पुस्तक को पूरा पढ़कर तुम अलमारी[6] में रख दोगे और जब कुछ सालों बाद वापिस निकालोगे तब भी क्या इसके पेज इसी तरह सफेद रहेंगे ?

प्रवेश : नहीं, वे कुछ पीले से हो जायेंगे।

समकित : अब एक बात बताओ जिस समय तुम वह पुस्तक निकालोगे, क्या वे पेज उसी समय पीले हो जायेंगे ?

प्रवेश : नहीं।

समकित : वह तो धीरे-धीरे पीले होते हैं लेकिन सूक्ष्म परिवर्तन को पकड़ने में हम अल्पज्ञ जीव असमर्थ हैं। सर्वज्ञ भगवान उस सूक्ष्म परिवर्तन को भी जान लेते हैं तभी तो उनकी वाणी में इतने सूक्ष्म-तत्व[7] निकलकर आते हैं और भगवान की वाणी में आये हुये इन सूक्ष्म तत्वों की सच्ची जानकारी[8] के बिना हम उन जैसे नहीं बन सकते।

प्रवेश : और जीव द्रव्य के विशेष गुण ?

समकित : आज नहीं कल।

1.little-knowledge 2.minute-changes 3.incapable 4.broad-changes 5.capable 6.almirah 7.minute-elements 8.knowledge

# 2

# जीव द्रव्य

समकित : पिछले पाठ में हमने पुद्गल द्रव्य के गुण-पर्यायों को शब्दों से समझा। शब्दों से समझा इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि भाव-रूपसे[1] तो हम इनसे पहले से ही परिचित[2] हैं भले ही यह शब्द हमने पहली बार सुने हों क्योंकि रुपया-पैसा, मकान-दुकान, सोना-चाँदी यहाँ तक कि हमारा शरीर पुद्गल द्रव्य की ही तो पर्याय है।

बस यदि हम किसी चीज से अनादि काल से अपरिचित[3] हैं- **वह है हम स्वयं[4] यानि की जीव**[5]। बस अब हमारी चर्चा का विषय भी यही है। कहने का मतलब यह है कि अब जो चर्चा शुरु होने जा रही है वह हमारी अपनी है, हम सबकी है।

हम यानि कि जीव भी अन्य द्रव्यों की तरह अनंत सामान्य और विशेष गुणों का समूह है। जिस तरह पुद्गल द्रव्य के चार मुख्य विशेष-गुण स्पर्श, रस, गंध वर्ण हैं उसी तरह जीव द्रव्य के अनंत विशेष-गुणों में से चार मुख्य विशेष गुण निम्न हैं:

1. ज्ञान ability to know
2. श्रद्धा ability to believe
3. चारित्र ability to conduct/to be immersed
4. सुख ability to experience bliss

प्रवेश : इन गुणों के बारे में विस्तार से बताईये न।

समकित : पदार्थों (चीजों) को जान सकने की शक्ति का नाम है ज्ञान गुण, उनमें अपनापन कर सकने की शक्ति का नाम है श्रद्धा गुण, उनमें लीन हो सकने की शक्ति का नाम है चारित्र गुण और सुखी हो सकने की शक्ति का नाम है सुख गुण है।

प्रवेश : ऐसी शक्तियाँ/गुण द्रव्य में कहाँ पाये जाते हैं ?

---

1.abstractively 2.aware 3.unaware 4.self 5.soul

समकित : गुण, द्रव्य के सभी भागों (प्रदेशों) व सभी अवस्थाओं (पर्यायों) में पाये जाते हैं।

प्रवेश : सभी अवस्थाएं (पर्यायें) तो समझा, लेकिन सभी भागों (प्रदेशों) का क्या मतलब है ?

समकित : इसका मतलब है कि ज्ञान आदि अनंत गुण जीव द्रव्य के किसी निश्चित[1] स्थान में नहीं बल्कि पूरे जीव द्रव्य में पाये जाते हैं । इन गुणों की अवस्था ही पर्याय है, जो निरन्तर[2] बदलती रहती है ।

प्रवेश : कैसे ?

समकित : हम जीव द्रव्य के गुण-पर्याय के बारे में निम्न चार्ट के द्वारा समझेंगेः

| द्रव्य | गुण | पर्याय | |
|---|---|---|---|
| | | अशुद्ध | शुद्ध |
| जीव | ज्ञान | मिथ्या-ज्ञान | सम्यक-ज्ञान |
| | श्रद्धा | मिथ्या-श्रद्धा | सम्यक-श्रद्धा |
| | चारित्र | मिथ्या-चारित्र | सम्यक-चारित्र |
| | सुख | दुःख | सुख |

इस चार्ट में हमने देखा किः

1. जीव में, पदार्थों को जान सके ऐसा एक ज्ञान नाम का गुण है लेकिन वर्तमान-में[3] उसकी पर्याय स्वंय[4] को न जानकर सिर्फ दूसरों (पर) को जानने रूप हो रही है। यह ज्ञान गुण की अशुद्ध-पर्याय[5] है। ज्ञान गुण की इस अशुद्ध-पर्याय का नाम ही अगृहीत-मिथ्याज्ञान[6] है।

2. जीव में, पदार्थों में अपनापन कर सके ऐसा एक श्रद्धा नाम का गुण है जिसकी पर्याय स्वंय में अपनापन न करके दूसरों में अपनापन करने रूप हो रही है। श्रद्धा गुण की इस अशुद्ध पर्याय का नाम अगृहीत-मिथ्याश्रद्धा (मिथ्यादर्शन)[7] है।

3. जीव में, पदार्थों में लीन हो सके ऐसा एक चारित्र नाम का गुण है जिसकी पर्याय स्वंय में लीन न होकर दूसरों में लीन होने रूप हो रही है। चारित्र गुण की इस अशुद्ध पर्याय का नाम अगृहीत-मिथ्याचारित्र[8] है।

1.specific 2.continuously 3.at-present 4.self 5.impure-state
6.inborn-false knowledge 7.inborn-false belief 8.inborn-false immersedness

4. इन्हीं तीन कारणों से, जीव में सुखी (निराकुल) हो सके ऐसा सुख नाम का गुण होने के बावजूद भी इस गुण की अशुद्ध-पर्याय[1] प्रगट हो रही है और इस गुण की अशुद्ध पर्याय का नाम है-दुःख (आकुलता) और **दुःख का ही दूसरा नाम है- संसार।**

प्रवेश : भाईश्री ! इसका निष्कर्ष[2] बताईये न।

समकित : इस चर्चा से हम निम्न निष्कर्ष पर पहुँचते हैंः

1. जब तक जीव के ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र इन तीन गुणों की अशुद्ध पर्याय प्रगट होती रहेंगी तब तक चौथे सुख गुण की भी अशुद्ध पर्याय अर्थात दुःख ही प्रगट होगा।

2. दुःख का कारण कोई और नहीं, हमारे ही मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और मिथ्याचारित्र अर्थात हमारा ही मिथ्या-पुरुषार्थ[3] है।

3. जब दुःख का कारण कोई और नहीं तो दूसरों को दोष देना व्यर्थ[4] है।

4. यदि दुःख का कारण हमारे अंदर ही है यानि कि हमारा ही मिथ्या-पुरुषार्थ है तो सुख का कारण भी हमारे अंदर ही होगा यानि कि हमारा ही सम्यक-पुरुषार्थ[5] होगा।

5. यदि सुख का कारण हमारे अंदर ही है, तो फिर दूसरों की कृपा[6] से हम सुखी हो जायेंगे इस प्रकार दूसरों के भरोसे रहना ठीक नहीं है।

5. छह द्रव्यों के समूह का नाम विश्व/लोक है। जीव की दुःख रूप अशुद्ध-पर्यायों का नाम संसार[7] है।

6. दुःख का मूल कारण हैं- मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र। इसलिये यह तीन मिलकर संसार का मार्ग[8] है।

प्रवेश : तो क्या कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरु का सेवन आदि मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र नहीं है ?

1.impure states 2.conclusion 3.false-efforts 4.meaningless
5.true-efforts 6.compassion 7.birth-cycle 8.path

समकित : वह गृहीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र है।

प्रवेश : गृहीत मतलब ?

समकित : मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र दो प्रकार के होते हैं:

1. अगृहीत[1] मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र
2. गृहीत[2] मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र

**अगृहीत** का अर्थ है जिसे नया-ग्रहण[3] न किया गया हो यानि कि जो अनादि-का[4] हो और **गृहीत** का अर्थ होता है कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरू आदि के निमित्त से जो नया ग्रहण किया गया हो। अगृहीत मिथ्यादर्शन- ज्ञान-चारित्र को निश्चय[5] मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र और गृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र को व्यवहार[6] मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र भी कहते हैं।

प्रवेश : अगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र तो दुःख/संसार का मूल-कारण[7] है अर्थात जीव का बुरा करने वाले हैं लेकिन क्या गृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चरित्र से भी जीव का कुछ बुरा होता है ?

समकित : गृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र, अगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र को पुष्ट[8] करने वाले हैं, उसे सुरक्षा-कवच[9] प्रदान करने वाले हैं।

गृहीत मिथ्यादर्शन यानि कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु आदि का सेवन[10], गृहीत मिथ्याज्ञान यानि असत् शास्त्रों का स्वाध्याय[11] व गृहीत मिथ्याचारित्र यानि कि कुलिंग आदि असत् आचरण[12] के निमित्त से जीव स्वयं को न जानकर मात्र दूसरो को जानने, स्वंय में अपनापन न कर दूसरो में अपनापन करने व स्वयं में लीन न होकर दूसरो में लीन-तल्लीन-तन्मय होने के मार्ग पर ही आगे बढ़ता जाता है और उसका दुःख/ संसार बढ़ता जाता है।

अतः अगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र जो दुःख/संसार का मूल कारण है उससे छूटने के लिये पहले गृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र से छूटना चाहिये जिसकी चर्चा हम विस्तार से आगे के पाठों में करेंगे।

1.inborn 2.newly-adopted 3.newly-adopt 4.inborn 5.actual 6.formal 7.root-cause 8.strong 9.safe-guard 10.association 11.study 12.wrong-practices

# 3

# अगृहीत (निश्चय) मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र

जैसा कि हमने पिछले पाठ में देखा था कि स्वयं को न जानना वह अगृहीत मिथ्याज्ञान है। स्वयं में अपनापन न करना वह अगृहीत मिथ्यादर्शन है व स्वयं में लीन न होना वह अगृहीत मिथ्याचारित्र है, जो तीनों मिलकर दुःख/संसार का मूल कारण हैं।

जैन शास्त्रों में दुःख/संसार के कारणों को गिनाते हुये इन तीनों की ही चर्चा अलग-अलग पर्यायवाची-शब्दों[1] से की जाती है।

इन तीनों के पर्यायवाची शब्द और उनके भावार्थ[2] से अनजान होने के कारण यह आसान सी चर्चा भी लोगों को कठिन लगने लगती है एवं वे स्वाध्याय से दूर भागने लगते हैं। स्वाध्याय के बिना सम्यकज्ञान की प्राप्ति और सम्यकज्ञान के बिना सम्यकचारित्र की प्राप्ति और सम्यकचारित्र के बिना मोक्ष की प्राप्ति व मोक्ष के बना सच्चे सुख की प्राप्ति असम्भव[3] है। कहा भी है-

**जो बिन ज्ञान क्रिया अवगाहे,**

**जो बिन क्रिया मोक्ष सुख चाहे।**

**जो बिन मोक्ष कहे मैं सुखिया,**

**सो अजान मूढ़न को मुखिया।।**

कहने का मतलब यह है कि यदि सच्चे सुख को प्राप्त करना है तो स्वाध्याय करना ही होगा और इन मूल-शब्दों[4] के पर्यायवाची-शब्दों[5] की जानकारी न होने के कारण, हमको स्वाध्याय अरुचिकर[6] न लगे, इसलिये हम इन शब्दों के पर्यायवाची निम्न चार्ट के माध्यम से समझेंगे:

---

1.synonyms 2.abstract 3.impossible
4.basic-terms 5.synonyms 6.unpleasant

| द्रव्य | गुण | अशुद्ध पर्याय | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| जीव | ज्ञान | मिथ्याज्ञान | अनात्मज्ञान | अज्ञान | कुज्ञान |
| | श्रद्धा | मिथ्याश्रद्धा/ मिथ्यादर्शन | मोह | मिथ्यात्व | उल्टी मान्यता |
| | चारित्र | मिथ्याचारित्र | राग-द्वेष | कषाय | अशुद्ध भाव |
| | | | | क्रोध | अनंतानुबंधी |
| | | | | मान | अप्रत्याख्यान. |
| | | | | माया | प्रत्याख्यान. |
| | | | | लोभ | संज्वलन. |
| | सुख | दुःख | | | |

विशेष-यह चार्ट प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर बनाया गया है अतः कुछ बातें गौण की गयी हैं।

1. **अगृहीत मिथ्याज्ञान** को अनात्मज्ञान, अज्ञान, कुज्ञान भी कहा जाता है।

2. **अगृहीत मिथ्यादर्शन** (मिथ्याश्रद्धा) को मोह, मिथ्यात्व, उल्टी-मान्यता भी कहा जाता है।

3. **अगृहीत मिथ्याचारित्र** को राग-द्वेष, कषाय, अशुद्ध-भाव भी कहा जाता है।

ध्यान रहे यहाँ मिथ्यादृष्टि के राग-द्वेष, कषाय, और अशुद्ध भावों की चर्चा चल रही है, सम्यकदृष्टि के राग-द्वेष/कषाय/अशुद्ध भाव मिथ्याचारित्र नहीं अचारित्र कहलाते हैं।

प्रवेश : अगृहीत मिथ्याज्ञान व मिथ्यादर्शन के पर्यायवाची तो समझ में आ गये लेकिन राग-द्वेष, कषाय आदि अगृहीत मिथ्याचारित्र के पर्यायवाची किस प्रकार हैं ?

समकित : जैसा कि हमने देखा अगृहीत मिथ्याचारित्र का अर्थ होता है स्वयं में लीन नहीं होना। स्वयं में लीन नहीं होना यानि दूसरों में लीन होना। दूसरों में लीन होना यानि दूसरों को अपने अनुसार चलाने (परिणमाने) का भाव।

संयोगवश[1] यदि वह हमारे अनुसार चले तो हमें उनसे राग[2] होता है और न चले तो द्वेष[3]। **इसप्रकार स्वयं में लीन न हो कर दूसरों में लीन होना ही राग-द्वेष है।**

उसी प्रकार यदि वह हमारे अनुसार चले तो हमें मान[4] होता है कि देखो सब कुछ मेरे हिसाब से ही चलता है और लोभ[5] होता है कि आगे भी सब कुछ मेरे हिसाब से ही चलता रहे।

यदि वे हमारे अनुसार नहीं चलते तो क्रोध होता है या फिर किसी भी तरह से छल-कपट करके उनको अपने अनुसार चलाने की माया (मायाचारी[6]) होती है। यह क्रोध, मान, माया व लोभ ही तो कषाय हैं। **इसतरह स्वयं में लीन न होकर दूसरों में लीन होना ही कषाय है।**

प्रवेश : और यह अशुद्ध-भाव क्या है ?

समकित : स्वयं में लीन न हो कर, दूसरों में लीन होकर दूसरों का कुछ करने का भाव यानि कि दूसरों का अच्छा करने का भाव (शुभ-भाव) या फिर दूसरों का बुरा करने का भाव (अशुभ-भाव) दोनों ही **अशुद्ध भाव** हैं।

प्रवेश : आपने तो शुभ और अशुभ भाव, दोनों को एक ही श्रेणी (अशुद्ध भाव) में रख दिया ?

समकित : मैंने नहीं स्वयं भगवान ने रखा है और क्यों न रखें ? परमार्थ-से[7] दोनों भाव एक ही श्रेणी[8] के तो हैं।

प्रवेश : परमार्थ मतलब ?

समकित : परमार्थ यानि परम्-अर्थ यानि कि मूल-प्रयोजन[8]। मोक्षार्थी का मूल-प्रयोजन[9] तो स्वयं में पूर्ण[10] लीन होना ही है और वही पूर्ण शुद्ध-भाव है। जबकि शुभ-अशुभ भाव के समय जीव स्वयं में लीन न होकर दूसरों में लीन रहता है इसलिए वह अशुद्ध-भाव हैं।

प्रवेश : फिर तो हम शुभ-भाव न करके अशुभ-भाव ही करेंगे ?

1.coincidently 2.attachment 3.malice 4.pride 5.greed 6.deceit
7.actually 8.category 9.supreme-purpose 10.completely

समकित : भाई ! यदि शुभ-भाव, अशुद्ध-भाव हैं तो अशुभ-भाव भी तो अशुद्ध-भाव ही हैं। शुभ-भाव मंद[1] अशुद्ध-भाव हैं व अशुभ-भाव तीव्र[2] अशुद्ध-भाव हैं लेकिन हैं तो दोनों अशुद्ध-भाव ही।

प्रवेश : तो फिर हम क्या करें ?

समकित : शुद्ध-भाव को प्रगट करने का पुरुषार्थ[3] करो, तो शुभ-अशुभ भाव अपने-आप घट[4] जायेंगे, लेकिन इतना याद रखना कि मोक्षार्थी जीव जब तक पूरी तरह से शुद्ध-भाव में नहीं पहुँच जाता तब तक वह अपनी भूमिका-अनुसार[5], अशुभ-भाव से छूट कर शुभ-भाव में लगता है। इस प्रकार का भाव उसे सहज-रूपसे (हठ बिना के) आये बिना नहीं रहता। लेकिन उसका लक्ष्य[6] मात्र पूर्ण शुद्ध-भाव प्रकट करने का ही रहता है।

प्रवेश : यदि मोक्षार्थी शुभभाव का ही लक्ष्य रखे तो ?

समकित : भाई ! मोक्षार्थी का लक्ष्य तो मोक्ष ही है और शुभ-भाव का फल तो स्वर्ग आदि ही है और स्वर्ग आदि तो संसार हैं। जो संसार का कारण[7] है, वह मोक्ष का कारण नहीं हो सकता। इसलिए मोक्ष का कारण तो सिर्फ शुद्ध-भाव ही है। जो अंतरंग-की[8] यथार्थ-रुचि[9] पूर्वक शुद्धभाव का लक्ष्य रखता है उसको भूमिका अनुसार शुभ-भाव सहज-रूपसे[10] हुए बिना नहीं रहते। यदि न हो तो चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े, लेकिन जिनका लक्ष्य ही शुभ-भाव का है उनको शुद्धभाव प्रकट होने का तो प्रश्न ही नहीं, बल्कि शुभ-भावों पर भी प्रश्नचिन्ह[11] रहता है। यदि कदाचित् (कभी) शुभ-भाव होते भी हैं तो हल्की-जाति[12] के ही हो पाते हैं।

प्रवेश : जैसे ?

समकित : जैसे हम जब इंजीनियरिंग की तैयारी कर रहे थे तब तीन तरह के एण्ट्रेंस-एक्जाम होते थे। सबसे उच्च स्तर का एक्जाम था IIT, मध्यम स्तर का था IEEE व निम्न स्तर का था PET। जो विद्यार्थी IIT की तैयारी करते थे उनका IEEE का एक्जाम तो सहज[13] निकल जाता था

1.low 2.intense 3.effort 4.reduce 5.deservedly 6.aim 7.cause 8.inner-self 9.keen-interest 10.automatically 11.question-mark 12.low-quality 13.automatically

लेकिन जिन की तैयारी ही IEEE की होती थी उनका तो PET निकलने पर भी प्रश्न चिन्ह रहता था और यदि कभी निकल भी जाये तो बमुश्किल बॉर्डर-मार्क्स पर ही निकलता था।

प्रवेश : ओह ! अब समझ में आया।

समकित : **ध्यान रखना उपदेश हमेंशा ऊपर चढ़ने के लिए ही दिया जाता है, नीचे गिरने के लिए नहीं।** जो बात जहाँ जिस अपेक्षा[1] से कही गई हो उसे उस अपेक्षा से समझना चाहिए। मोक्षार्थी को तो अनेकान्त और स्याद्‌वाद की ही शरण है।

यह कषाय/राग-द्वेष/अशुद्ध भाव चार प्रकार (स्तर) के होते हैं:

**स्तर-1.** अनंतानुबंधी कषाय
**स्तर-2.** अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय
**स्तर-3.** प्रत्याख्यानावरणीय कषाय
**स्तर-4.** संज्वलन कषाय

प्रवेश : भाईश्री ! इनका क्या अर्थ है ?

समकित : जैसा कि तुम जान ही चुके हो कि स्वयं में लीन नहीं होना ही कषाय/राग-द्वेष/अशुद्ध भाव है और वह कषाय चार प्रकार (स्तर[2]) की है।

समझने के लिये सरल भाषा में कहे तो स्वयं में पहले स्तर की लीनता भी नहीं हो पाना **अनंतानुबंधी कषाय** है। स्वयं में दूसरे स्तर की लीनता नहीं हो पाना **अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय** है। स्वयं में तीसरे स्तर की लीनता नहीं हो पाना **प्रत्याख्यानावरणीय कषाय** है और स्वयं में चौथे स्तर की (पूर्ण) लीनता नहीं हो पाना **संज्वलन कषाय** है।

प्रवेश : क्या बस यही इनके अर्थ हैं ?

समकित : इनके कुछ व्यवहारिक[3] अर्थ भी हैं लेकिन यहाँ अगृहीत (निश्चय) मिथ्याचारित्र का प्रकरण[4] होने से मात्र इनके निश्चय-स्वरूप[5] की ही चर्चा की गई है। प्रकरण आने पर इनके व्यवहार-स्वरूप[6] की भी चर्चा करेंगे।

1.intention/perspective 2.level 3.formal 4.topic 5.actual-aspect 6.formal-aspect

# 4

# गृहीत (व्यवहार) मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र

पिछले पाठ में हमने अगृहीत (निश्चय) मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र के स्वरूप की चर्चा की। इस अगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र को पुष्ट[1] करने वाले गृहीत (व्यवहार) मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र हैं। इसलिये गृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र के छूटे बिना अगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का छूटना असंभव है। अतः हमें सबसे पहले बुद्धि पूर्वक इनका त्याग करना चाहिये।

प्रवेश : गृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप विस्तार से समझाईये।

समकित : कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु की श्रद्धा[2] गृहीत-मिथ्यादर्शन है।

प्रवेश : कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु किसे कहते हैं ?

समकित : जो वीतरागी और सर्वज्ञ न होकर मोही, रागी-द्वेषी व अल्पज्ञ देवी-देवता हैं उन्हें **कुदेव** कहते हैं। मोही, रागी-द्वेषी व अल्पज्ञ की कल्पित वाणी को **कुशास्त्र** कहते हैं। मोही, रागी-द्वेषी व अल्पज्ञों की वाणी का अनुशरण कर कुलिंग (विपरीत भेष व तप) धारण[3] करने वाले व राग में धर्म मानने/मनवाने वाले गुरुओं को **कुगुरु** कहते हैं।

प्रवेश : क्या तीन मूढ़ता और छः अनायतन गृहीत मिथ्यादर्शन नहीं हैं ?

समकित : यह भी गृहीत मिथ्यादर्शन के ही भेद हैं जो कि एक प्रकार से कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरू के श्रद्धान में गर्भित[4] हो जाते हैं।

प्रवेश : कैसे ?

समकित : मूढ़ता तीन प्रकार की हैः

1. देव मूढ़ता 2. गुरु मूढ़ता 3. लोक मूढ़ता

जो सच्चे देव नहीं है ऐसे कुदेवों और अदेवों को पूजना **देव मूढ़ता** है।

---

1.strong 2.faith 3.adopt 4.include

प्रवेश : देव तो ठीक, ये अदेव क्या होते हैं ?

समकित : पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, नदी-तालाब, तुला-तिजोरी, वही-खाते आदि जो कि वीतरागी और सर्वज्ञ तो क्या, देवगति के जीव तक नहीं है उनको अदेव कहते हैं। इन अदेवों को पूजना भी कुदेवों को पूजने समान देव मूढ़ता है।

प्रवेश : गुरु मूढ़ता और लोक मूढ़ता ?

समकित : जो वीतराग मार्ग पर चलने वाले गुरु (आचार्य-उपाध्याय-साधु) नहीं हैं, उनको पूजना **गुरु मूढ़ता** है।

लोक में चलने वाले अंधविश्वास[1], कुप्रथाओं[2] आदि में विश्वास रखना **लोक मूढ़ता** है।

प्रवेश : और ये छः अनायतन क्या हैं ?

समकित : कुदेव-कुधर्म-कुगुरु व कुदेव-कुधर्म-कुगुरु को मानने वालों की प्रशंसा अनुमोदना[3] करना **छः अनायतन** है।

अब तुम को समझ में आ गया होगा कि तीन मूढ़ता और छः अनायतन, कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु के श्रद्धान में ही गर्भित हो जाते हैं। लेकिन तुमने पूँछा, ये अच्छा किया क्योंकि सामान्य-ज्ञान[4] से विशेष-ज्ञान[5] बलवान है।

प्रवेश : गृहीत मिथ्यादर्शन का स्वरूप तो समझ में आ गया, गृहीत मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं ?

समकित : मोही, रागी-द्वेषी व अज्ञानी जीवों द्वारा बनाये गये कल्पित ग्रंथ, जिनमें मिथ्यात्व[6] व कषायों (मोह, राग-द्वेष) का ही पोषण[7] किया गया हो, उनको ही धर्म बताया गया हो व जो जीव को अनन्त संसार में भटकाने में निमित्त हों ऐसे कुशास्त्रों का स्वाध्याय[8] करना गृहीत मिथ्याज्ञान कहलाता है।

---

1.superstitions 2.malpractices 3.praise 4.brief-knowledge
5.vast-knowledge 6.false-belief 7.confirmation 8.study

प्रवेश : और मोही, रागी-द्वेषी कुगुरुओं की श्रद्धा गृहीत मिथ्याचारित्र है ?

समकित : नहीं, जैसे कि हमने पहले देखा कि वह तो गृहीत मिथ्यादर्शन है, गुरू मूढ़ता है। उनके द्वारा बताये गये आचरण (चारित्र, तप[1]) आदि को धारण करना वह गृहीत मिथ्याचारित्र है।

प्रवेश : गृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप तो समझ में आ गया लेकिन इनके बुद्धिपूर्वक त्याग पर इतना जोर क्यों ?

समकित : गृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र में फँसकर जीव की दृष्टि बहिर्मुख हो जाती है। जिस कारण से वह अंतर्मुख दृष्टि नहीं कर पाता। अंतर्मुख दृष्टि किये बिना अगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र से नहीं छूट पाता बल्कि वह और भी पुष्ट (पक्के) होते जाते हैं।

अगृहीत (निश्चय) मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र छूटे बिना निश्चय सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रकट नहीं हो पाते और इनके बिना मोक्ष का मार्ग प्रगट[2] नहीं होता।

मोक्ष का मार्ग प्रगटे बिना मोक्ष नहीं होता। मोक्ष के बिना सच्चा सुख नहीं होता और सच्चे सुख को पाना ही तो हम सब का एक मात्र प्रयोजन[3] है। यदि यह प्रयोजन सिद्ध[4] न हो तो धर्म के नाम पर जो कुछ भी हम करेंगे वह निष्फल[5] होगा, इसलिए हमें पहले में पहले गृहीत (व्यवहार) मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का त्याग करना चाहिए।

प्रवेश : निश्चय सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र को भी समझाईये न।

समकित : आज नहीं कल।

दर्शन शुद्धि से ही आत्मसिद्धि।

**-गुरुदेवश्री के वचनामृत**

मैं समझता हूँ कि ऐसा होना दुष्कर है, तो भी अभ्यास सबका उपाय है।

**-श्रीमद् राजचन्द्र वचनामृत**

1.ascetism 2.achieve 3.purpose 4.fulfil 5.fruitless

# 5

# निश्चय सम्यकदर्शन-ज्ञान-चरित्र

जैसा कि हमने देखा की अगृहीत (निश्चय) मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र, दुःख यानि कि संसार के मूल-कारण[1] हैं। और गृहीत (व्यवहार) मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र उनको पुष्ट करने वाले निमित्त-कारण[2] हैं। ठीक इनके उलट निश्चय[3] सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र, सुख यानि कि मोक्ष के मूल कारण हैं और व्यवहार[4] सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र उनको पुष्ट करने वाले निमित्त-कारण हैं।

प्रवेश : निश्चय सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप क्या है ?

समकित : जिस तरह स्वयं को न जानना निश्चय मिथ्याज्ञान है, स्वयं में अपनापन न करना निश्चय मिथ्यादर्शन है और स्वयं में लीन न होना निश्चय मिथ्याचारित्र है, ठीक इनके उलट स्वयं को जानना निश्चय सम्यकज्ञान, स्वयं में अपनापन करना निश्चय सम्यकदर्शन और स्वयं में लीन होना निश्चय सम्यकचारित्र है।

प्रवेश : क्या निश्चय मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र की तरह इनके भी पर्यायवाची[5] होते हैं ?

समकित : हाँ बिल्कुल ! इनको हम निम्न चार्ट से समझ सकते हैं :

| द्रव्य | गुण | शुद्ध पर्याय | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| जीव | ज्ञान | सम्यकज्ञान | आत्मज्ञान | ज्ञान | सुज्ञान | | |
| | श्रद्धा | सम्यकश्रद्धा/ सम्यकदर्शन | निर्मोह | सम्यक्त्व | सीधी मान्यता | | |
| | चारित्र | सम्यकचारित्र | वीतरागता | निःकषाय | शुद्ध भाव | लीनता | पद |
| | | | | | सम्यक्त्वाचरण | स्तर&1 | अ. सम्यकदृष्टि |
| | | | | | देश चारित्र | स्तर&2 | व्रती श्रावक |
| | | | | | सकल चारित्र | स्तर&3 | मुनिराज |
| | | | | | यथाख्यात चारित्र + पूर्ण ज्ञान | स्तर&4 | भगवान |
| | सुख | सच्चा सुख | | | | | |

विशेष-यह चार्ट प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर बनाया गया है अतः कुछ बातें गौण की गयी हैं।

1.root-cause 2.formal-medium 3.actual 4.formal 5.synonyms

इस चार्ट में बहुत ही स्पष्ट है कि शास्त्रों में:

**निश्चय सम्यकज्ञान** को आत्मज्ञान, ज्ञान और सुज्ञान शब्दों से भी पुकारा जाता है।

**निश्चय सम्यकदर्शन** को निर्मोहता, सम्यक्त्व और सीधी-मान्यता भी कहा जाता है।

**निश्चय सम्यकचारित्र** को वीतरागता, निःकषाय भाव और शुद्ध-भाव भी कहा जाता है।

प्रवेश : जिसप्रकार हमने निश्चय मिथ्याचारित्र/राग-द्वेष/कषाय/अशुद्ध-भाव के चार प्रकार (स्तर)- अनंतानुबंधी कषाय, अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय, प्रत्याख्यानावरणीय कषाय व संज्वलन कषाय देखे थे क्या वैसे ही निश्चय सम्यकचारित्र के भी चार प्रकार (स्तर) होते हैं ?

समकित : हाँ,मिथ्याचारित्र के चार भेद-अनंतानुबंधी कषाय, अप्रत्याख्यानावरणी कषाय, प्रत्याख्यानावरणीय कषाय व संज्वलन कषाय के अभाव रूप निश्चय सम्यकचारित्र/वीतरागता/निःकषाय-भाव/शुद्ध-भाव के भी चार प्रकार (स्तर) होते हैं:

**स्तर-1.** निश्चय सम्यक्त्वाचरण चारित्र (अनंतानुबंधी कषाय के अभाव रूप)
**स्तर- 2.** निश्चय देश चारित्र (अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय के अभाव रूप)
**स्तर- 3.** निश्चय सकल चारित्र (प्रत्याख्यानावरणीय कषाय के अभाव रूप)
**स्तर- 4.** निश्चय यथाख्यात चारित्र (संज्वलन कषाय के अभाव रूप)

प्रवेश : मतलब ?

समकित : जैसे कि हमने पहले भी देखा था कि हम समझने के लिये कह सकते हैं कि अनंतानुबंधी कषाय का निश्चय (यथार्थ) अर्थ होता है स्वयं में पहले स्तर की लीनता भी नहीं होना आदि-आदि। ठीक उसके उलट हम समझने के लिये कह सकते हैं कि:

**निश्चय सम्यक्त्वाचरण चारित्र** का अर्थ है स्वयं में पहले स्तर की लीनता होना यानि कि अनंतानुबंधी कषाय का अभाव होना।

**निश्चय देश चारित्र** का अर्थ है स्वयं में दूसरे स्तर की लीनता होना यानि कि अप्रत्याख्यनावरणीय कषाय का अभाव होना।

**निश्चय सकल चारित्र** का अर्थ है स्वयं में तीसरे स्तर की लीनता होना यानि कि प्रत्याख्यानावरणीय कषाय का अभाव होना।

**यथाख्यात चारित्र** का अर्थ है स्वयं में चौथे स्तर की (पूर्ण) लीनता होना यानि कि संज्वलन कषाय का अभाव होना।

ध्यान रहे यहाँ निश्चय सम्यक्त्वाचरण चारित्र, देश चारित्र, सकल चारित्र और यथाख्यात चारित्र की चर्चा चल रही है। इनके व्यवहार स्वरूप की चर्चा अगले पाठ में होगी।

प्रवेश : निश्चय सम्यकदर्शन-ज्ञान में तो ऐसे कोई भेद नहीं है फिर निश्चय सम्यक चारित्र में ये भेद क्यों ?

समकित : यह बहुत अच्छा प्रश्न है। स्वयं का ज्ञान यानि कि निश्चय सम्यकज्ञान और स्वयं में अपनापन यानि कि निश्चय सम्यकदर्शन तो चौथे गुणस्थान में ही पूर्ण रूप से हो जाता हैं लेकिन स्वयं में लीनता के स्तर यानि कि चारित्र क्रम-क्रम से ही बढ़ता है।

प्रवेश : गुणस्थान मतलब ?

समकित : अभी तो ऐसा समझो कि संसार से मोक्ष की तरफ जाने वाली 14 सीढ़ियों को गुणस्थान कहते हैं।

प्रवेश : इसका मतलब यह हुआ कि स्वयं में लीनता एक-साथ पूर्ण रूप से नहीं होती ?

समकित : हाँ बिल्कुल !

प्रवेश : यदि निश्चय सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र, सच्चे सुख का कारण है तो फिर पहले स्तर की आत्म-लीनता (सम्यक्त्वाचरण चारित्र) वाले व्यक्ति से दूसरे स्तर की आत्म-लीनता (देश चारित्र) वाले व्यक्ति को सुख ज्यादा होता होगा ?

समकित : हाँ बिल्कुल ! क्योंकि सम्यकदर्शन (आत्म-श्रद्धान) और सम्यकज्ञान (आत्म-ज्ञान) तो सबका एक सा ही है, अंतर तो मात्र सम्यकचारित्र (आत्म-लीनता) में ही है इसलिये।

**पहले स्तर की** आत्म-लीनता वालों का मोक्षमार्ग में चौथा गुणस्थान होता है, ऐसे जीवों को अविरत् सम्यकदृष्टि कहते हैं।

**दूसरे स्तर की** आत्म-लीनता वालों का मोक्षमार्ग में पाँचवा गुणस्थान होता है उनको देश-व्रती श्रावक कहते हैं।

**तीसरे स्तर की** आत्म-लीनता वालों के मोक्षमार्ग में छठवें से दसवें तक के गुणस्थान होते हैं उनको हम मुनिराज (सामान्य) कहते हैं।

**चौथे स्तर की** (पूर्ण) आत्म-लीनता वालों के बारहवें से चौदहवें तक के गुणस्थान और गुणस्थानातीत (गुणस्थानों से पार) दशा होती है।

बारहवें गुणस्थान वाले जीव को पूर्ण वीतरागी क्षीण-कषाय मुनि, तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान वाले जीव को अरिहंत भगवान और गुणस्थानातीत दशा वाले जीव को सिद्ध भगवान कहते हैं।

प्रवेश : और मिथ्यादृष्टि का कौनसा गुणस्थान होता है ?

समकित : मिथ्यादृष्टि का पहला गुणस्थान होता है।

प्रवेश : अब व्यवहार सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र के बारे में भी बता दीजिये।

समकित : आज नहीं कल।

| द्रव्य | गुण | पर्याय | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | अशुद्ध पर्याय | | | | शुद्ध पर्याय | | | | | |
| जीव | ज्ञान | मिथ्याज्ञान | अनात्मज्ञान | अज्ञान | कुज्ञान | सम्यकज्ञान | आत्मज्ञान | ज्ञान | सुज्ञान | | |
| | श्रद्धा | मिथ्याश्रद्धा/ मिथ्यादर्शन | मोह | मिथ्यात्व | उल्टी मान्यता | सम्यकश्रद्धा/ सम्यकदर्शन | निर्मोह | सम्यक्त्व | सीधी मान्यता | | |
| | चारित्र | मिथ्याचारित्र | राग-द्वेष | कषाय | अशुद्ध भाव | सम्यकचारित्र | वीतरागता | निःकषाय | शुद्ध भाव | लीनता | पद |
| | | | | क्रोध | अनंतानुबंधी | | | | सम्यक्त्वाचरण | स्तर-1 | अ. सम्यकदृष्टि |
| | | | | मान | अप्रत्याख्यान. | | | | देश चारित्र | स्तर-2 | व्रती श्रावक |
| | | | | माया | प्रत्याख्यान. | | | | सकल चारित्र | स्तर-3 | मुनिराज |
| | | | | लोभ | संज्वलन. | | | | यथाख्यात चारित्र + पूर्ण ज्ञान | स्तर-4 | भगवान |
| | सुख | दुःख | | | | सच्चा सुख | | | | | |
| विशेष-यह चार्ट प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर बनाया गया है अतः कुछ बातें गौण की गयी हैं। | | | | | | | | | | | |

# 6

# व्यवहार सम्यकदर्शन-ज्ञान-चरित्र

समकित : जैसा कि हमने पिछले पाठ में देखा कि स्वयं को जानना निश्चय सम्यकज्ञान, स्वयं में अपनापन करना निश्चय सम्यकदर्शन और स्वयं में लीन होना निश्चय सम्यकचारित्र है। जब तक चारित्र की पूर्णता यानि की पूर्ण आत्मलीनता/वीतरागता (शुद्धि) नहीं हो जाती तब तक चारित्र गुण की पर्याय में वीतरागता के अंश के साथ-साथ भूमिका-योग्य[1] शुभ-अशुभ राग (अशुद्धि के अंश) भी मौजूद रहते हैं। इसप्रकार जब तक पूर्ण वीतरागता (शुद्धि) न हो तब तक निश्चय सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ पाया जाने वाला शुभ-राग (अशुद्धि का अंश) व्यवहार से सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र कहने में आता है।

प्रवेश : एक शुभ-राग (चारित्र गुण की आंशिक शुद्ध-पर्याय का अशुद्ध-अंश) को ही व्यवहार से सम्यकदर्शन, सम्यकज्ञान और सम्यकचारित्र तीनों कहते हैं ?

समकित : हाँ, इस निश्चय सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र के साथ पाया जाने वाला सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा (बहुमान) का शुभ राग **व्यवहार-सम्यकदर्शन**, सच्चे शास्त्रों के स्वाध्याय का शुभ राग **व्यवहार-सम्यकज्ञान** और भूमिका-योग्य बाह्य-आचरण[2] पालने का शुभ राग व क्रिया[3] **व्यवहार-सम्यकचारित्र** कहने में आता है।

प्रवेश : भूमिका-योग्य मतलब ?

समकित : भूमिका-योग्य का मतलब है-मोक्षमार्ग के गुणस्थान योग्य (लायक)।

प्रवेश : मोक्षमार्ग के गुणस्थान कौन-कौन से हैं ?

समकित : चौथे से बारहवें तक।

प्रवेश : तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान मोक्षमार्ग में नहीं आते ?

---

1.deservedly 2.external-conducts 3.physical-activities

समकित : नहीं, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान अरिहंत भगवान के हैं और वह भाव-मोक्ष स्वरूप हैं। इस अपेक्षा से वे मोक्षमार्ग में नहीं आते ।

प्रवेश् : जैसा आपने पहले बताया था कि निश्चय सम्यकदर्शन व सम्यकज्ञान तो चौथे गुणस्थान में ही पूर्ण हो जाते है लेकिन निश्चय सम्यकचारित्र अलग-अलग गुणस्थान में (वृद्धि स्तर की अपेक्षा से) अलग-अलग प्रकार का होता है। तो क्या अलग-अलग गुणस्थान में व्यवहार सम्यकचारित्र भी अलग-अलग प्रकार का होता है ?

समकित : हाँ, जैसे अविरत्-सम्यकदृष्टि को पहले स्तर की आत्मलीनता रूप निश्चय सम्यक्त्वाचरण चारित्र, व्रती-श्रावक को दूसरे स्तर की आत्मलीनता रूप निश्चय देश चारित्र, सामान्य मुनिराज को तीसरे स्तर की आत्मलीनता रूप निश्चय सकल चारित्र और पूर्ण वीतरागी क्षीण-कषाय मुनि को चौथे स्तर की (पूर्ण) आत्मलीनता रूप यथाख्यात चारित्र होता है। वैसे ही अविरत्-सम्यकदृष्टि को जघन्य शुभ-राग रूप व्यवहार सम्यक्त्वाचरण चारित्र, व्रती-श्रावक को मध्यम शुभ-राग रूप व्यवहार देश चारित्र और मुनिराज को उत्कृष्ट शुभ-राग रूप व्यवहार सकल चारित्र होता है।

प्रवेश : फिर तो पूर्ण वीतरागी क्षीण कषाय मुनि को व्यवहार यथाख्यात चारित्र भी होता होगा ?

समकित : नहीं, क्षीण कषाय मुनि पूर्ण वीतरागी हैं उनका संपूर्ण[1] राग (शुभ-अशुभ) नष्ट हो चुका है और व्यवहार चारित्र तो शुभ-राग रूप होता है। इसलिये उनके मात्र (निश्चय) यथाख्यात चारित्र होता है, व्यवहार यथाख्यात चारित्र नहीं।

प्रवेश : निश्चय चारित्र के भेदों[2] का आधार[3] तो बढ़ती हुई आत्मलीनता (वीतरागता) है। व्यवहार चारित्र के भेदों का आधार क्या है ?

समकित : व्यवहार चारित्र के भेदों का आधार बढ़ती हुई वीतरागता के साथ बढ़ता हुआ शुभ भाव यानि कि बाकी रह गये राग/कषाय की बढ़ती हुई मंदता है।

1.entire 2.classifications 3.base

प्रवेश : बाकी रह गये राग/कषाय का क्या अर्थ है ?

समकित : यह तो हम समझ ही चुके हैं कि अविरत् सम्यकदृष्टि को पहले स्तर की आत्मलीनता/वीतरागता है और शेष तीन स्तर की अनात्मलीनता संबंधी राग बाकी[1] है। देश व्रती श्रावक को दूसरे स्तर की आत्मलीनता /वीतरागता है और आखरी दो स्तर की अनात्मलीनता/राग बाकी है। सकल व्रती मुनिराज को तीसरे स्तर की आत्मलीनता/वीतरागता है व आखरी एक स्तर की अनात्मलीनता/राग बाकी है ।

तो अविरत् सम्यक दृष्टि के बाकी रह गये राग में शुभ राग का अंश[2] बहुत कम ओर अशुभ राग का अंश ज्यादा होता है इसलिये उसको मात्र सम्यकदर्शन के चार लिंग, आठ अंग पालने का और सम्यकदर्शन में लगने वाले पच्चीस दोषों से दूर रहने का शुभ-राग सहज-रूपसे[3] आये बिना नहीं रहता जिसे व्यवहार सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहते हैं।

प्रवेश : यह सम्यकदर्शन के चार लिंग आठ अंग और पच्चीस दोष कौनसे हैं?

समकित : सम्यकदर्शन के चार लिंगः

| | | |
|---|---|---|
| 1. | प्रशम | कषायों की यथयोग्य मंदता |
| 2. | संवेग | संसार-शरीर-भोगों से भय[4] व धर्म में रुचि[5] |
| 3. | अनुकंपा | जीव-दया[6] |
| 4. | आस्तिक्य | देव-शास्त्र-गुरु व तत्वों पर अटल-श्रद्धा[7] |

सम्यकदृष्टि निम्न पच्चीस दोषों[8] से दूर रहता हैः

| | | |
|---|---|---|
| 1. | आठमद | 8 |
| 2. | आठ दोष | 8 |
| 3. | तीन मूढ़ता | 3 |
| 4. | छः अनायतन | 6 |
| | कुल दोष | 25 |

1.remaining 2.fraction 3.automatically 4.fear
5.interest 6.compassion 7.firm-belief 8.flaws

प्रवेश : तीन मूढ़ता और छः अनायतन तो हम पहले भी समझ चुके हैं। यह आठ मद और आठ दोष कौनसे हैं ?

समकित : **आठ मद–** अनंतानुबंधी मान[1] को मद कहते हैं। मद एक प्रकार से मान का मुरब्बा[2] है।

| | | |
|---|---|---|
| 1. | ज्ञान मद | ज्ञान का मद |
| 2. | पूजा मद | प्रतिष्ठा[3] का मद |
| 3. | कुल मद | पिता के वंश के बड़प्पन[4] का मद |
| 4. | जाति मद | माता के वंश के बड़प्पन का मद |
| 5. | बल मद | शारिरिक-बल[5] का मद |
| 6. | ऋद्धि मद | धन, वैभव, ऋद्धि[6] आदि का मद |
| 7. | तप मद | तपस्या[7] का मद |
| 8. | रूप मद | शरीर की सुन्दरता का मद |

**आठ दोष :**

| | |
|---|---|
| शंका | जिनेन्द्र भगवान के वचनों में शंका[8] करना |
| कांक्षा | धर्म के फल में सांसरिक-सुखों[9] की कामना[10] करना |
| विचिकित्सा | धर्मात्माओं के शरीर के मल[11] को देख घृणा[12] करना |
| मूढ़दृष्टि | सच्चे और झूठे तत्वों[13] की पहिचान न रखना |
| अनुपगूहन | अपने गुणों[14] दूसरों के अवगुणों[15] को उजागर करना |
| अस्थितिकरण | धर्म से डिगते हुये जीव को धर्म में दृढ़[16] न करना |
| अवात्सल्य | साधर्मी पर निस्वार्थ-प्रीति[17] न रखना |
| अप्रभावना | जिन धर्म को कलंकित[18] करना, जिन-धर्म की शोभा[19] में वृद्धि न करना |

सम्यकदृष्टि को इन आठ दोषों का न होना ही सम्यकदर्शन के आठ अंग हैं जो कि निम्न हैं:

1.pride 2.jam 3.prestige 4.superiority 5.physical-strength 6.wealth 7.asceticsm 8.doubt 9.worldly-pleasures 10.wish 11.dirt 12.disguist feeling 13.philosophy 14. qualities 15.faults 16.firm 17.selfless-affection 18.disgrace 19.grace

| | |
|---|---|
| निःशंकित | जिनेन्द्र भगवान के वचनों में शंका न करना |
| निःकांक्षित | धर्म के फल में सांसरिक-सुखों की कामना न करना |
| निर्विचिकित्सा | धर्मात्माओं के शरीर के मल को देख घृणा न करना |
| अमूढ़दृष्टि | सच्चे और झूठे तत्वों की पहिचान रखना |
| उपगूहन | अपने गुणों दूसरों के अवगुणों को उजागर न करना |
| स्थितिकरण | धर्म से डिगते हुये जीव को धर्म में दृढ़ करना |
| वात्सल्य | साधर्मी पर निस्वार्थ-प्रीति रखना |
| प्रभावना | जिन धर्म को कलंकित न करना, जिन-धर्म की शोभा में वृद्धि करना |

प्रवेश : क्या अविरत् सम्यकदृष्टि अन्याय[1], अनीति[2] व अभक्ष्य का त्यागी होता है ?

समकित : अविरत् सम्यकदृष्टि सामान्य रूप से स्थूल अन्याय, अनीति, अभक्ष्य का सेवन नहीं करता, लेकिन उसको इनके त्याग की प्रतिज्ञा नहीं होती।

प्रवेश : और देश-व्रती श्रावक ?

समकित : इसीतरह देश-व्रती श्रावक को बाकी रह गये राग में शुभ व अशुभ राग दोनों का अंश[3] बराबर होता है। इसलिये उसको अणुव्रत व प्रतिमायें आदि पालने का सहज शुभ राग आये बिना नहीं रहता जिसे व्यवहार देश चारित्र कहते हैं।

सकल-व्रती मुनिराज को बाकी रह गये राग सिर्फ शुभ राग रूप है। अशुभ का अंश उसमें नहीं है इसलिये उनको महाव्रत और मूल गुणों को पालने का शुभ राग आये बिना नहीं रहता जिसे व्यवहार सकल चारित्र कहते हैं ।

प्रवेश : आत्मलीनता/वीतरागता को चारित्र कहा, यह तो समझ में आता है लेकिन शुभ राग को चारित्र क्यों कहा ? आखिर राग तो राग ही है भले ही शुभ ही क्यों न हो ?

1.injustice 2.immortality 3.fraction

समकित : निश्चय से (वास्तव में) तो वीतरागता ही चारित्र है, राग नहीं। लेकिन आंशिक[1] वीतरागता के साथ पाये जाने वाले शुभ राग को निमित्त-कारण (सहचर) जानकर व्यवहार (उपचार) से चारित्र कहने में आता है। क्योंकि **जो वस्तु जैसी है उसको वैसा कहना यह निश्चय-नय[2] का कथन[3] है और जो वस्तु जैसी नहीं है निमित्त आदि की अपेक्षा से उसे वैसा कहना यह व्यवहार-नय[4] (असद्भूत) का कथन है।**

प्रवेश : यह निमित्त-कारण क्या है ? क्या **कारण** भी कई प्रकार के होते हैं ?

समकित : आगे हमारी चर्चा का विषय यही है।

सम्यग्दर्शन कोई अपूर्व वस्तु है। शरीर की खाल उतारकर नमक छिड़कने वाले पर भी क्रोध नहीं किया- ऐसे व्यवहार चारित्र इस जीवने अनन्त बार पाले हैं, परन्तु सम्यग्दर्शन एक बार भी प्राप्त नहीं किया। लाखों जीवों की हिंसा के पाप की अपेक्षा मिथ्यादर्शन का पाप अनन्त गुना है। सम्यक्त्व सरल नहीं है, लाखों करोड़ों में किसी विरले जीवको ही वह होता है। सम्यक्त्वी जीव अपना निर्णय आप ही कर सकता है। सम्यक्त्वी समस्त ब्रह्माण्ड के भावों को पी गया होता है।...सम्यक्त्व कोई अलग ही वस्तु है। सम्यक्त्व रहित क्रियाएँ इकाई बिना शून्य के समान है। ...हीरे का मूल्य हजारों रुपया होता है, उसके पहले पड़ने से खिरी हुई रज का मूल्य भी सैकड़ों रूपया होता है उसी-प्रकार सम्यक्त्व-हीरे का मूल्य तो अमूल्य है, वह यदि मिल गया तब तो कल्याण हो ही जायेगा परन्तु वह नहीं मिला तब भी 'सम्यक्त्व कुछ अलग ही वस्तु है' - इस प्रकार उसका माहात्म्य समझकर उसे प्राप्त करने की उत्कण्ठारूप रज भी महान लाभ देती है।

**-गुरुदेवश्री के वचनामृत**

अहो ! इस अशरण संसार में जन्म के साथ मरण लगा हुआ है । आत्मा की सिद्धि न सधे तब तक जन्म-मरण का चक्र चलता ही रहेगा। ऐसे अशरण संसार में देव-गुरु-धर्म का ही शरण है।...

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1.partial 2.actual-perception 3.narration 4.formal-perception

# 7

# कारण-कार्य

समकित : यह एक सर्वस्वीकृत-तथ्य[1] है कि कारण[2] बिना कार्य[3] नहीं होता। इसलिये जब भी कोई घटना (कार्य) घटित होती है तो हम उसके कारणों पर विचार करते हैं, उसके कारणों की चर्चा करते हैं। और जब हम किसी भी कार्य (पर्याय) के कारण खोजते हैं, तब दो तरह के कारण सामने निकलकर आते हैं।

1. निमित्त कारण formal-cause
2. उपादान कारण actual-cause

प्रवेश : कृपया इनको विस्तार से समझाईये।

समकित : जो स्वयं कार्य रूप परिणमित (परिवर्तित)[4] नहीं होता, मात्र कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल[5] होने का आरोप[6] जिसपर आता है उसे **निमित्त कारण** कहते हैं।

जो स्वयं कार्य रूप परिणमित[7] होता है उसे **उपादन कारण** कहते हैं।

प्रवेश : जैसे ?

समकित : इसको हम निम्न चार्ट के माध्यम से समझेंगे:

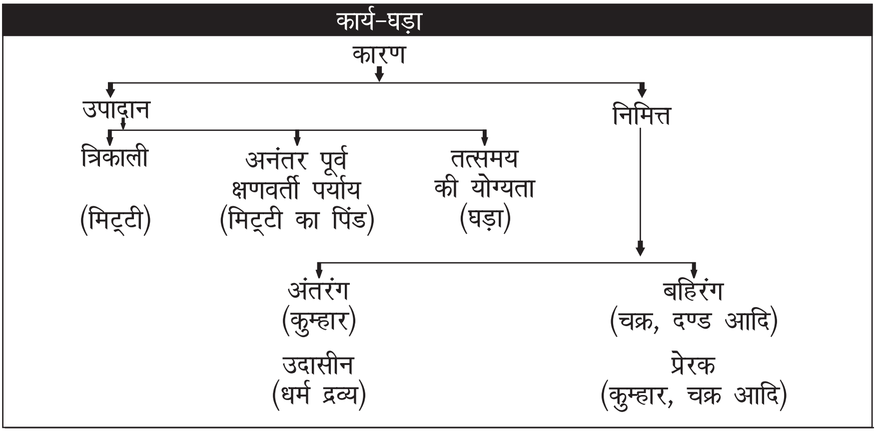


1.universal-fact 2.cause 3.action 4.transformed 5.favored 6.blame 7.transformed

जैसे-एक घड़ा[1] बनने का कार्य हुआ। जब हम इसके कारण खोजने वहाँ जाते हैं जहाँ घड़ा बनता है तो पहली नजर में जो कारण हमें दिखाई पड़ते हैं, वह हैं- कुम्हार[2], चक्र[3], दण्ड[4] आदि।

प्रवेश : ये कुम्हार, चक्र, दण्ड आदि उपादान कारण हैं या निमित्त कारण ?

समकित : जैसा कि हमने परिभाषा में देखा कि जो स्वयं कार्य रूप परिणमित होता है उसे उपादान कारण कहते हैं। कुम्हार, चक्र, दण्ड आदि तो घड़े रूप परिणमित (परिवर्तित) होते नहीं इसलिये वे उपादन कारण नहीं हो सकते। लेकिन कुम्हार के योग[5] और उपयोग[6] और चक्र, दण्ड आदि की क्रिया[7] ऐसी जरूर है कि इन पर घड़े (कार्य) की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप आ सके इसलिये कुम्हार, चक्र, दण्ड आदि घड़े बनने के कार्य के निमित्त कारण कहलाते हैं।

प्रवेश : यदि घड़े बनने के कार्य में कुम्हार, चक्र, दण्ड आदि निमित्त कारण हैं तो फिर उपादान कारण क्या है ?

समकित : मिट्टी, घड़े रूप परिणमित होती है इसलिये मिट्टी घड़े बनने के कार्य का उपादान कारण है।

प्रवेश : इसका मतलब यह हुआ कि उपादान कारण से अनुकूल निमित्त कारण को मिलाने पर कार्य होता है ?

समकित : नहीं। हमने निमित्त कारण की परिभाषा[8] में देखा कि निमित्त कारण कार्य में अनुकूल नहीं होता। सिर्फ कार्य हो जाने पर उस पर कार्य में अनुकूल[9] होने का आरोप भर आता है।

दूसरा, जब निमित्तों की स्वयं की योग्यता[10] होती है तभी वह मिलते हैं। रागी जीव तो मात्र उनको मिलाने का विकल्प[11] करता है लेकिन यदि उपादान कारण न हो तो कितना भी विकल्प करने पर कार्य में अनुकूल सी लगने वाली यह सामग्रियाँ[12] नहीं मिलती और यदि किसी तरह मिल भी जायें तब भी उपादान कारण न होने पर कार्य नहीं होता। और जब तक कार्य नहीं होता तब तक तो किसी भी सामग्री पर

1.earthen-pot 2.potter 3.potters-wheel 4.potters-stick 5.thoughts-words-actions 6.concentration 7.execution 8.defination 9.favored 10.ripeness 11.worries 12.stuffs

निमित्त कारण (अनुकूल होने) का आरोप भी नहीं आ सकता क्योंकि इन सामग्रियों पर निमित्त कारण होने का आरोप तो कार्य होने पर ही आता है। जैसे तीर्थंकर के समवसरण में जिन जीवों को अपने उपादान कारण से क्षायिक-सम्यकदर्शन रूपी कार्य प्रगट हो जाता है, उनके लिये तो तीर्थंकर पर निमित्त कारण होने का आरोप आ जाता है। लेकिन जिन जीवों को क्षायिक-सम्यकदर्शन रूपी कार्य प्रगट न हो उनके लिये तो तीर्थंकर पर निमित्त कारण होने का आरोप भी नहीं आता।

प्रवेश : जब निमित्त कारण, कार्य में अनुकूल नहीं होता तो फिर उस पर कार्य में अनुकूल होने का आरोप कैसे आ जाता है ?

समकित : क्योंकि निमित्त कारण भी वही कहलाता है कि जिसका स्वरूप[1] कुछ ऐसा हो कि उसके ऊपर कार्य में अनुकूल हेने का आरोप आ सके। जिन पदार्थों का स्वरूप ऐसा नहीं हो कि उन पर कार्य में अनुकूल होने का आरोप भी आ सके, वे कार्य के निमित्त कारण भी नहीं कहलाते।

जैसे कि घड़े की उत्पत्ति[2] रूपी कार्य में कुम्हार, चक्र आदि तो निमित्त-कारण नाम पा जाते हैं क्योंकि उनके योग व उपयोग आदि कुछ इसप्रकार के हैं कि उनपर घड़े की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप आ सके लेकिन पास में खड़ी कुम्हार की बकरी निमित्त-कारण नाम नहीं पाती क्योंकि उसके योग और उपयोग ऐसे नहीं है कि उस पर घड़े की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप भी आ सके।

प्रवेश : यह तो समझ में आ गया कि कार्य उपादान कारण से ही होता है और जब उपादान कारण हो तभी योग्य निमित्त-कारण मिलते हैं, लेकिन कार्य होता तो तभी है न, जब योग्य निमित्त मिलते हैं ? **क्योकि घड़े का उपादान कारण मिट्टी तो हमेशा मौजूद है लेकिन घड़ा बनता तो तभी है जब योग्य निमित्त कुम्हार, चक्र दण्ड आदि मिलते हैं ?**

समकित : नहीं ऐसा नहीं है। यह भ्रम उपादान कारण के भेद-प्रभेद[3] की पूरी जानकारी न होने के कारण पैदा होता है।

1.nature and execution 2.occurance 3.types-subtypes

क्योंकि मिट्टी तो घड़े रूपी कार्य का त्रिकाली उपादन कारण है। त्रिकाली उपादान कारण से तो सिर्फ यह जानकारी मिलती है कि मिट्टी ही घड़े रूप परिणमित[1] हो सकती है, हवा-पानी आदि नहीं। लेकिन इससे यह जानकारी नहीं मिलती कि मिट्टी कैसे और कब घड़े रूप परिणमित होगी।

प्रवेश : फिर ?

समकित : लगता है तुमने चार्ट सही से नहीं देखा। उपादान कारण दो प्रकार के होते हैं :

1. त्रिकाली उपादान कारण (द्रव्य)
2. क्षणिक उपादन कारण (पर्याय)

अब क्षणिक उपादान कारण भी दो प्रकार के होते हैं:

1. अनंतर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय के व्यय-रूप क्षणिक उपादन कारण (पूर्व-पर्याय का व्यय)[2]

2. तत्समय की पर्यायगत योग्यता-रूप क्षणिक उपादन कारण (कार्य-उत्पत्ति की योग्यता)[3]

इस तरह उपादन कारण कुल-मिलाकर तीन तरह के हो जाते हैं:

1. त्रिकाली उपादान कारण
2. अनंतर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय के व्ययरूप क्षणिक उपादान कारण
3. तत्समय की पर्यायगत योग्यतारूप क्षणिक उपादान कारण

प्रवेश : ओह ! मिट्टी ही घड़े रूप परिणमित हो सकती है, पानी आदि नहीं। यह त्रिकाली उपादन कारण बतलाता है ?

समकित : हाँ और मिट्टी कैसे व कब घड़े रूप परिणमित होगी यह क्षणिक उपादन कारण बतलाता है। वह कैसे घड़े रूप परिणमित होगी वह अनंतर पूर्व क्षणवर्ती पर्यायरूप क्षणिक उपादन कारण बतलाता है

1.transformed 2.end of previous state
3.occurance eligibility of that state

और वह कब (किस-समय) घड़े रूप परिणमित होगी यह तत्समय की पर्यायगत योग्यता रूप क्षणिक उपादान कारण बतलाता है।

प्रवेश : कृपया विस्तार से समझाईये।

समकित : **त्रिकाली उपादन कारण** यह बतलाता है कि किस द्रव्य में यह कार्य होगा। जैसे मिट्टी ही घड़े रूप परिणमित हो सकती है। पानी आदि नहीं। यह कार्य के पाँच-समवाय कारणों में से **स्वभाव**[1] का द्योतक है।

**क्षणिक उपादान कारण** बतलाता है कि कौन सी मिट्टी घड़े रूप परिणमित होगी क्योंकि मिट्टी तो पूरी दुनिया में पड़ी हुई है लेकिन हर मिट्टी हर समय घड़े रूप परिणमित नहीं होती। यह **होनहार**[2] (भवितव्यता) का द्योतक है।

1. **अनंतर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय का व्यय रूप क्षणिक उपादन कारण** यह बतलाता है कि कार्य होने के पहले कौन सा कार्य होगा। यानि घड़ा रूपी कार्य कैसे होगा। जैसे घड़े की पर्याय के पहले मिट्टी के पिंड[3] की पर्याय होगी। जिस समय पिंड की पर्याय का व्यय होगा उसी समय घड़े की पर्याय प्रगट होगी। यह एक प्रकार ये **पुरुषार्थ**[4] का द्योतक है।

2. **तत्समय की पर्यायगत योग्यता रूप क्षणिक उपादान कारण** यह बतलाता है कि जिस समय कार्य होना होगा उसी समय कार्य होगा। जैसे कि घड़े की पर्याय होने के समय ही घड़े की पर्याय (कार्य) होगी। न आगे न पीछे। यह बतलाता है कि कब मिट्टी घड़े की पर्याय रूप परिणमित होगी।इसप्रकार घड़े की पर्याय ही कार्य है व घड़े की उत्पत्ति की पर्यायगत योग्यता ही कारण। यह **काल-लब्धि**[5] का द्योतक है।

इस तरह उपादान कारणो में भी त्रिकाली उपादान कारण कार्य का नियामक (समर्थ) कारण नहीं है। क्षणिक उपादान कारण ही कार्य का नियामक (समर्थ) कारण[6] है। यानि कि यदि कार्य का यह समर्थ[7] कारण मौजूद हो तो बाकी सभी प्रकार के उपादान कारण और निमित्त कारण मौजूद होते ही हैं और यदि यह नियामक करण मौजूद न हो तो अन्य सामग्रीयाँ[8] मिलने पर भी कार्य नहीं होता।

1.nature 2.destiny 3.mass 4.effort destiny 5.time-quotient 6.regulatory-cause 7.capable 8.stuffs

प्रवेश : जैसे ?

समकित : जैसे चक्र,दण्ड, कुम्हार, मिट्टी आदि सब कुछ हो तो भी घड़ा बनने की गारंटी[1] नहीं रहती। लेकिन घड़ा बनने का समय आने पर घड़ा बनने की व योग्य निमित्त आदि मिलने की पूरी गारंटी रहती है। इसलिये तत्समय की पर्यायगत योग्यता रूप क्षणिक उपादन कारण ही कार्य का नियामक कारण है।

प्रवेश : यदि ऐसा है तो आगम में मोक्षमार्ग के प्रबल[2] निमित्त सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की संगति बुद्धिपूर्वक करने का उपदेश क्यों दिया है? जब तत्समय की पर्यायगत योग्यता रूप क्षणिक उपादन कारण आयेगा तब इन (निमित्तों) की संगति सहज हो जायेगी ?

समकित : यह जानते हुये भी कि निमित्तों से कार्य नहीं होता, ज्ञानी मोक्षमार्गी जीवों को भी पूर्ण वीतरागता न होने के कारण मोक्षमार्ग में अनुकूल प्रतीत होने वाले सद्-निमित्तों यानि कि सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की संगति करने का और प्रतिकूल प्रतीत होने वाले असद्-निमित्तों यानि कि कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु की संगति बुद्धिपूर्वक छोड़ने का शुभ राग आये बिना नहीं रहता।

हालांकि निमित्त तो हमारे मोक्ष या संसार रूपी कार्य (पर्याय) के कर्ता नहीं हैं। न ही निमित्त हमें प्रभावित करते हैं लेकिन रागी-जीव अपने राग के कारण स्वयं ही निमित्तों से प्रभावित हुये बिना नहीं रहता इसलिये आगम में अनेक जगहों पर सद्निमित्तों की संगति करने का और असद्-निमित्तों की संगति छोड़ने का उपदेश व्यवहार से दिया गया है और उसकी भी अपनी एक उपयोगिता[3] है। लेकिन जो बात जहाँ जिस अपेक्षा से कही गयी हो उसी अपेक्षा से ग्रहण करनी चाहिये वरना एकांत हो जायेगा। मोक्षार्थी को तो अनेकांत की ही शरण है।

इसीतरह जो जीव निश्चय सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र के लिये पुरुषार्थ करते हैं। उनको सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के प्रति बहुमान[4] आदि का शुभ राग सहज रूप से आये बिना नहीं रहता। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु हमारे सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र (कार्य) रूप परिणमित नहीं होते इसलिये

1.guarantee 2.strong 3.usefulness 4.gratitude

हमारे इस कार्य के उपादन कारण नहीं हैं। लेकिन उन पर हमारे इस कार्य में अनुकूल होने का आरोप आता है और आरोप भी इसलिये आता है क्योंकि उनका स्वयं का परिणमन[1] भी इसीप्रकार का (सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्ररुप)है। कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरु का परिणमन ऐसा नहीं है कि उन पर हमारे कार्य में अनुकूल होने का आरोप आ सके बल्कि उनका परिणमन तो कुछ ऐसा है कि उनके ऊपर हमारे इस कार्य में प्रतिकूल होने का आरोप आता है।

इसलिये निश्चय सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति में सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का श्रद्धान, सत्शास्त्रों का स्वाध्याय और यथायोग्य बाह्य-आचरण आदि के शुभ राग को निमित्त-कारण (सहचर) जानकर व्यवहार से सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र कहने में आता है। यानि कि व्यवहार-नय कारण (निमित्त) को ही कार्य कह देता है। लेकिन ध्यान रहे निश्चय सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होने से पहले वह शुभ-राग होता जरूर है लेकिन व्यवहार से भी सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र नाम नहीं पाता। यह नाम वह निश्चय सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट होने पर ही पाता है। क्योंकि कार्य होने पर ही अन्य पदार्थ पर कारण होने का आरोप आ सकता है।

जैसे प्लास्टिक[2] की डिब्बी तो हर हाल में प्लास्टिक की डिब्बी ही है लेकिन केसर[3] की संगति होने पर वह प्लास्टिक की डिब्बी भी केसर की डिब्बी कहलाने लगती है। लेकिन केसर की संगति के बिना वह प्लास्टिक की डिब्बी केसर की डब्बी नहीं कहलाई जा सकती।

प्रवेश : भाईश्री ! यह तो सहचर[4] व्यवहार की बात है लेकिन पूर्वचर[5] व्यवहार तो निश्चय धर्म प्रगट होने से पहले ही होता है ?

समकित : निश्चय धर्म प्रगट होने से पहले उस जाति का पूर्वचर शुभ-राग होता है लेकिन वह पूर्वचर शुभ-राग, पूर्वचर-व्यवहार धर्म नाम तो वास्तव में निश्चय धर्म प्रगट होने के बाद ही पाता है। **हमेंशा ध्यान रखना नय निरपेक्ष[6] नहीं होते।**

प्रवेश : यह तो बहुत अच्छे से समझ में आ गया। क्या उपादान-कारण की तरह निमित्त-कारण के भी अनेक भेद[7] होते हैं ?

1.transformation 2.plastic 3.saffron 4.parallel 5.previous 6.irrespective 7.types

# ४
# निमित्त कारण

समकित : जैसा कि हमने पिछले पाठ में देखा कि **जो स्वयं कार्यरूप परिणमित नहीं होता लेकिन कार्य की उत्पत्ति में अनुकूल होने का आरोप जिसपर आता है उसे निमित्त कारण कहते हैं।**

यह निमित्त कारण भी मुख्य रूप से चार प्रकार के होते हैं :

1. अंतरंग निमित्त कारण
2. बहिरंग निमित्त कारण
3. प्रेरक निमित्त कारण
4. उदासीन निमित्त कारण

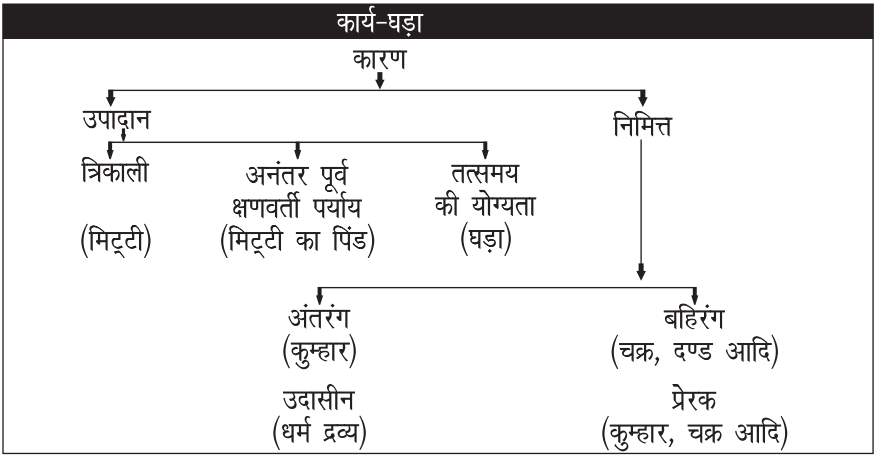


प्रवेश : कृपया एक-एक कर के समझाईये।

समकित : **1. अंतरंग निमित्त कारण-** तत्समय की पर्यायगत योग्यता रूप उपादान कारण के मौजूद[1] होने पर जो निमित्त नियमरूप-से[2] मौजूद रहता है उसे अंतरंग निमित्त कहते हैं।

**जैसे समझने के लिए हम कह सकते हैं कि** घड़ा बनने की तत्समय की पर्यायगत योग्यता रूप क्षणिक उपादान कारण मौजूद होने पर कुम्हार (घड़ा बनाने के योग और उपयोग वाला व्यक्ति) वहाँ नियम-रूपसे मौजूद रहता है। क्योंकि इसप्रकार का ही निमित्त-नैमित्तक संबंध है।

---

1.present 2.compulsorily

प्रवेश : यह निमित्त-नैमित्तक संबंध क्या होता है ?

समकित : **निमित्त कारण की अपेक्षा कार्य को नैमित्तिक कहते हैं और उपादान कारण की अपेक्षा कार्य को उपादेय कहते हैं।** जैसे कुम्हार की अपेक्षा घड़ा नैमित्तिक कहलायेगा और मिट्टी आदि की अपेक्षा उपादेय।

**2. बहिरंग निमित्त-** तत्समय की पर्याय गत योग्यता रूप क्षणिक उपादन कारण मौजूद होने पर जिस निमित्त का नियम-रूपसे मौजूद रहने का नियम[1] नहीं है उसे बहिरंग निमित्त कहते हैं।

**जैसे समझने के लिए हम कह सकते हैं कि** घड़ा बनने की तत्समय की पर्यायगत योग्यता रूप क्षणिक उपादान कारण मौजूद होने पर बहिरंग निमित्त चक्र, दण्ड आदि की मौजूदगी[2] का नियम नहीं है। चक्र, दण्ड आदि के अलावा कोई और उपकरण अथवा मशीनरी भी बहिरंग निमित्त हो सकती है।

**3. प्रेरक निमित्त-** जो निमित्त (अंतरंग या बहिरंग) इच्छावान (जीव) या क्रियावान (जीव और पुद्गल दोनों) होते हैं उन्हें प्रेरक निमित्त कहते हैं। जैसे- घड़े की उत्पत्ति में अंतरंग निमित्त कुम्हार जीव द्रव्य होने इच्छावान और क्रियावान दोनों है और बहिरंग निमित्त चक्र, दण्ड आदि पुद्गल द्रव्य होने से क्रियावान हैं। अतः कुम्हार, चक्र, दण्ड आदि सभी घड़े की उत्पत्ति में प्रेरक निमित्त कहलाते हैं।

प्रवेश : इसका मतलब यह हुआ कि भले ही निमित्त कार्य रूप परिणमित नहीं होते, लेकिन कार्य में प्रेरक तो होते ही हैं ?

समकित : नहीं। प्रेरक नहीं होते, उन पर प्रेरक होने का आरोप भर आता है क्योंकि उनका स्वरूप ही कुछ ऐसा है, यानि कि वे इच्छावान[3] या क्रियावान[4] हैं। प्रेरक शब्द यह नहीं दर्शाता कि यह निमित्त कार्य के प्रेरक हैं, बल्कि यह दर्शाता है कि यह निमित्त इच्छावान या क्रियावान है। यानि कि जीव या पुद्गल द्रव्य है। धर्म, अधर्म, आकाश व काल द्रव्य नहीं। कार्य की उत्पत्ति में तो प्रेरक निमित्त भी वास्तव में धर्म, अधर्म आदि के समान उदासीन ही हैं। ध्यान रखना निमित्त कारण की

1.rule 2.presence 3.willfull 4.dynamic

मूल-परिभाषा[1] सभी प्रकार के निमित्त कारणों पर समान-रूपसे[2] लागू होती है। इच्छावान या क्रियावान निमित्तों को प्रेरक[3] कहना व्यवहार है, लेकिन यथार्थ में प्रेरक मानना मिथ्यात्व है।

प्रवेश : और उदासीन निमित्त ?

समकित : **4. उदासीन निमित्त–** जो द्रव्य इच्छावान या क्रियावान नहीं होते उन्हें उदासीन निमित्त कहते हैं। यानि कि जीव और पुद्गल को छोड़कर बाकी चार द्रव्य (धर्म, अधर्म, आकाश व काल) पर किसी कार्य में उदासीन निमित्त होने का ही आरोप आ सकता है। जैसे घड़े की उत्पति में धर्म, अधर्म आदि द्रव्य।

प्रवेश : आपने पहले छह द्रव्यों में से जीव और पुद्गल द्रव्य के बारे में तो विस्तार से समझा दिया। **अब कृपया धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य के बारे में भी समझा दीजिये।**

समकित : वह मैं तुमको कल समझाता हूँ। लेकिन अभी पहले इन सभी प्रकार के कारणों को जीव के कार्य (पर्याय) पर तो घटा[4] करके देख लो।

प्रवेश : जी बिल्कुल। असली-प्रयोजन[5] तो वही है।

समकित : अब हम जीव के सम्यकदर्शन रूपी कार्य के कारण खोजते हैं।

**त्रिकाली उपादान कारण–** चूँकि सम्यकदर्शन, भव्य-जीव को ही हो सकता है इसलिये भव्य-जीव सम्यकदर्शन रूपी कार्य का त्रिकाली उपादान कारण (स्वभाव) है।

**अनंतर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय के व्यय रूप क्षणिक उपादान कारण–** चूँकि सम्यदर्शन की पर्याय प्रगट होने के पूर्व करण-परिणाम होते हैं इसलिये करण-परिणाम अनंतर पूर्व क्षणवर्ती पर्याय के व्यय रूप क्षणिक उपादान कारण (पुरुषार्थ ) है।

**तत्समय की पर्यायगत योग्यता रूप क्षणिक उपादान कारण–** चूँकि जब तक सम्यकदर्शन की योग्यता वाली पर्याय के प्रगट[6] होने का समय

1.basic-defination 2.equally 3.motivator 4.apply 5.actual-purpose 6.occur

नहीं आ जाता तब तक सम्यकदर्शन नहीं हो सकता इसलिये सम्यक दर्शन ही कार्य है और सम्यकदर्शन ही तत्समय की पर्यायगत योग्यता रूप क्षणिक उपादान कारण (काललब्धि) है। यानि कि वास्तव में सम्यकदर्शन की पर्याय ही कार्य है और सम्यकदर्शन की पर्याय ही नियामक[1] (समर्थ) कारण है।

**अंतरंग निमित्त कारण–** सम्यकदर्शन रूपी कार्य की तत्समय की पर्यायगत योग्यता रूप क्षणिक उपादान कारण (समर्थ-कारण) मौजूद होने पर नियम से दर्शन-मोहनीय कर्म का क्षय/उपशम/क्षयोपशम होता है। इसलिये दर्शन-मोहनीय कर्म का क्षय/उपशम/क्षयोपशम (अनुदय) अंतरंग निमित्त कारण कहलाता है।

**बहिरंग निमित्त कारण–** सम्यकदर्शन रूपी कार्य होते समय जिनके मौजूद होने का नियम नहीं है ऐसे सच्चे देव-शास्त्र-गुरु व उनका उपदेश आदि बहिरंग निमित्त कारण कहलाते हैं।

**प्रेरक निमित्त कारण–** देव क्रियावान होने से व गुरु इच्छावान व क्रियावान दोनों होने से उनका उपदेश प्रेरक निमित्त कहलाता है।

**उदासीन निमित्त कारण–** काल द्रव्य न तो इच्छावान है और न ही क्रियावान इसलिये वह सम्यकदर्शन रूपी कार्य में उदासीन निमित्त कहलाता है।

देव-गुरु की वाणी और देव-शास्त्र-गुरु की महिमा चैतन्यदेव की महिमा जागृत करने में, उसके गहरे संस्कार दृढ़ करने में तथा स्वरूपप्राप्ति करने में निमित्त हैं।

**–बहिनश्री के वचनामृत**

निमित्त की प्रधानता से कथन तो होता है, परन्तु कार्य कभी भी निमित्त से नहीं होता। यदि निमित्त ही उपादान का कार्य करने लगे तो निमित्त ही स्वयं उपादान बन जाये, अर्थात् निमित्त, निमित्त-रूप से नहीं रहेगा और उपादान का स्थान निमित्त ने ले लिया इसलिये निमित्त से भिन्न उपादान भी नहीं रहेगा। इस प्रकार निमित्त से उपादान का कार्य मानने पर उपादान और निमित्त दोनों कारणों का लोप हो जायेगा।

**–गुरुदेवश्री के वचनामृत**

1.regulatory

# 9

# धर्म-अधर्म-आकाश-काल

समकित : जीव और पुद्गल द्रव्य की चर्चा तो हम बहुत विस्तार से कर चुके हैं। अब हम बाकी[1] चार द्रव्य यानि कि धर्म, अधर्म, आकाश व काल द्रव्य की चर्चा करने के लिये भी परिपक्व[2] हो चुके हैं। इसलिये अब हम उनकी चर्चा करेंगे।

प्रवेश : परिपक्व हो गये हैं मतलब ?

समकित : इन चार द्रव्यों का स्वरूप निमित्त-कारण का स्वरूप समझे बिना नहीं समझा जा सकता।

प्रवेश : ऐसा क्यों ?

समकित : क्योंकि जो स्वयं[3] चलते हुये जीव और पुद्गल को चलने[4] में निमित्त हो उसे धर्म द्रव्य कहते हैं।

निमित्त कारण की सही समझ होने के बाद ही हम इस परिभाषा का भावार्थ सही तरह से समझ सकते हैं कि जब जीव और पुद्गल स्वयं अपनी (क्रियावती शक्ति की) तत्समय की योग्यता से चलते हैं तो उनके चलने (गमन) में अनुकूल होने का आरोप[5] जिस द्रव्य पर आता है उसे **धर्म द्रव्य** कहते हैं क्योंकि धर्म द्रव्य का स्वरूप ही कुछ ऐसा है।

उसीतरह जब चलते हुये जीव व पुद्गल स्वयं अपनी (क्रियावती शक्ति की) तत्समय की योग्यता से रुक जाते हैं तब उनके रुकने[6] में अनुकूल होने का आरोप जिस द्रव्य पर आता है उसे **अधर्म द्रव्य** कहते हैं।

| द्रव्य | | गुण | पर्याय |
|---|---|---|---|
| जीव | जीव | ज्ञान, दर्शन, श्रद्धा, चारित्र | |
| अजीव | पुद्गल | स्पर्श, रस, गंध, वर्ण | |
| | **धर्म** | **गति-निमित्तता** | |
| | **अधर्म** | **स्थिति-निमित्तता** | |
| | **आकाश** | **अवगाहन-निमित्तता** | |
| | **काल** | **परिणमन-निमित्तता** | |
| | लोक | | |
| | अलोक | | |

1.remaining 2.prepare 3.self 4.motion 5.blame 6.stoppage

प्रवेश : मैं तो समझता था कि जो जीव और पुद्गल को चलाये उसे धर्म द्रव्य और जो चलते हुये जीव व पुद्गल को रोके उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं।

समकित : यदि ऐसा मानेंगे तो इस विश्व (लोक) में धर्म और अधर्म द्रव्य दोनों ही हमेंशा मौजूद हैं। एक जीव और पुद्गल को चलाने का प्रयास करेगा और उसी समय दूसरा उन्हें रोकने का। यानि कि दोनों अपनी-अपनी ताकत[1] वितरीत-दिशा[2] में लगायेंगे तो ऐसे तो जीव और पुद्गल की चटनी बट जायेगी।

प्रवेश : हा...हा...हा...!

समकित : वास्तव-में[3] तो जीव और पुद्गल दोनों द्रव्यों में एक क्रियावती शक्ति नाम का गुण पाया जाता है। जब उस गुण की गति[4] रूप पर्याय होती है तो जीव और पुद्गल स्वयं गति करते हैं और जब उस गुण की स्थिति[5] रूप पर्याय होती है तो चलते हुये जीव व पुद्गल स्वयं रुक जाते हैं। तब जिस द्रव्य पर उनके चलने में अनुकूल होने का आरोप[6] आता है उसे धर्म द्रव्य कहते हैं और जिस द्रव्य पर उनके रुकने में अनुकूल होने का आरोप आता है उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं।

प्रवेश : यदि बात सिर्फ आरोप की ही है तो धर्म द्रव्य पर ही जीव और पुद्गल के चलने में अनुकूल होने का आरोप क्यों आता है ? किसी और द्रव्य पर क्यों नहीं ?

समकित : इसके बारे में चर्चा हम बाकी रह गये आकाश और काल द्रव्य की चर्चा के बाद करेंगे। सुनो जब सभी द्रव्य स्वयं अपनी योग्यता से इस विश्व में रहते हैं तो उनके रहने में अनुकूल होने का आरोप जिस द्रव्य पर आता है उसे **आकाश द्रव्य** कहते हैं।

एवं जब सभी द्रव्यों की पर्याय अपनी (द्रव्यत्व शक्ति की) योग्यता से प्रति समय बदलती है तो उसके इस बदलाव (परिणमन) में अनुकूल होने का आरोप जिस द्रव्य पर आता है उसे **काल द्रव्य** कहते हैं।

प्रवेश : आपने बताया था इस विश्व (लोक) में अनंत जीव द्रव्य व अनंतानंत

1.force 2.reverse-direction 3.actually 4.motion 5.stoppage 6.blame

पुद्गल द्रव्य हैं लेकिन धर्म, अधर्म, आकाश व काल द्रव्य कितने-कितने हैं ?

समकित : इस विश्व (लोक) में धर्म द्रव्य एक है जो पूरे पुरुषाकार[1] लोक में फैला-हुआ[2] है। अधर्म द्रव्य भी एक है और वह भी पूरे पुरुषाकार लोक में फैला हुआ है । आकाश द्रव्य भी एक ही है जो पूरे पुरुषाकार लोक और लोक के बाहर अलोक में भी फैला हुआ है।

प्रवेश : लोक के बाहर भी आकाश द्रव्य है ?

समकित : हाँ, एक अखंड[3] आकाश द्रव्य ही पूरे लोक और लोक के बाहर अलोक में फैला हुआ है। लोक के अंदर के आकाश द्रव्य को लोकाकाश और लोक के बाहर के आकाश द्रव्य को अलोकाकाश कहते हैं।

प्रवेश : और काल द्रव्य ?

समकित : काल द्रव्य की संख्या लोक-प्रमाण असंख्यात है।

प्रवेश : यह लोक-प्रमाण असंख्यात क्या होता है ?

समकित : यह पुरुषाकार लोक असंख्यात[4] प्रदेशी है । लोक के एक-एक प्रदेश पर षट्कोण[5] के आकार का एक-एक कालाणु (काल-द्रव्य) खचित[6] है। दूसरे द्रव्यों की तरह उसकी पर्याय भी लगातार बदलती रहती है।

प्रवेश : यह प्रदेश क्या होता है ?

समकित : क्षेत्र[7] की सबसे छोटी इकाई[8] को प्रदेश कहते हैं यानि कि क्षेत्र का वह सबसे छोटा टुकड़ा[9] जिसका फिरसे[10] टुकड़ा न हो सके। यानि कि सुई की नोंक से भी बहुत ज्यादा छोटा क्षेत्र प्रदेश कहलाता है।

प्रवेश : तो क्या इस लोक (विश्व) में ऐसे असंख्यात प्रदेश हैं ?

1.human-shaped 2.extended 3.integrated 4.uncountable 5.hexagonal 6.fix 7.area 8.unit 9.part 10.further

समकित : हाँ बिल्कुल और प्रत्येक द्रव्य का कुछ न कुछ क्षेत्र जरूर होता है यानि कि हर द्रव्य में कुछ न कुछ प्रदेश जरूर होते हैं। क्योंकि बिना क्षेत्र (प्रदेश) के तो द्रव्य की मौजूदगी[1] ही सिद्ध[2] नहीं होगी। वह एक काल्पनिक[3] वस्तु बन जायेगा। द्रव्य के गुण और पर्यायों की तरह प्रदेश भी द्रव्य का एक आयाम[4] होता है।

इन्हीं आयामों को हम द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव के नाम से जानते हैं।

| | |
|---|---|
| द्रव्य | द्रव्य |
| क्षेत्र | प्रदेश |
| काल | पर्याय |
| भाव | गुण |

प्रवेश : तो कौनसे द्रव्य में कितने प्रदेश होते हैं ?

समकित : जीव द्रव्य लोक-प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है यानि कि लोक में जितने प्रदेश हैं उतने ही जीव में हैं।

प्रवेश : चींटी का शरीर तो इतना छोटा होता है उसमें असंख्यात प्रदेश वाला जीव (आत्मा) कैसे बन जाता है ?

समकित : जीव द्रव्य में एक संकोच-विस्तार नाम की शक्ति पायी जाती है। जिस शक्ति के कारण उसके प्रदेश प्राप्त शरीर के अनुसार संकुचित[5] और विकसित[6] हो जाते हैं। यह संकोच और विस्तार जीव की संकोच-विस्तार नाम की शक्ति (गुण) की ही पर्याय है।

प्रवेश : और पुद्गल द्रव्य ?

समकित : शुद्ध पुद्गल द्रव्य यानि कि एक अविभागी-पुद्गल-परमाणु[7] एक प्रदेशी (एक प्रदेश वाला) होता है लेकिन जब वह दूसरे पुद्गल परमाणु के साथ जुड़कर स्कंध[8] बना लेता है तो बहुप्रदेशी (बहुत प्रदेश वाला) हो जाता है। यह उसकी अशुद्ध-पर्याय[9] है।

1.existence 2.prove 3.imaginary 4.dimension 5.compress 6.decompress 7.indivisible molecule 8.compound 9.impure-state

धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य भी लोक-प्रमाण असंख्यात प्रदेशी हैं। आकाश द्रव्य अनंत प्रदेशी है। काल द्रव्य एक प्रदेशी है। इसलिये काल द्रव्य को अस्तिकाय की श्रेणी[1] से बाहर रखा गया है।

प्रवेश : यह अस्तिकाय क्या होता है ?

समकित : एक से अधिक प्रदेश वाले (बहु प्रदेशी) द्रव्यों को अस्तिकाय कहते हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य बहुप्रदेशी होने से अस्तिकाय कहलाते हैं।

प्रवेश : ओह ! काल द्रव्य एक प्रदेशी है इसलिये वह अस्तिकाय नहीं कहलाता। लेकिन शुद्ध पुद्गल द्रव्य यानि कि अविभागी पुद्गल परमाणु भी तो एक प्रदेशी है ?

समकित : शुद्ध अविभागी पुद्गल परमाणु तो एक प्रदेशी ही है लेकिन स्कंध रूप से बहुप्रदेशी हो जाता है इसलिये उसे उपचार (व्यवहार) से अस्तिकाय की श्रेणी में रखा गया है। इसतरह जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश यह पाँच अस्तिकाय हैं।

प्रवेश : यह तो समझ में आ गया लेकिन मेरे पिछले प्रश्न का उत्तर अभी भी अनुत्तरित[2] है।

समकित : हाँ, मुझे याद है। बस अब हमको यही समझना है कि जब जीव और पुद्गल स्वयं अपनी योग्यता से ही चलते हैं तब धर्म द्रव्य पर तो मात्र उनके चलने में अनुकूल होने का आरोप बस आता है। तो यह आरोप धर्म द्रव्य पर ही क्यों आता है? किसी दूसरे द्रव्य पर क्यों नहीं? सुनो-

अन्य (दूसरे) द्रव्यों पर यह आरोप नहीं आ सकता क्योंकि -

1. सभी जीव, पुद्गल और काल द्रव्य स्वयं आकाश के सीमित-प्रदेशों[3] में रहते हैं लेकिन जीव व पुद्गल का गमन[4] तो पूरे लोकाकाश में होता है। तो फिर अपनी सीमा[5] के बाहर किसी भी दूसरे जीव और पुद्गल के गमन में अनुकूल होने का आरोप उन पर कैसे आये ?

1.category 2.unanswered 3.limited-area 4.motion 5.boundary of existence

2. अधर्म द्रव्य पर चलते हुये जीव और पुद्गल के रुकने[1] (स्थिति) में अनुकूल होने का आरोप आता है तो उनके गमन में अनुकूल होने का आरोप उसपर कैसे आये ?

3. आकाश द्रव्य लोक के बाहर अलोक में भी पाया जाता है लेकिन जीव और पुद्गल लोक की सीमा[2] के अंदर लोकाकाश में ही गमन करते हैं। यदि आकाश द्रव्य पर जीव और पुद्गल के गमन में अनुकूल होने का आरोप आये तो जीव और पुद्गल का लोक के बाहर अलोक में भी गमन सिद्ध[3] हो जायेगा जो कि प्रत्यक्ष-विरुद्ध[4] है।

इसतरह सिर्फ धर्म द्रव्य ही ऐसा है जिस पर यह आरोप[5] व्यवहार से हो सकता है। इसलिये धर्म द्रव्य ही स्वयं अपनी योग्यता[6] से चलते हुये जीव और पुद्गल के गमन में निमित्त कहलाता है। अन्य द्रव्य नहीं। इसी तरह अधर्म, आकाश व काल द्रव्य के संबंध में भी घटा लेना चाहिए।

निश्चय से एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की क्रिया[7] में अनुकूल नहीं है। एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य की क्रिया में अनुकूल कहना व्यवहार है। लेकिन ध्यान रहे ऐसा कहना व्यवहार है लेकिन ऐसा यथार्थ मानना मिथ्यात्व है।

प्रवेश : कृपया **निश्चय-व्यवहार** के स्वरूप को विस्तार से समझा दीजिये।

समकित : आज नहीं कल।

शास्त्र में दो नयों की बात होती है। एक नय तो जैसा स्वरूप है वैसा ही कहता है और दूसरा नय जैसा स्वरूप हो वैसा नहीं कहता, किन्तु निमित्तादि की अपेक्षा से कथन करता है। आत्मा का शरीर है, आत्मा के कर्म हैं, कर्म से विकार होता है- यह कथन व्यवहार का है, इसलिये इसे सत्य नहीं मान लेना... व्यवहार नय स्वद्रव्य-पर द्रव्य को व उनके भावों को व कारण-कार्यादिक को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है...!

**-गुरुदेवश्री के वचनामृत**

1.stoppage 2.boundaries 3.prove 4.non-evident
5.blame 6.ability 7.functioning

# 10

# निश्चय-व्यवहार

समकित : निश्चय-व्यवहार, यह विषय जिनागम का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण[1] विषय है। लेकिन यह विषय जितना ज्यादा महत्वपूर्ण है उतना ही ज्यादा अनसमझा[2] और अनसुलझा[3] है। फिर भी यह एक परम-सत्य[4] है कि इस विषय को समझे बिना जिनागम के गूढ़-रहस्यों[5] को समझ पाना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है।

प्रवेश : ऐसा क्यों ?

समकित : क्योंकि संपूर्ण जिनागम[6] निश्चय-व्यवहार[7] की शैली में ही लिखा गया है।

प्रवेश : ओह !

समकित : तो चलो आज हम इस गूढ़ विषय को अत्यन्त सरलता के साथ समझने का प्रयास करते हैं।

सबसे पहले जिनागम में निश्चय-व्यवहार शब्द का प्रयोग किन-किन संदर्भों[8] में किया जाता है उनको हम निम्न चार्ट के माध्यम से देख लेते हैं:

| संदर्भ | निश्चय | व्यवहार |
|---|---|---|
| वस्तु | ध्रुव-अंश | पर्याय-अंश |
| पर्याय | शुद्ध-अंश | अशुद्ध-अंश |
| ज्ञान | निश्चय-नय | व्यवहार-नय |
| श्रद्धा | निश्चय-दृष्टि | व्यवहार-दृष्टि |
| चारित्र | निश्चय-चारित्र | व्यवहार-चारित्र |
| कथन[9] | यथार्थ-कथन | उपचरित-कथन |

इस चार्ट में हम देख सकते हैं कि:

1.extremely-significant 2.un-understood 3.unsolved 4.supreme-fact
5.metaphysical-secrets 6.jain-scriptures 7.actual-formal 8.contexts 9.narration

1. यदि निश्चय-व्यवहार शब्द का प्रयोग वस्तु के संदर्भ में किया जाये तो वस्तु में जो शुद्ध और शाश्वत गुणों का समूह शुद्ध और शाश्वत ध्रुव-अंश[1] है वह वस्तु का निश्चय कहलाता है और जो क्षणिक और शुद्ध/अशुद्ध पर्याय-अंश[2] है वह वस्तु का व्यवहार कहलाता है। शास्त्रीय भाषा में **इनको अर्थ-नय भी कहते हैं।**

2. यदि हम जीव की एक समय की पर्याय को देखें तो पर्याय में जो शुद्धता का अंश[3] है, वह निश्चय और जो अशुद्धता का अंश है, वह व्यवहार कहलाता है।

3. यदि हम जीव के ज्ञान गुण की एक समय की पर्याय को देखें, तो उस ज्ञान पर्याय का वह अंश जो शाश्वत और शुद्ध ध्रुव-अंश को जानता है वह निश्चय-नय एवं जो अंश क्षणिक और शुद्ध/अशुद्ध पर्याय-अंश को जानता है उसे व्यवहार-नय कहते हैं।

प्रवेश : इसका मतलब यह हुआ कि निश्चय नय और व्यवहार नय ज्ञान पर्याय के अंश हैं ?

समकित : हाँ, यह सम्यक-श्रुतज्ञान पर्याय के अंश हैं। शास्त्रीय भाषा में **इनको ज्ञान-नय कहा जाता है।**

4. यदि हम जीव द्रव्य के श्रद्धा-गुण की एक समय की पर्याय को देखें तो जिस पर्याय ने शाश्वत और शुद्ध ध्रुव-अंश में अपनापन किया है उसे निश्चय-दृष्टि कहते हैं और जिस पर्याय ने क्षणिक और शुद्ध/अशुद्ध पर्याय-अंश में अपनापन किया है उसे व्यवहार-दृष्टि कहते हैं।

प्रवेश : सुना था कि श्रद्धा एकांतिक[4] होती है ? यानि कि जिस समय ध्रुव-अंश में अपनापन करती है उस समय पर्याय-अंश में नहीं कर सकती ?

समकित : बिल्कुल सही सुना है। श्रद्धा सम्यक-एकांतिक होती है । एक ही समय में निश्चय दृष्टि और व्यवहार दृष्टि, दोनों का एक साथ पाया जाना असंभव है। क्योंकि निश्चय दृष्टि वह सम्यकदृष्टि (सम्यकश्रद्धा) है

1.eternal-aspect 2.momentary-aspect 3.fraction 4.unilateral

और व्यवहार दृष्टि वह मिथ्यादृष्टि (मिथ्याश्रद्धा) है।

यानि कि श्रद्धा-गुण की जिस पर्याय ने शाश्वत और शुद्ध ध्रुव-अंश (ध्रुव स्वभाव) में अपनापन किया है, वह क्षणिक और शुद्ध/अशुद्ध पर्याय-अंश में अपनापन नहीं कर सकती। लेकिन अलग-अलग समय में निश्चयदृष्टि (सम्यकदृष्टि) और व्यवहारदृष्टि (मिथ्यादृष्टि) होना संभव[1] है। चार्ट में दोनों संभावनाओं[2] को दर्शाया गया है।

प्रवेश : निश्चयदृष्टि और व्यवहारदृष्टि की तरह ही निश्चय-नय सम्यकज्ञान और व्यवहार-नय मिथ्याज्ञान होता है ?

समकित : नहीं, निश्चय नय और व्यवहार नय दोनों ही सम्यक-श्रुतज्ञान के अंश हैं। ज्ञान, श्रद्धा की तरह सम्यक एकांतिक[3] नहीं होता बल्कि सम्यक अनेकांतिक[4] होता है क्योंकि सम्यकज्ञान का काम है-सबको जानना। इसलिए सम्यक-श्रुतज्ञान, ध्रुव-अंश व पर्याय-अंश, स्व एवं पर सभी को मुख्य-गौण[5] करके जानता है। इसलिये निश्चय नय और व्यवहार नय दोनों ही सम्यक-श्रुतज्ञान के अंश[6] होने से सम्यकज्ञान रूप ही हैं।

लेकिन श्रद्धा का काम है-अपनापन करना इसलिये ध्रुव-अंश में अपनापन करने वाली निश्चय-दृष्टि(श्रद्धा), सम्यकदृष्टि कहलाती है और पर्याय-अंश में अपनापन करने वाली व्यवहार-दृष्टि(श्रद्धा), मिथ्यादृष्टि कहलाती है।

5. अब यदि बात करें जीव के चारित्र गुण की पर्याय की, तो चारित्र गुण की एक समय की पर्याय में जो वीतरागता का अंश[7] है, वह निश्चय-चारित्र कहलाता है और उसके साथ पाया जाने वाले शुभ-राग का अंश वह व्यवहार चारित्र कहलाता है।

6. और अंत में जो जैन आगम के गूढ़ रहस्यों को समझने-समझाने में सबसे ज्यादा उपयोगी[8] हैं, वह हैं-कथन[9] के निश्चय और व्यवहार। ऐसा इसलिये क्योंकि संपूर्ण जिनागम निश्चय-व्यवहार[10] की शैली[11] में ही लिखा गया है।

1.possible 2.possibilities 3.unilateral 4.multilateral 5.prime-subside
6.fractions 7.fraction 8.useful 9.narration 10.actual-formal 11.genre

इसलिये कथन के निश्चय व्यवहार को समझे बिना जिनागम के गूढ़ रहस्यों को समझ पाना असंभव है।

प्रवेश : क्या यही शब्द नय कहलाते हैं ?

समकित : हाँ, **यह कथन के नय ही शब्द-नय हैं।** संपूर्ण जिनागम इन्हीं नयों की भाषा में निबद्ध[1] है।

प्रवेश : कृपया इनका स्वरूप उदाहरण[2] सहित स्पष्ट कीजिये ?

समकित : जो वस्तु जैसी है, उसको वैसा कहना यह निश्चय नय का कथन कहलाता है और जो वस्तु जैसी नहीं है लेकिन संयोग[3], निमित्त-कारण[4] आदि की अपेक्षा उसे वैसा कहना यानि कि किसी को किसी में मिलाकर कहना, किसी का किसी में आरोप करके कहना वह व्यवहार नय का कथन कहलाता है।

जैसे केसर की डिब्बी या घी का घड़ा। यहाँ घड़ा तो वास्तव में मिट्टी का है। इसलिये मिट्टी के घड़े को मिट्टी का घड़ा ही कहना यह निश्चय नय का कथन है।

मिट्‌टी के घड़े को, घड़े में रखे हुये घी का संयोग देखकर, घी का आरोप घड़े पर करके, उसको घी का घड़ा कहना यह व्यवहार नय का कथन है। यानि कि मिट्टी का घड़ा व्यवहार से घी का घड़ा कहने में आता है।

प्रवेश : कहने में आता है-इसका क्या अर्थ[5] है ?

समकित : इसका मतलब यह है कि घड़ा मिट्टी का ही होता है, घी का नहीं। मात्र संयोग[6] की अपेक्षा व्यवहार से घी का घड़ा कहने में आता है। घी का घड़ा कहना व्यवहार नय होने सम्यकज्ञान रूप ही है, लेकिन ऐसा यथार्थ मानना उल्टी-मान्यता होने से मिथ्यात्व (मिथ्यादर्शन) है।

प्रवेश : यह तो हुआ लौकिक[7] उदाहरण। परमार्थ[8] में इसको किसतरह घटायेंगे?

1.written 2.example 3.company 4.formal-causes 5.meaning
6.company 7.worldly 8.spiritual-context

समकित : **संयोग[1] की अपेक्षा-**

जैसे वीतरागता ही वास्तव-में[2] धर्म है । वीतरागता को ही धर्म कहना यह निश्चय नय का कथन है।

जब तक पूर्ण वीतरागता न हो तब तक वीतरागता के साथ भूमिका-योग्य शुभ राग का भी संयोग पाया जाता है। अतः शुभ राग पर वीतरागता का आरोप करके शुभ राग को भी धर्म कह देना यह व्यवहार नय का कथन है।

**निमित्त-कारण[3] की अपेक्षा-**

स्वयं में अपनापन करना (आत्मश्रद्धान) ही वास्तव में सम्यकदर्शन है। अतः आत्मश्रद्धान को ही सम्यकदर्शन कहना यह निश्चय नय का कथन है।

सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के श्रद्धान और नव तत्वों के विकल्पात्मक निर्णय रूप शुभ राग, सम्यकदर्शन (कार्य) तो नहीं लेकिन सम्यकदर्शन (कार्य) में निमित्त-कारण है। लेकिन कारण का कार्य में आरोप करके, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के श्रद्धान और नव तत्वों के विकल्पात्मक निर्णय रूप शुभ राग को ही सम्यकदर्शन कह देना यह व्यवहार नय का कथन है।

ध्यान रहे ऐसा कथन करना (कहना) व्यवहार है लेकिन ऐसा यथार्थ मानना मिथ्यात्व है।

प्रवेश : **स्वयं** में अपनापन करना निश्चय सम्यकदर्शन, **स्वयं** को जानना निश्चय सम्यकज्ञान और **स्वयं** में लीन होना निश्चय सम्यकचारित्र है और इनके साथ पाया जानेवाला तीनप्रकार का शुभ राग व तत्संबंधी क्रिया (1. सच्चे देवादि का श्रद्धान 2. सच्चे शास्त्रों का स्वाध्याय 3. सच्चा बाह्य आचरण) व्यवहार से सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र कहने में आता है, यह बात तो समझ में आ गयी लेकिन यहाँ **स्वयं** शब्द का क्या अर्थ है ?

1.company 2.actually 3.formal-cause

समकित : यह बहुत अच्छा प्रश्न पूछा। **स्वयं** शब्द का स्वरूप समझे बिना हम कैसे **स्वयं** को जानेंगे, **स्वयं** में अपनापन करेंगे व **स्वयं** में लीन हो सकेंगे ? हमारा अगला विषय ज्ञान का ज्ञेय, श्रद्धा का श्रद्धेय और ध्यान का ध्येय हम **स्वयं** ही हैं।

पर्याय पर दृष्टि रखने से चैतन्य प्रगट नहीं होता, द्रव्यदृष्टि करने से ही चैतन्य प्रगट होता है। द्रव्य में अनंत सामर्थ्य भरा है, उस द्रव्य पर दृष्टि लगाओ। निगोद से लेकर सिद्ध तक की कोई भी पर्याय शुद्ध दृष्टि का विषय नहीं है। साधक दशा भी शुद्ध दृष्टि के विषय भूत मूल स्वभाव में नहीं है। द्रव्य दृष्टि करने से ही आगे बढ़ा जा सकता है, शुद्ध पर्याय की दृष्टि से भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। द्रव्य दृष्टि में मात्र शद्ध अखण्ड द्रव्य सामान्य का ही स्वीकार होता है।

जिसे द्रव्य दृष्टि प्रगट हुई उसकी दृष्टि अब चैतन्य के तल पर ही लगी है। उसमें परिणति एक मेक हो गई है। चैतन्य-तल में ही सहज दृष्टि है। स्वानुभूति के काल में य बाहर उपयोग हो तब भी तल पर से दृष्टि नहीं हटती, दृष्टि बाहर जाती ही नहीं । ज्ञानी चैतन्य के पाताल में पहुँच गये हैं गहरी-गहरी गुफा में, बहुत गहराई तक पहुँच गये हैं साधना की सहज दशा साधी हुई है।

द्रव्य दृष्टि शुद्ध अंतःतत्व का ही अवलम्बन करती है। निर्मल पर्याय भी बहिःतत्व है, उसका अवलम्बन द्रव्य दृष्टि में नहीं है।

शुद्ध द्रव्यस्वभावकी दृष्टि करके तथा अशुद्धता को ख्याल में रखकर तू पुरूषार्थ करना, तो मोक्ष प्राप्त होगा।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

राग की बात तो कहाँ रह गई ? परन्तु (जब) पर्याय की ओर का लक्ष छोड़ता है तब अंतर्मुख हुआ जाता है। **-द्रव्य दृष्टि जिनेश्वर**

# 11

# ज्ञेय-श्रद्धेय-ध्येय

## (दृष्टि का विषय)

ज्ञान, श्रद्धा और चारित्र जीव के गुण होने के कारण अनादिकाल से ही जीव के इन गुणों का कार्य (परिणमन) प्रतिसमय[1] ही हो रहा है। यानि कि जीव निरंतर (लगातार) ही किसी न किसी पदार्थ को अपने ज्ञान का ज्ञेय, श्रद्धा का श्रद्धेय और ध्यान का ध्येय बना रहा है। लेकिन उसके ज्ञान के ज्ञेय, श्रद्धा के श्रद्धेय और ध्यान के ध्येय स्वयं से भिन्न (जुदा) दूसरे पदार्थ ही होने से यह जीव निरंतर आकुलित/दुःखी हो रहा है। जिस कारण सच्चे सुख की झलक[2] भी इस जीव को आज तक प्राप्त[3] नहीं हो सकी है।

यदि इस जीव को आकुलता/दुःख का अभाव और सच्चे सुख की प्राप्ति करनी है तो उसे अपने ज्ञान का ज्ञेय, श्रद्धा का श्रद्धेय और ध्यान का ध्येय दूसरों से भिन्न स्वयं को ही बनाना होगा। यह हम समझ ही चुके हैं।

लेकिन यहाँ **स्वयं** शब्द किसके लिये प्रयोग किया जा रहा है यह प्रश्न अभी भी अनुत्तरित[4] है।

प्रवेश : वही तो।

समकित : इस प्रश्न का उत्तर है कि **स्वयं** शब्द का अर्थ है- **जीव तत्व** यानि कि **आत्मा**[5]। मतलब आत्मा को ज्ञान का ज्ञेय, श्रद्धा का श्रद्धेय और ध्यान का ध्येय बनाने से ही आकुलता/दुःख का नाश और निराकुलता/सच्चे सुख की प्राप्ति होती है।

प्रवेश : आत्मा शब्द में आत्मा की कौन-कौन सी चीजें शामिल हैं ? स्त्री, पुत्र, मकान या शरीर या मोह, राग-द्वेष अथवा ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुण (भेद)। क्योंकि ये सब आत्मा के ही तो हैं ?

समकित : इनमें से कुछ भी नहीं। क्योंकि यह सब किसी न किसी अपेक्षा[6] से

1.continuously 2.glance 3.achieve 4.unanswered 5.soul 6.perspective

आत्मा के हैं लेकिन स्वयं आत्मा नहीं।

प्रवेश : किसी न किसी अपेक्षा मतलब ?

समकित : यह सब व्यवहार-नय की अपेक्षा से आत्मा के हैं । यानि कि व्यवहार नय से आत्मा इनका कर्ता[1], भोक्ता[2], ज्ञाता[3], दृष्टा[4] कहने में आता है और यह व्यवहार नय के विषय हमारे ज्ञान के ज्ञेय, श्रद्धा के श्रद्धेय और ध्यान के ध्येय **शुद्ध-आत्मा** की सीमा[5] से बाहर हैं क्योंकि इनके ज्ञान, श्रद्धान और ध्यान से आकुलता/दुःख ही उत्पन्न होता है।

प्रवेश : कृपया विस्तार से समझाईये ।

समकित : उसके लिये हम निम्न चार्ट पर नजर डालेंगेः

| क्र. | व्यवहार नय | कर्ता, भोक्ता, ज्ञाता, दृष्टा |
|---|---|---|
| 1. | उपचरित असद्भूत | स्त्री, पुत्र, मकान, दुकान आदि |
| 2. | अनुपचरित असद्भूत | शरीर, द्रव्यकर्म आदि |
| 3. | उपचरित सद्भूत | मोह, राग-द्वेष आदि |
| 4. | अनुपचरित सद्भूत | सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र, गुणभेद |

इस चार्ट में हमने देखा कि -

1. **उपचरित असद्भूत व्यवहार नय से** स्त्री, पुत्र, मकान, दुकान, रूपया, पैसा आदि आत्मा के हैं यानि कि इस नय से आत्मा स्त्री, पुत्र, मकान आदि का कर्ता, भोक्ता, ज्ञाता, दृष्टा कहने में आता है।

प्रवेश : उपचरित असद्भूत व्यवहार नय, यह नाम याद करना तो बहुत कठिन है ?

समकित : इन शब्दों का अर्थ समझने पर नाम सहज ही याद हो जायेगा।

उपचरित का अर्थ होता है- दूर के और असद्भूत का अर्थ है- आत्मा में इनका सद्भाव[6] नहीं है। यानि कि स्त्री, पुत्र, मकान आदि आत्मा से दूर (अलग क्षेत्र में) रहते हैं, शरीर की तरह यह आत्मा के साथ एक

1.doer 2.consumer 3.knower 4.perceptor 5.boundary 6.existence

क्षेत्र में नहीं रहते और आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय में इनका सद्भाव[1] नहीं है।

2. **अनुपचरित असद्भूत व्यवहार नय से** शारीर आदि आत्मा के हैं यानि कि इस नय से आत्मा शरीर, द्रव्य-कर्म आदि का कर्ता, भोक्ता, ज्ञाता, दृष्टा कहने में आता है।

   अनुपचरित का अर्थ होता है- पास के (एक क्षेत्र में रहने वाले) और असद्भूत का अर्थ है- आत्मा में इनका सद्भाव नहीं है। यानि कि शरीर आदि आत्मा के पास के, यानि कि आत्मा के साथ एक क्षेत्र में रहने वाले हैं लेकिन इनका भी आत्मा के द्रव्य-गुण-पर्याय में सद्भाव नहीं है।

3. **उपचरित सद्भूत व्यवहार नय से** मोह, राग-द्वेष (मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र) आत्मा के हैं यानि कि इस नय से आत्मा मोह, राग-द्वेष आदि का कर्ता, भोक्ता, ज्ञाता, दृष्टा है।

   यहाँ उपचरित का अर्थ है- दूर के व सद्भूत का अर्थ है- आत्मा में इनका सद्भाव है। यानि कि मोह, राग-द्वेष आदि विकार आत्मा के मूल-स्वभाव[2] से दूर के हैं लेकिन आत्मा की एक समय की पर्याय[3] में इनका सद्भाव होता है।

4. **अनुपचरित सद्भूत व्यवहार नय से** सम्यकदर्शन-ज्ञानि-चारित्र आदि शुद्ध पर्यायें व ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुण-भेद[4] आत्मा के हैं यानि कि इस नय से आत्मा इनका कर्ता, भोक्ता, ज्ञाता, दृष्टा है।

   यहाँ अनुपचरित का अर्थ है-पास के और सद्भूत का अर्थ है आत्मा में इनका सद्भाव है। सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा के पास के यानि कि स्वभाव-भाव हैं और आत्मा की एक समय की पर्याय में इनका सद्भाव होता है।

   उसी तरह ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि गुण-भेद स्वयं ही आत्मा के स्वभाव हैं और आत्मा में इनका सद्भाव है।

1.existence 2.actual-nature 3.state 4.attributive-distinctions

प्रवेश : स्त्री, पुत्र, मकान, दुकान, शरीर आदि आत्मा से भिन्न होने से और मोह, राग-द्वेष आदि आत्मा की अशुद्ध-पर्याय[1] होने से उनको व्यवहार नय से आत्मा का कहकर उनको ज्ञेय, श्रद्धेय और ध्येय शुद्धात्मा की सीमा से बाहर रखना तो समझ में आता है लेकिन सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि शुद्ध-पर्यायों[2] को भी व्यवहार नय से आत्मा का कहकर उन्हें ज्ञेय, श्रद्धेय और ध्येय शुद्धात्मा की सीमा से बाहर रखना कहाँ तक उचित (ठीक) है ?

समकित : सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र भले ही आत्मा के गुणों की शुद्ध-पर्याय हैं लेकिन हैं तो आखिर पर्याय ही और पर्याय एक समय की यानि कि क्षणिक[3] होने से ज्ञेय, श्रद्धेय, और ध्येय शुद्धात्मा की सीमा से बाहर के हैं।

प्रवेश : क्यों ?

समकित : क्योंकि क्षणिक/अस्थिर[4] वस्तु को ज्ञान का ज्ञेय, श्रद्धा का श्रद्धेय और ध्यान का ध्येय बनाने से आकुलता (दुःख) होती है।

प्रवेश : जैसे ?

समकित : जैसे एक व्यक्ति बस के अंदर स्थिर[5] पोल पकड़कर और दूसरा अस्थिर[6] हेंगर (हेंडल) को पकड़कर खड़ा होता है। ड्रायवर द्वारा अचानक ब्रेक लगाये जाने पर जिस व्यक्ति ने स्थिर पोल का सहारा लिया है वह गिरने के दुःख से बच जाता है लेकिन जिस व्यक्ति ने अस्थिर हेंगर पकड़ा हुआ है वह गिरकर दुःख पाता है। कहने का मतलब यह है कि जो स्वयं अस्थिर है वह दूसरों को क्या सहारा देंगे ?

प्रवेश : भले ही सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र क्षणिक (अस्थिर) पर्याय होने से ज्ञेय, श्रद्धेय और ध्येय शुद्धात्मा की सीमा से बाहर हैं। लेकिन ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि अनंत गुण तो शास्वत और शुद्ध हैं, आत्मा के साथ त्रिकाल (हमेंशा/स्थिर) रहने वाले हैं। इन अनंत गुणों का समूह ही तो आत्मा है फिर इन गुणों के भेद को ज्ञेय, श्रद्धेय और ध्येय शुद्धात्मा की सीमा से बाहर क्यों रखा गया है ?

---

1.impure-states 2.pure-states3.momentary 4.momentary/unstable
5.stable 6.unstable

समकित : हाँ, आत्मा के ज्ञान-दर्शन आदि अनंत गुण शाश्वत व शुद्ध हैं और शुद्ध आत्मा के साथ त्रिकाल (हमेंशा/स्थिर) रहेने वाले हैं। शुद्ध-आत्मा, ज्ञान-दर्शन आदि अनंत गुणों का ही समूह है यानि कि शुद्ध-आत्मा में यह अनंत गुण मौजूद हैं लेकिन (दृष्टि के विषय) शुद्ध-आत्मा में इन अनंत गुणों का भेद मौजूद नहीं है। शुद्ध-आत्मा इन अनंत गुणों का एक अखंड-पिंड[1] है। इसीलिये इन गुणों का भेद भी व्यवहार नय का विषय होने से शुद्धात्मा की सीमा से बाहर है। क्योंकि किसी भी प्रकार के भेद आदि को ज्ञेय, श्रद्धेय और ध्येय बनाने से भी आकुलता (दुःख) ही उत्पन्न होती है।

प्रवेश : तो फिर वह शुद्धात्मा कौन है जो ज्ञेय, श्रद्धेय और ध्येय है ? जिसके ज्ञान, श्रद्धान और ध्यान से आकुलता(दुःख)का नाश और निराकुलता (सच्चे सुख) की प्राप्ति होती है ?

समकित : स्त्री, पुत्र, मकान, शरीर आदि से भिन्न, मोह-राग-द्वेष, सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि पर्याय से अन्य और ज्ञान-दर्शन आदि गुणभेद से पार, परमशुद्ध निश्चय नय (शुद्धनय) का विषय, अनंत शुद्ध और शाश्वत गुणों का एक अखंड-पिंड, त्रिकाली-ध्रुव (हमेशा एक जैसा रहने वाला) भगवान-आत्मा ही **शुद्ध-आत्मा** है, जो ज्ञान का ज्ञेय, श्रद्धा का श्रद्धेय और ध्यान का ध्येय है यानि कि **दृष्टि का विषय** है। जिसके ज्ञान (सम्यकज्ञान), श्रद्धान (सम्यकदर्शन) और ध्यान (सम्यकचारित्र) से आकुलता (दुःखों) का नाश और निराकुलता (सच्चे सुख) की प्राप्ति होती है, यानि कि **आत्मा को पर द्रव्य से भिन्न, पर्यायों से अन्य व गुणभेद से पार जानने, मानने व जानते-मानते रहने से ही निराकुलता की प्राप्ति होती है।**

प्रवेश : यदि ऐसा है तो फिर व्यवहार नय के विषयभूत आत्मा की बात शास्त्रों में की ही क्यों ? बस एक परमशुद्ध निश्चय नय (शुद्धनय) के विषयभूत[2] त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा (शुद्धात्मा) की ही बात शास्त्रों में करनी चाहिये थी ?

समकित : इस प्रश्न का उत्तर तुमको अगले पाठ में मिल जायेगा।

1.integrated-mass 2.subject

## 12

# व्यवहार नय की उपयोगिता

समकित : पिछला पाठ पढ़कर हमारे मन में यह शंका उठना स्वाभाविक है कि यदि सिर्फ परमशुद्ध निश्चय नय के विषयभूत त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा (शुद्धात्मा) के ज्ञान, श्रद्धान और ध्यान से ही आकुलता (दुःख) मिटकर निराकुलता (सच्चे सुख) की प्राप्ति होती है तो फिर व्यवहार नय के विषयभूत आत्मा की बात शास्त्रों में की ही क्यों ? सिर्फ परमशुद्ध निश्चय नय (शुद्धनय) के विषयभूत त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा (शुद्धात्मा) की ही बात शास्त्रों में करनी चाहिये थी।

लेकिन ऐसा नहीं है, शास्त्र की कोई भी बात व्यर्थ-में[1] नहीं होती। कुछ न कुछ प्रयोजन[2] सहित ही होती है। व्यवहार नय का भी अपना एक प्रयोजन है, उपयोगिता[3] है।

प्रवेश : कैसे ?

समकित : जिस व्यक्ति ने आजतक ज्ञान आदि अनंत गुणों के एक अखंड-पिंड त्रिकाली-ध्रुव भगवान आत्मा (शुद्धात्मा) को ज्ञेय, श्रद्धेय और ध्येय नहीं बनाया लेकिन यह जानने के बाद कि ऐसे शुद्धात्मा को ज्ञेय, श्रद्धेय और ध्येय बनाने से ही दुःख मिटकर, सच्चे सुख की प्राप्ति होती है, वह पूरी दूनिया के चप्पे-चप्पे में उस शुद्धात्मा को खोज[4] रहा था। तब पहले प्रकार के व्यवहार-नय ने उसकी खोज को स्त्री, पुत्र, मकान आदि तक सीमित[5] कर दिया कि जो स्त्री, पुत्र, मकान, दुकान आदि के बीच में रहता है वह आत्मा है।

उसके मन में यह प्रश्न उठने पर कि इन सबमें से कौन आत्मा है तब दूसरे प्रकार के व्यवहार नय ने उसकी खोज को और अधिक सीमित कर शरीर तक ला दिया।

फिरसे प्रश्न उठने पर कि शरीर का कौनसा अंग[6] आत्मा है तब तीसरे प्रकार के व्यवहार नय ने उसकी खोज को और सीमित करते हुये कहा कि यह मोह, राग-द्वेष के परिणामों[7] को करने वाला ही आत्मा है।

---

1.purposeless 2.purpose 3.utility 4.search 5.limited 6.body-part 7.transformations

ऐसे मोह, राग-द्वेष से मलिन (मैले) आत्मा को पाकर उदास व दुःखी होने पर उससे चौथे प्रकार के व्यवहार नय ने कहा कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र-सुख आदि अनंत शुद्ध व शाश्वत गुणों वाला आत्मा है इसप्रकार उसको अनंत गुणों के भेदों के द्वारा अभेद-अखंड आत्मा का स्वरूप समझाकर, शुद्ध आत्मा की महिमा[1] बतलाकर, शुद्धात्मा को ज्ञेय, श्रद्धेय और ध्येय बनाने की अतिशय रुचि[2] उत्पन्न तो करा दी। लेकिन ऐसे गुणभेद सहित आत्मा का ज्ञान, श्रद्धान और ध्यान करने से उसका दुःख (आकुलता) नहीं मिटा, उसको सच्चे सुख की प्राप्ति नहीं हुई तब फिर उसको बताया गया कि दुःख मिटाने व सच्चे सुख को पाने के लिए तो परमशुद्ध निश्चय नय के विषय त्रिकाली ध्रुव भगवान आत्मा (शुद्धात्मा) का ही ज्ञान, श्रद्धान व ध्यान करना होगा। इस प्रकार व्यवहार नय की भी एक सीमा[3] तक उपयोगिता[4] है। लेकिन उस सीमा के बाद वह अनुपयोगी[5] हो जाता है। जैसे प्लेन को आकाश में उड़ने के लिये रन-वे पर दौड़ना जरूरी तो है लेकिन एक (समय) सीमा तक। उसके बाद तो उस प्लेन को आकाश में उड़ने के लिए रन-वे छोड़ना ही होगा। जैसे चाय बनाने के लिये दूध में चायपत्ती डालना जरूरी है लेकिन चाय पीने के लिये चायपत्ती को छान[6] कर अलग करना भी जरूरी है।

प्रवेश : कृपया इस पूरे प्रकरण[7] को किसी उदाहरण[8] के द्वारा समझाईये ?

समकित : तुम तो जानते ही हो हर घर में एक चाय-प्रेमी व्यक्ति जरूर होता है। हमेंशा उस चाय-प्रेमी की यही कोशिश रहती है कि घर के एक और व्यक्ति को चाय की लत[9] लग जाये ताकि उसको एक साथी मिल जाये क्योंकि उसको लगता है-एक से भले दो। लेकिन दूसरे व्यक्ति ने न तो कभी चाय पी हो और न ही पीना चाहता हो और यह चाय-प्रेमी उसको चाय पीने की रुचि लगाना चाहता है तो वह उससे कहता है कि इस चाय में दार्जीलिंग के बागानों की चायपत्ती, इलायची, केसर आदि मसाले, दूध, शक्कर आदि डाला हुआ है, इसको पीने से दिल और दिमाग तरो-ताजा[10] हो जाते हैं आदि-आदि। इसप्रकार वह चायप्रेमी चाय में डली हुई अनेक सामग्रियों[11] और उसकी खूबियाँ बताकर सामने वाले व्यक्ति को चाय पीने की रुचि उत्पन्न कराता है।

1.glory 2.interest 3.limit 4.utility 5.useless 6.filter 7.topic 8.example 9.habbit 10.fresh 11.ingrediants

लेकिन रुचि लग जाने के बाद जब वह सामने वाला व्यक्ति चाय पीयेगा तब चाय का असली मजा लेने कि लिये उसको चाय में पड़ी एक-एक सामग्री नहीं बल्कि अखण्ड[1] चाय का स्वाद लेना होगा। एक-एक सामग्री (भेद) के स्वाद पर ज्ञान व ध्यान केन्द्रित[2] करने से चाय का असली मजा नहीं आ सकता।

उसीप्रकार जब तक अखण्ड-अभेद शुद्ध आत्मा का अनुभव (ज्ञान-श्रद्धान-लीनता) न हो तब तक अनेक खण्ड-खण्ड यानि कि गुणभेद आदि के द्वारा शुद्धात्मा का स्वरूप समझकर विचारकर, अखंड अभेद शुद्ध आत्मा की महिमा लानी चाहिये, उसकी अतिशय रुचि लगानी चाहिये क्योंकि रुचि पलटे बिना उपयोग (ज्ञान-ध्यान) नहीं पलटता।

प्रवेश : मतलब ?

समकित : इसका मतलब यह हुआ कि अखंड-अभेद शुद्धात्मा का स्वरूप समझने-समझाने के लिये, उसकी महिमा लाने के लिये, उसकी अतिशय रुचि लगाने के लिये अखण्ड-अभेद वस्तु के स्वरूप का खण्ड-खण्ड और भेदों द्वारा कथन करने वाला व्यवहार नय प्रयोजनवान (उपयोगी) है।

लेकिन व्यवहार नय के कथन के माध्यम से अखंड-अभेद शुद्धात्मा का स्वरूप समझकर, उसकी महिमा ख्याल में आकर, उसकी अतिशय रुचि लगने के बाद उस अखंड-अभेद शुद्धात्मा का अनुभव (ज्ञान-श्रद्धान-लीनता) करने के लिये एकमात्र परमशुद्ध निश्चय नय (शुद्धनय) ही प्रयोजनवान (उपयोगी) है, जो कि **आत्मा को पर द्रव्य से भिन्न, पर्यायों से अन्य व गुणभेद से पार जानता है।**

प्रवेश : ओह ! अब समझमें आया।

समकित : इसीलिये हमें जब तक अपने लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाये तब तक दोनों नयों को नहीं छोड़ना चाहिए क्योंकि यदि व्यवहार नय को छोड़ोगे तो भगवान के उपदेश का प्रचार-प्रसार अर्थात उसको समझने- समझाने का कार्य असंभव हो जायेगा और यदि निश्चय नय को छोड़ोगे तो आत्मतत्व (तत्वज्ञान) की उपलब्धि[3] असंभव हो जायेगी।

1.whole/integrated 2.focus 3.achievement

प्रवेश : तत्वज्ञान का अर्थ सिर्फ एक आत्म-तत्व का ज्ञान है ? हमने तो सुना था तत्व (पदार्थ) नौ होते हैं ?

समकित : एक ही बात है।

प्रवेश : कैसे ?

समकित : हमारा अगला विषय यही है।

हाथी के दाँत दिखाने के अलग और चबाने के अलग। दिखाने के दाँत बड़े होते हैं और वे चित्र-कारी में तथा शोभा बढ़ाने में काम आते हैं चबाने के दाँत छोटे होते हैं और वे खाने के काम आते हैं। शास्त्र तो 'दादाजी' की चिट्ठी जैसे हैं, उनका आशय समझने की कुशलता प्राप्त करनी चाहिये। शास्त्र में व्यवहार के कथन अनेक होते हैं परन्तु जितने व्यवहार के और निमित्त के कथन हैं वे अपने गुण (प्रगट करने) में काम नहीं आते किन्तु परमार्थ को समझाने में काम आते हैं। आत्मा परमार्थतः पर से भिन्न हैं उसकी श्रद्धा करके, उसमें लीन हो तो आत्मा को मस्ती चढ़े। जो परमार्थ है वह व्यवहार में-समझने में काम नहीं आता, किन्तु उसके द्वारा आत्मा को शान्ति होती है। यह प्रगट नय-विभाग है।

जिस प्रकार लोक-व्यवहार में ननिहाल के गाँव के किसी विशेष व्यक्ति को 'मामा' कहते हैं परन्तु वह सच्चा मामा नहीं है, कथन मात्र 'कहने का मामा' है उसी प्रकार जिसे आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान एवं रामणतारूप निश्चय 'धर्म' प्रगट हुआ हो उस जीव के दया-दानादि शुभराग को 'कहने का मामा' की भाँति व्यवहार से 'धर्म' कहा जाता है। इस प्रकार 'धर्म' के कथन के निश्चय-व्यवहार उन दोनों पक्ष को जानना उसका नाम दोनों नयों का 'ग्रहण करना' कहा है। वहाँ व्यवहार को अंगीकार करने की बात नहीं है।...

**-गुरुदेवश्री के वचनामृत**

ज्ञानी द्रव्य के आलम्बन के बल से, ज्ञान में निश्चय-व्यवहार की मैत्री पूर्वक, आगे बढ़ता जाता है और चैतन्य स्वयं अपनी अद्भुतता में समा जाता है।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

# 1

# प्रयोजनभूत तत्व (पदार्थ)

समकित : अब तक हमने देखा कि स्वयं में अपनापन यानि कि आत्मश्रद्धान[1] ही असली सम्यकदर्शन है जो कि आत्मा के स्वरूप के यथार्थ निर्णय बिना प्राप्त होना असंभव[2] है। लेकिन यहाँ एक प्रश्न हमारे सामने खड़ा होता है कि यदि सिर्फ आत्मा का श्रद्धान ही सम्यक दर्शन है तो फिर सम्यकदर्शन के लिये प्रयोजनभूत तत्वों के यथार्थ-निर्णय[3] करने की बात शास्त्रों में क्यों आती है ? सिर्फ जीव-तत्व (आत्मा) के यथार्थ निर्णय का ही उपदेश क्यों नहीं दिया गया ?

इस सवाल का जवाब यह है कि प्रयोजनभूत तत्वों का यथार्थ निर्णय कहो या जीव तत्व (आत्मा) का यथार्थ निर्णय कहो एक ही बात है।

प्रवेश : लेकिन यह दोनों तो अलग-अलग बातें हैं ?

समकित : हमको ये दोनों बातें अलग-अलग लगती हैं क्योंकि हम प्रयोजनभूत तत्वों के निर्णय का मतलब सही तरह से नहीं समझ पाते।

प्रयोजनभूत तत्वों के यथार्थ निर्णय का मतलब यही निर्णय करना है कि मैं जीव-तत्व (आत्मा) हूँ और अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पाप व पुण्य तत्व मैं नहीं हूँ।

प्रवेश : ओह !

समकित : हाँ, क्योंकि यथार्थ शब्द का अर्थ होता है- जैसा है वैसा। और यथार्थ-निर्णय का अर्थ होता है-जो जैसा है उसे वैसा ही जानना और मानना।

प्रवेश : अच्छा ! तो प्रयोजनभूत तत्वों के यथार्थ-निर्णय का अर्थ हो जायेगा कि प्रयोजनभूत तत्वों में जो तत्व जैसा है, उसको वैसा ही जानना और मानना।

---

1.self belief 2.impossible 3.correct-understanding

समकित : हाँ ! जो मैं हूँ, उसको मैं रूप जानना व मानना और जो मैं नहीं हूँ, उसको यह मैं नहीं ऐसा जानना व मानना यानि जीव-तत्व (आत्मा) मैं हूँ और अजीव आदि मैं नहीं ऐसा जानना व मानना।

इसी बात को अस्ति-से[1] कहें तो जीव तत्व का यथार्थ निर्णय व नास्ति-से[2] कहें तो अजीव आदि तत्वों का यथार्थ-निर्णय एवं अस्ति-नास्ति से कहें तो नव-तत्वों का यथार्थ-निर्णय कहने में आता है।

प्रवेश : भाईश्री ! प्रयोजनभूत तत्व शब्द का क्या मतलब है ?

समकित : तद्-भाव सो तत्व। यानि कि जिस पदार्थ का जो भाव (स्वरूप) है, वही उसका तत्व है यानि कि पदार्थ का स्वरूप ही तत्व है।

वैसे तो दुनिया में अनंत तत्व हैं यानि कि अनंत पदार्थ अपने-अपने स्वरूप (स्वभाव) सहित मौजूद हैं लेकिन जब अध्यात्मिक[3] क्षेत्र में तत्वों की चर्चा की जाती है तो यहाँ तत्व का अर्थ होता है-प्रयोजनभूत तत्व। यानि कि ऐसे तत्व जिनके यथार्थ-निर्णय बिना हमारे प्रयोजन[4] की सिद्धि[5] नहीं हो सकती।

प्रवेश : भाईश्री कौनसा प्रयोजन ?

समकित : वही जो संसार के सभी जीवों का एक-मात्र प्रयोजन है- सुख की प्राप्ति और दुःखों से मुक्ति।

प्रवेश : इसका मतलब यह हुआ कि यदि हमको सुख चाहिए, तो प्रयोजनभूत तत्वों का यथार्थ-निर्णय करना होगा ?

समकित : हाँ बिल्कुल ! क्योंकि पूर्ण सुख की प्राप्ति मोक्ष के बिना असंभव है और मोक्ष महल की पहली-सीढ़ी[6] सम्यकदर्शन है और सम्यकदर्शन प्रयोजनभूत तत्वों के यथार्थ-निर्णय बिना असंभव है।

प्रवेश : क्या यह जीव, अजीव आदि ही प्रयोजनभूत तत्व हैं ?

समकित : हाँ, तत्वार्थ-सूत्र आदि ग्रंथों में सात प्रयोजनभूत तत्व बतलाये हैंः

1.positively 2.negatively 3.spiritual 4.purpose 5.accomplishment 6.first-step

1. जीव 2. अजीव 3. आश्रव 4. बंध 5. संवर 6. निर्जरा 7. मोक्ष

इन सात-तत्वों में पाप, पुण्य को और जोड़ देने पर नव-तत्व या नव-पदार्थ हो जाते हैं।

प्रवेश : मतलब ?

समकित : पुण्य-पाप, आश्रव-बंध तत्व के ही भेद हैं, इसलिये संक्षेप[1] में सात-तत्व कहते हैं और विस्तार[2] में नव-तत्व या नव-पदार्थ।

प्रवेश : भाईश्री ! ये प्रयोजनभूत तत्व, द्रव्य हैं या गुण हैं या पर्याय हैं ?

समकित : इनमें से पहले दो, जीव और अजीव तत्व तो द्रव्यरूप (मूल) तत्व हैं बाकी-के[3] तत्व, जीव व अजीव (पुद्गल) की पर्यायरूप तत्व हैं जो कि निम्न चार्ट में दर्शाया गया है:

| द्रव्य रूप तत्व | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | जीव तत्व | | |
| 2. | अजीव तत्व | | |
| पर्याय रूप तत्व | | जीव की पर्याय | अजीव (पुद्गल) की पर्याय |
| 3. | आश्रव तत्व | भाव आश्रव | द्रव्य आश्रव |
| 4. | बंध तत्व | भाव बंध | द्रव्य बंध |
| 5. | संवर तत्व | भाव संवर | द्रव्य संवर |
| 6. | निर्जरा तत्व | भाव निर्जरा | द्रव्य निर्जरा |
| 7. | मोक्ष तत्व | भाव मोक्ष | द्रव्य मोक्ष |
| 8. | पाप तत्व | भाव पाप | द्रव्य पाप |
| 9. | पुण्य तत्व | भाव पुण्य | द्रव्य पुण्य |
| | | परस्पर[4] निमित्त⟷नैमित्तिक संबंध | |

प्रवेश : जीव-तत्व मतलब ?

समकित : जीव तत्वः जिसमें मेरे ज्ञान-दर्शन आदि अनंत गुण मौजूद[5] हैं, ऐसा मैं स्वयं ही जीव-तत्व हूँ।

1.Brief 2.detail 3.remaining 4.mutual 5.present

प्रवेश : और अजीव-तत्व ?

समकित : अजीव तत्वः मुझसे जुदा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल द्रव्य अजीव-तत्व हैं।

प्रवेश : जीव-तत्व और अजीव-तत्व यह दो तो द्रव्य रूप तत्व हो गये। अब पर्यायरूप तत्वों के बारे में बताईये न ?

समकित : जैसा कि हमने चार्ट में देखा कि आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पाप व पुण्य तत्व पर्याय रूप तत्व हैं और यह सभी जीव और अजीव (पुद्गल) की पर्यायें हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! थोड़ा विस्तार[1] से बताईये न ?

समकित : ठीक है ! एक-एक करके बताता हूँ।

1. आश्रव तत्वः जीव की पर्याय में मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र (मोह, राग-द्वेष) रूप अशुद्धि[2] का आना (उत्पन्न होना) भाव-आश्रव है । वहीं द्रव्य-कर्मों (पुद्गल की पर्याय) का आना द्रव्य-आश्रव है। यह आश्रव ही बंध के कारण हैं।

2. बंध तत्वः जीव की पर्याय में अशुद्धि का बना रहना भाव-बंध है। वहीं द्रव्य-कर्मों का जीव के साथ एक-क्षेत्र[3] में बना रहना द्रव्य-बंध है।

3. संवर तत्वः जीव की पर्याय में सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप शुद्धि[4] की उत्पत्ति[5] यानि कि मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप अशुद्धि आना रुक जाना (उत्पन्न न होना) भाव-संवर है । वहीं द्रव्य कर्मों का आना रुक जाना द्रव्य-संवर है।

प्रवेश : इसका मतलब है कि चौथे गुणस्थान में सम्यकदर्शन प्रगट[6] होने से संवर प्रगट हो जाता है ?

समकित : हाँ, बिल्कुल !

1.detail 2.impurity 3.common-Space 4.purity 5.occurance 6.occur

4. निर्जरा तत्व : जीव की पर्याय में शुद्धि की वृद्धि[1] और अशुद्धि की आंशिक-हानि[2] होते जाना भाव-निर्जरा है। वहीं द्रव्य-कर्मों की आंशिक हानि होते जाना द्रव्य-निर्जरा है।

5. मोक्ष तत्वः जीव की पर्याय में शुद्धि की पूर्णता यानि कि अशुद्धि का सर्वथा-नाश[3] होना भाव-मोक्ष है। वहीं द्रव्य-कर्मों का सर्वथा नाश होना द्रव्य-मोक्ष है।

प्रवेश : भाईश्री ! आपने तो मोक्ष ही करा दिया लेकिन पाप-पुण्य तो बाकी रह गये ? हमने तो सुना था कि पाप-पुण्य दोनों का नाश होने पर ही जीव मोक्ष जाता है ?

समकित : हा...हा...! तुमने एकदम सही सुना है। आश्रव-बंध (अशुद्धि) का सर्वथा नाश होने से पाप-पुण्य का भी नाश हो गाया क्योंकि पाप-पुण्य तो आश्रव-बंध के ही तो भेद[4] हैं, इसलिये तो नव-तत्व संक्षेप में सात-तत्व कहे जाते हैं।

प्रवेश : पाप-पुण्य तत्व आश्रव-बंध तत्व के भेद किस तरह हैं ?

समकित : जैसा कि हमने देखा कि भाव-आश्रव का अर्थ है-अशुद्धि की उत्पत्ति। और भाव-बंध का अर्थ है- अशुद्धि का बना रहना। अशुद्धि मतलब मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र यानि कि मोह, राग-द्वेष। इनमे से मोह, अशुभ-राग व द्वेष, पाप-भाव हैं और शुभ-राग, पुण्य-भाव है।

प्रवेश : तो क्या पाप-पुण्य तत्व भी दो प्रकार के हैं, भाव पाप-पुण्य और द्रव्य पाप-पुण्य ?

समकित : हाँ, बिल्कुल।

6. पाप तत्वः जीव की पर्याय मे मोह, अशुभ राग और द्वेष का आना (उत्पन्न होना) व बना रहना भाव-पाप तत्व है। वहीं द्रव्य-कर्मों की पाप प्रकृतियों (ज्ञाना., दर्शना., मोहनी., अंतराय, असाता वेदनीय, अशुभ आयु, अशुभ नाम, निम्न गोत्र) का आना व जीव के साथ एक क्षेत्र में बना रहना द्रव्य-पाप तत्व है।

1.increment 2.partial-decrement 3.completely-destroyed 4.types

7. पुण्य तत्वः जीव की पर्याय में शुभ राग का आना (उत्पन्न होना) व बना रहना भाव-पुण्य तत्व है। वहीं द्रव्य-कर्मों की पुण्य प्रकृतियों (साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम, उच्च गोत्र) का आना व जीव के साथ एक क्षेत्र में बना रहना द्रव्य-पुण्य तत्व है।

प्रवेश : अरे वाह ! यह तो बहुत सरल है।

समकित : हाँ, इस प्रकार हम देखते हैं कि भाव आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पाप व पुण्य तत्व, जीव के कार्य (पर्याय) हैं यानि कि जीव इनका कर्ता है। द्रव्य आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पाप व पुण्य तत्व, पुद्गल के कार्य (पर्याय) हैं यानि कि पुद्गल (अजीव) इनका कर्ता है।

प्रवेश : भाव-आश्रव आदि और द्रव्य-आश्रव आदि के बीच क्या संबंध है ?

समकित : भाव-आश्रव आदि जीव की पर्याय और द्रव्य-आश्रव आदि पुद्गल की पर्याय होने से, इनमें आपस में मात्र निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, कर्ता -कर्म संबंध नहीं। क्योंकि दो द्रव्यों के बीच सिर्फ निमित्त-नैमित्तिक संबंध ही हो सकता है, कर्ता-कर्म संबंध नहीं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के कार्य का कर्ता नहीं हो सकता, यह हम पहले वस्तुत्व-गुण के पाठ में ही देख चुके हैं।

प्रवेश : प्रयोजनभूत तत्व तो समझ में आ गये लेकिन प्रयोजनभूत तत्वों के यथार्थ-निर्णय का क्या अर्थ है, विस्तार से समझाईये।

समकित : प्रयोजनभूत-तत्वों में जो तत्व जैसे हैं, उन्हें वैसा जानना व मानना प्रयोजनभूत-तत्वों का यथार्थ निर्णय है। यानि कि ज्ञेय तत्वों को ज्ञेय रूप, हेय तत्वों को हेय रूप और उपादेय तत्वों को उपादेय रूप जानना व मानना ही इन तत्वों का यथार्थ निर्णय है। जो कि सम्यकदर्शन यानि कि सच्चे सुख की प्राप्ति के उपाय में प्रमुख कारण है। तत्वार्थ सूत्र में भी कहा है- तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यकदर्शनं।

प्रवेश : भाईश्री ! यह ज्ञेय, हेय व उपादेय क्या होता है ?

समकित : बस यही हमारा अगला विषय है।

**2**

# ज्ञेय-हेय-उपादेय

समकित : पिछले पाठ में हमने देखा कि प्रयोजनभूत तत्वों के यथार्थ निर्णय के बिना सम्यकदर्शन यानि कि सच्चे सुख की प्राप्ति का उपाय नहीं हो सकता और प्रयोजनभूत तत्वों के यथार्थ निर्णय का अर्थ है-ज्ञेय तत्वों को ज्ञेय रूप, हेय तत्वों को हेय रूप और उपादेय तत्वों को उपादेय रूप जानना व मानना। तो सबसे पहले हम ज्ञेय, हेय व उपादेय शब्दों के अर्थ को समझ लेते हैं।

**ज्ञेय** का मतलब होता है **जानने योग्य।** यानि कि वह सब, जो जानने में आ सकें, वह ज्ञेय तत्व हैं।

**हेय** का मतलब होता है **त्यागने योग्य** (छोड़ने योग्य)। यानि कि सुखी होने के लिये जिन्हें हमें नियम से[1] छोड़ना होगा, वह हेय तत्व हैं।

**उपादेय** का मतलब होता है **ग्रहण करने योग्य।** यानि कि सुखी होने के लिये जिन्हें हमें नियम से ग्रहण[2] करना होगा वह उपादेय तत्व हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! प्रयोजनभूत तत्वों में कौनसे तत्व ज्ञेय, कौन से तत्व हेय व कौन से तत्व उपादेय हैं ?

समकित : सभी जीव एवं अजीव (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल) ज्ञेय तत्व हैं यानि कि जानने योग्य हैं। मतलब कि यदि ये जानने में आ जायें तो जान लो, इनको जानने मात्र से हमारा कोई नुकसान नहीं होता।

आश्रव व बंध यानि कि मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र (मोह, राग-द्वेष आदि) अशुद्धि[3] होने से व दु:ख का कारण होने से हेय तत्व हैं।

संवर व निर्जरा यानि कि सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र शुद्धि व शुद्धि-की-वृद्धिरूप[4] होने से व सच्चे सुख का कारण होने से प्रगट करने के लिये आंशिक[5] उपादेय तत्व हैं।

---

1.compulsorily 2.adopt/achieve 3.impurity 4.increasing-purity 5.partially

मोक्ष, शुद्धि-की-पूर्णतारूप[1] होने से व परम-सुख स्वरूप होने से प्रगट करने के लिये सर्वथा उपादेय तत्व है।

प्रवेश : लेकिन भाईश्री ये संवर, निर्जरा, मोक्ष तत्व प्रगट होंगे कैसे ?

समकित : स्व (जीव-तत्व) का आश्रय यानि कि ज्ञान, श्रद्धान व लीनता करने से। इसलिये जीव-तत्व आश्रय करने के लिये परम[2] उपादेय तत्व है।

प्रवेश : भाईश्री ! पाप-पुण्य तत्व ?

समकित : पाप-पुण्य तत्व, आश्रव-बंध तत्व के ही भेद[3] होने से हेय तत्व हैं।

प्रवेश : पाप की तरह पुण्य-तत्व भी हेय तत्व है ?

समकित : हाँ। जैसे बेड़ी[4], लोहे की हो या सोने की, बाँधने का ही काम करती है। वैसे ही बंध, पाप का हो या पुण्य का, जीव को संसार में बाँधने का ही काम करता है।

प्रवेश : ऐसे तो लोग पुण्य छोड़कर पाप में लग जायेंगे ?

समकित : अरे भाई ! पुण्य के साथ-साथ पाप को भी तो हेय कहा गया है तो फिर पुण्य छोड़कर पाप में जाने का सवाल ही कहाँ रहा ?

जहाँ पुण्य भी हेय है, वहाँ पाप हेय कैसे नहीं होगा? भगवान ने तो पाप-पुण्य रूप अशुद्ध भाव (आश्रव-बंध तत्व) को हेय कहकर, शुद्ध-भाव (संवर, निर्जरा, मोक्ष तत्व) को प्रगट[5] करने के लिये उपादेय कहा है। जिसका एकमात्र उपाय स्व (जीव-तत्व) का आश्रय करना है।

यह बात और है कि जब तक पूर्ण शुद्धि (पूर्ण वीतरागता) न हो तब तक धर्मात्मा जीव की पर्याय में मिश्रधारा चलती रहती है यानि कि परिणति[6] (पर्याय) में अपनी भूमिका लायक पुण्य-भाव (शुभ-राग) हुये बिना नहीं रहते, यानि कि होते ही है, लेकिन निर्णय (ज्ञान-श्रद्धान) में तो वह उनको आश्रव भाव होने के कारण हेय ही मानता है।

1.complete-purity 2.supremely 3.types 4.shackle 5.achieve 6.State of conduct

प्रवेश : यदि ऐसा न माने तो ?

समकित : यदि ऐसा न माने तो उसका पाप-पुण्य तत्व का निर्णय यथार्थ (सही) नहीं होगा। पाप-पुण्य तत्व का निर्णय अयथार्थ (गलत) होने से, आश्रव-बंध तत्व का निर्णय अयथार्थ होगा। आश्रव-बंध तत्व का निर्णय अयथार्थ होने से, आश्रव-बंध तत्व के विरोधी संवर, निर्जरा व मोक्ष तत्व का निर्णय भी अयथार्थ होगा। संवर, निर्जरा व मोक्ष तत्व का निर्णय अयथार्थ होने से, जिसके आश्रय से संवर, निर्जरा व मोक्ष तत्व प्रगट होते हैं, ऐसे जीव-तत्व का और जीव-तत्व से जुदा[1] अजीव-तत्व का निर्णय भी अयथार्थ ही होगा।

प्रवेश : ओह !

समकित : इस तरह हमने देखा कि जिसकी एक तत्व संबंधी भूल होती है उसकी नियम से सभी तत्वों संबंधी भूल होती ही है।

प्रवेश : भाईश्री ! प्रयोजनभूत तत्वों के निर्णय संबंधी इस जीव की (हमारी) और क्या-क्या भूल[2] रह जाती हैं विस्तार से समझाईये।

समकित : आज बहुत देर हो गयी है। कल बताता हूँ।

स्त्री, पुत्र, पैसे आदि में रचे-पचे रहना वह तो विषैला स्वाद है, सर्पकी बड़ी बाँबी है परन्तु शुभ भाव में आना वह भी संसार है। परम पुरुषार्थी महा-ज्ञानी अन्तर में ऐसे विलीन हुए कि फिर बाहर नहीं आये।

**-गुरुदेवश्री के वचनामृत**

अनंत काल से जीव को अशुभ भाव की आदत पड़ गई है, इसलिये उसे अशुभ भाव सहज है। और शुभ को बारम्बार करने से शुभ भाव भी सहज हो जाता है। परन्तु अपना स्वभाव जो कि सचमुच सहज है उसका ख्याल जीव को नहीं आता, खबर नहीं पड़ती। उपयोग को सूक्ष्म करके सहज स्वभाव पकड़ना चाहिये।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1.different 2.misconceptions

## 3

# जीव-अजीव तत्व संबंधी भूल

समकित : जैसा कि हमने पिछले पाठों में देखा कि प्रयोजनभूत तत्वों के यथार्थ निर्णय बिना सम्यकदर्शन की प्राप्ति असंभव है और सम्यकदर्शन के बिना सच्चे सुख की प्राप्ति असंभव[1] है।

इस पाठ में हम देखेंगे कि एसे इन प्रयोजनभूत तत्वों के संबंध में अनादि-से[2] इस जीव की (हमारी) क्या-क्या भूलें रही हैं जिस कारण कि इसको सम्यकदर्शन प्रगट नहीं होता यानि कि सच्चे सुख की प्राप्ति के मार्ग का द्वार नहीं खुलता।

प्रवेश : जी भाईश्री !

समकित : अनादि से तो यह जीव निगोद (साधारण-वनस्पति) में ही जन्म-मरण करता था। किसी विशेष प्रकार की कषाय की मंदता (शुभ-भाव) के कारण यह जीव निगोद से बाहर निकलकर त्रस पर्याय में आया उसमें भी असंज्ञी (मन-रहित) पाँच इंद्रिय जीव हुआ, सो यहाँ तक तो उसको तत्व विचार-शक्ति[3] ही प्रगट नहीं थी।

प्रवेश : भाईश्री जब निगोद में मन[4] ही नहीं होता, तो शुभ-भाव कैसे हुए ?

समकित : सहज[5] काललब्धि से और वैसे भी मन ज्ञान गुण की पर्याय है व शुभ-भाव चारित्र गुण की।

प्रवेश : फिर आगे ...?

समकित : फिर भाग्य से संज्ञी (मन-सहित) पाँच इंद्रिय जीव की पर्याय इसको प्राप्त हुई, उसमें भी मनुष्य आयु , आर्य देश, जैन कुल, परिणामों में विशुद्धि, भगवान की वाणी को सुनना-पढ़ना आदि दुर्लभ से दुर्लभ संयोग इसको प्राप्त हुए लेकिन इस सबके बाद भी आत्म कल्याण में बाधक, जो प्रयोजनभूत तत्वों संबंधी भूल इसकी रह जाती हैं, एक-एक करके हम उन भूलों की चर्चा करते हैं:

---

1.impossible 2.inborn 3.thinking-ability 4.thinking-ability 5.automatically

### 1. जीव-अजीव तत्व संबंधी भूलः

यह जीव, भगवान की वाणी में जो व्यवहार-नय[1] से जीव का कथन आया है यानि कि जीव और शरीर आदि के संयोग[2] से जो (असमान जाति द्रव्य) पर्याय रूप त्रस-स्थावर, संज्ञी-असंज्ञी, मनुष्य-तिर्यंच, देव-नारकी आदि रूप अस्थाई[3] व पर-सापेक्ष भेद जीव के बताये हैं उनको तो जीव तत्व जानना है, मानता है लेकिन निराकुलता की सिद्धि में कारण, निश्चय-नय[4] के विषयभूत ज्ञान-दर्शन आदि अनंत गुणों का एक अखंड-पिंड, हमेंशा एक-जैसा रहने वाला शाश्वत और शुद्ध आत्मा मैं हूँ और वही जीव-तत्व का यानि कि मेरा असली व स्थाई[5] स्वरूप है ऐसा न जानता है, न मानता है। यही इसकी जीव तत्व संबंधी भूल है।

प्रवेश : भाईश्री! भले ही हम निश्चय-नय के विषयभूत जीव तत्व के वास्तविक-स्वरूप[6] के बारे में यह न मानते हों कि यही मैं हूँ लेकिन अध्यात्म शास्त्रों से हमने उसके बारे में जान तो लिया ही है। फिर आपने ऐसा क्यों कहा कि उसके बारे में **न हम जानते हैं**, न मानते हैं?

समकित : ऐसा माने बिना कि यही शाश्वत और शुद्धात्मा मैं हूँ, सिर्फ शास्त्र से उस शाश्वत और शुद्ध आत्मा के बारे में जान-लेना, उसको नहीं जानने जैसा ही है।

आत्मा के बारे में जान लेना और आत्मा को जान लेना, इन दो बातों में बहुत बड़ा अंतर[7] है। क्योंकि सिर्फ आत्मा के बारे में शब्दों या विचारों[8] से जान लेने से सम्यकदर्शन नहीं होता क्योंकि सम्यकदर्शन कहते हैं-शुद्धात्मा (स्वयं) में अपनापन होने को। आत्मा को सिर्फ शास्त्रों से जान लें, लेकिन यही मैं हूँ ऐसा अनुभवपूर्वक न जानें, न मानें, तो सम्यकदर्शन की प्राप्ति[9] असंभव है।

प्रवेश : तो क्या अध्यात्म शास्त्रों को पढ़कर, रातदिन आत्मा की बातें करनेवाले भी ऐसा नहीं मानते कि यही शुद्ध-आत्मा मैं हूँ ?

---

1.formal-narration 2.combination 3.unstable 4.actual-narration 5.eternal
6.actual-sapect 7.difference 8.thought-process 9.achievement

समकित : यदि शुद्ध-आत्मा के अनुभवपूर्वक, उसमें अपनापन करके, शुद्धात्मा की बाते करें तब तो ठीक है। लेकिन उसके बिना सिर्फ आत्मा की बातों ही का नाम सम्यकदर्शन नहीं है। ऐसा व्यक्ति, आत्मा की बातें ऐसे करता है जैसे किसी और की ही बातें कर रहा हो। वह कहता जरूर है कि आत्मा शुद्ध और शाश्वत है, लेकिन उसे अंदर से ऐसा अपनापन (प्रतीति) नहीं, कि वह शुद्ध और शाश्वत आत्मा (जीव-तत्व) मैं ही हूँ।

बल्कि वह तो ऐसा मानता है कि यह शरीर आदि (अजीव-तत्व) ही मैं हूँ। शरीर की उत्पत्ति[1] से ही मेरी उत्पत्ति और शरीर के नाश[2] से ही मेरा नाश हो जाता है। शरीर गौरा[3] और शक्तिशाली[4] है, तो मैं गौरा और शक्तिशाली हूँ व शरीर काला और शक्तिहीन है तो मैं काला और शक्तिहीन हूँ। शरीर की क्रियाओं (हलन-चलन आदि) का कर्ता मैं हूँ और शरीर मेरी क्रियाओं (भाव आदि) का कर्ता है या फिर हम दोनों मिलकर तरह-तरह के कार्यों[5] को करते हैं। इस प्रकार विपरीत (उल्टा) जानता है और मानता है। यानि कि अजीव के पुद्गल आदि भेद-प्रभेदों[6] को तो शास्त्रों से जानता है, मानता है लेकिन यह सब जीव से यानि कि मुझसे जुदा[7] हैं, ऐसा न जानता है, न मानता है। **यही इसकी अजीव-तत्व संबधी भूल है।**

प्रवेश : जीव और अजीव तत्व संबंधी भूल तो लगभग[8] एक ही है ?

समकित : हाँ ! जीव को अजीव मानना या फिर अजीव की क्रिया (हलन-चलन) का कर्ता मानना जीव तत्व संबंधी भूल है। अजीव को जीव मानना या फिर जीव की क्रिया (भाव आदि) का कर्ता मानना अजीव तत्व संबंधी भूल है। दोनों एक ही बात हैं, बस कथन[9] में अंतर है। एक बात जीव की तरफ से कही गई है, तो दूसरी बात अजीव की तरफ से कही गई है। इसलिये दोनों भूलें साथ-साथ ही पायी जाती हैं।

प्रवेश : यदि कोई शुद्ध और शाश्वत आत्मा (जीव-तत्व) की बातें ऐसे करता हो कि मैं ही वह शुद्ध और शाश्वत आत्मा हूँ, तो ?

1.occurance 2.destruction 3.fair 4.muscular 5.activities
6.types-subtypes 7.different 8.nearly 9.narration

समकित : अरे भाई ! आत्मा वचन-गोचर (शब्दों से कहा जा सके) नहीं, अनुभव-गोचर[1] वस्तु है। आत्मा का कथन तो वचनों[2] से हो सकता है, लेकिन आत्मा में अपनापन (प्रतीति), आत्मा-के-अनुभव होने पर ही संभव है।

प्रवेश : शुद्ध आत्मा के अनुभव के लिये हमें क्या करना होगा ?

गुरू : शुद्ध आत्मा के अनुभव के लिये हमें निम्न कार्य करने होंगेः

1. सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का निर्णय (शास्त्र-अभ्यास)
2. प्रयोजनभूत-तत्वों का निर्णय
3. स्व-पर भेद-विज्ञान का अभ्यास

इसमें से सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप की चर्चा तो हम पहले ही कर चुके हैं और प्रयोजनभूत-तत्वों के यथार्थ निर्णय में हमारी क्या भूल रह जाती हैं हम देख ही रहे हैं। इसके बाद स्व-पर भेद विज्ञान के अभ्यास और आत्माानुभव के बारे में भी कभी विस्तार से चर्चा करेंगे।

प्रवेश : भाईश्री ! अब आश्रव-बंध तत्व संबंधी भूल और समझा दीजिये।

समकित : आज नहीं कल !

आत्मा को प्राप्त करने के लिये (गुरुगम से) शास्त्रों का अभ्यास करना, विचार-मनन करके तत्व का निर्णय करना और शरीरादि से तथा राग से भेद ज्ञान करने का अभ्याय करना। रागादि से भिन्नता का अभ्याय करते-करते आत्मा का अनुभव होता है।

**–गुरुदेवश्री के वचनामृत**

शास्त्रों में मार्ग कहा है, मर्म नहीं कहा। मर्म तो सत्पुरुष के अन्तरात्मा में रहा है।

**–श्रीमद् राजचन्द्र वचनामृत**

1.experienciable 2.words 3.experience of self

# 4

# आश्रव-बंध तत्व संबंधी भूल

समकित : पिछले पाठ में हमने हमारी जीव-अजीव तत्व संबंधी भूल की चर्चा की। अब हमको आश्रव-बंध तत्व संबधी भूल की चर्चा करनी है।

**आश्रव-तत्व संबंधी भूलः** अशुद्धि यानि कि मिथ्यादर्शन-ज्ञान- चरित्र (मोह, राग-द्वेष) की उत्पत्ति[1] आश्रव है।

मिथ्यादर्शन यानि मिथ्यात्व और मिथ्याचारित्र यानि कि कषाय के तीन भेद-अविरति, प्रमाद, कषाय में एक योग को जोड़ देने पर आश्रव के कुल पाँच भेद हो जाते हैं।

शास्त्र से यह जान लेने पर भी कि मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के भेद से आश्रव पाँच प्रकार का है। यह जीव आश्रव के वास्तविक (असली) स्वरूप से अनजान रहता है यानि कि आश्रव के बाह्य स्वरूप को तो जानता व मानता है, लेकिन आश्रव के अंतरंग स्वरूप को न जानता है, न मानता है। यही इस जीव की आश्रव-तत्व संबंधी भूल है।

प्रवेश : भाईश्री ! आश्रव भी दो प्रकार के होते हैं ?

समकित : आश्रव दो प्रकार के नहीं होते, आश्रव का कथन दो प्रकार से होता है। एक यथार्थ कथन और दूसरा उपचरित कथन।

प्रवेश : कृपया विस्तार से समझाईये।

समकित : हम एक-एक करके पाँचों प्रकार के आश्रवों के वास्तविक (असली) स्वरूप के संबंध में जीव की भूलों की चर्चा करेंगे।

**1. मिथ्यात्वः** यह जीव गृहीत मिथ्यात्व यानि कि कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरू आदि के श्रद्धान को तो मिथ्यात्व जानता व मानता है, लेकिन अगृहीत-मिथ्यात्व यानि कि शुद्धात्मा में अपनापन व किंचित (जरा)

---

1.occurance

भी लीनता न होना ही वास्तविक मिथ्यात्व है ऐसा न जानता है, न मानता है। इसलिये उसे छोड़ने का प्रयास भी नहीं करता जबकि गृहीत मिथ्यात्व का त्याग तो यह जीव पिछले भवों (जन्मों) में भी अनेक बार कर चुका है। लेकिन अगृहीत मिथ्यात्व को न छोड़ पाने के कारण आज तक संसार में भटक-भटक कर दुःख सह रहा है।

प्रवेश : ओह !

समकित : **2. अविरति–** उसी प्रकार यह जीव बाह्य-हिंसा[1] और इन्द्रिय-मन के विषयों में प्रवृत्ति[2] को किंचित (जरा) भी त्याग न कर पाने रूप बाह्य[3] अविरति को तो अविरति जानता व मानता है, लेकिन अंतरंग[4] अविरति यानि कि शुद्धात्मा में लीनता की वृद्धि न हो पाना ही वास्तविक अविरति है ऐसा न जानता है, न मानता है।

इसी कारण बाह्य अविरति का त्याग कर मात्र बाह्य-श्रावक आदि पद तो इस जीव ने पूर्व भवों (जन्मों) में भी अनेक बार धारण किये हैं, लेकिन अंतरंग अविरति का त्याग न करने के कारण संसार में भटक रहा है।

**3. प्रमाद–** यह जीव, बाह्यहिंसा व इंद्रिय-मन के विषयों में प्रवृत्ति को सर्वथा[5] त्याग न कर पाने रूप बाह्य प्रमाद को तो प्रमाद जानता व मानता है लेकिन अंतरंग प्रमाद यानि कि शुद्धात्मा में प्रचुर लीनता न हो पाना ही वास्तविक प्रमाद है, ऐसा न जानता है, न मानता है।

इसी कारण अनंत बार बाह्यहिंसा व इंद्रिय-मन के विषयों का सर्वथा त्याग कर मात्र बाह्य-मुनि पद धारण करने के बाद भी शुद्धात्मा के ज्ञान-श्रद्धान-लीनता बिना आज तक संसार में भटक रहा है।

**4. कषाय–** उसी प्रकार यह जीव, बाह्य क्रोध आदि को ही कषाय जानता व मानता है लेकिन इनके उत्पन्न होने के जो मूल कारण अंतरंग कषाय यानि कि शुद्धात्मा में पूर्ण लीनता न हो पाना ही वास्तविक कषाय है, ऐसा न जानता है, न मानता है।

---

1.external-violence 2.indulgence 3.external 4.internal

और तो और बाह्य कषायों में भी तीव्र-कषाय यानि कि अशुभ-राग (पाप-भाव) को तो कषाय जानता व मानता है लेकिन मंद-कषाय यानि कि शुभ-राग (पुण्य-भाव) को न कषाय जानता है, न मानता है। जबकि दोनों ही अशुद्ध-भाव रूप होने से आश्रव हैं, बंध के कारण हैं।

इसीकारण इस जीव ने पूर्व में भी बाह्य कषायों को दबाने का या मंद करने का पुरुषार्थ तो अनेक बार किया है, लेकिन कषायों के अभाव यानि कि शुद्धात्मा में लीन होने का पुरुषार्थ आज तक न करने के कारण निरंतर[1] दुःखी और आकुलित हो रहा है।

प्रवेश : अरे ! ऐसा तो कभी सोचा ही नहीं।

समकित : हाँ !

**5. योग-** यह जीव द्रव्य मन, वचन व काय की चेष्टा (क्रिया) को तो योग जानता व मानता है, लेकिन अंतरंग योग यानि आत्मा के प्रदेशों का कंपायमान (चंचल[2]) होना ही वास्तविक[3] योग है, ऐसा न जानता है, न मानता है।

प्रवेश : यह तो वास्तव में बहुत बड़ी भूलें हैं। क्या आश्रव-तत्व संबंधी जीव की यही भूलें रह जाती हैं या और भी कुछ भूलें हैं ?

समकित : मुख्य[4] भूलें तो यही हैं, बाकी इनका विस्तार[5] तो बहुत है, लेकिन अभी के लिये इतना ही काफी है। लेकिन एक जो सबसे बड़ी भूल है वह यह है कि शास्त्र में हर जगह **मिथ्यात्व के दोष[6] को पहाड़ बराबर (बड़ा) और कषाय (अविरति आदि) के दोष को राई बराबर (छोटा) बताया है**, लेकिन धर्म क्षेत्र में आकर भी इस जीव के सारे प्रयास पहले में पहले अविरति आदि का अभाव करने पर केन्द्रित होते हैं, मिथ्यात्व का बड़ा दोष इसको दोष जैसा ही नहीं लगता। जबकि सच्चाई तो यह है कि मिथ्यात्व का अभाव यानि कि शुद्धात्मा में अपनापन किये बिना, कषाय (अविरति आदि) का अभाव यानि कि शुद्धात्मा में लीनता हो ही

1.continuously 2.vibrate 3.actual 4.Major 5.detail 6.fault

नहीं सकती। वैसे भी जिनमत[1] में और लोक[2] में भी पहले बड़ा दोष छुड़ाकर फिर पीछे छोटा दोष छुड़ाने की पद्धति[3] है। लौकिक पद्धति तो इस जीव को बराबर ख्याल रहती है, लेकिन जिनमत की पद्धति का लोप[4] करता है।

प्रवेश : यह तो सही है लेकिन फिर भी यदि कोई जीव मिथ्यात्व के बड़े दोष को दूर करने में असमर्थ है, वह यदि कषाय आदि का छोटा दोष दूर करने का प्रयास (कोशिश) करे तो क्या बुराई है ? दोष तो जितना दूर हो, उतना अच्छा है।

समकित : बात प्रयास करने या न करने की नहीं है। बात तो यह है कि मिथ्यात्व का दोष दूर हुये बिना कषाय (अविरति आदि) का दोष असल में दूर होता ही कहाँ है ? इसीलिये तो करणानुयोग के अनुसार भी पहले जीव के मिथ्यात्व के अभाव रूप चौथा गुणस्थान प्रगट होता है, उसके बाद अविरति, प्रमाद, कषाय व योग के अभाव रूप क्रमशः[5] पाँचवें, सातवें, बारहवें और चौदहवें गुणस्थान प्रगट होते हैं।

प्रवेश : और इसीलिये मिथ्यात्व के अभाव रूप सम्यकदर्शन को मोक्ष-महल की पहली सीढ़ी[6] कहा है ?

समकित : हाँ, जैसे पहली सीढ़ी चढ़े बिना दूसरी, तीसरी, चौथी आदि सीढ़िया नहीं चढ़ी जा सकतीं वैसे ही मिथ्यात्व के अभाव के बिना अविरति, प्रमाद, कषाय और योग का अभाव नहीं किया जा सकता।

प्रवेश : लेकिन बहुत से जीवों के मिथ्यात्व के रहते हुये भी कषाय आदि का अभाव होता देखा जाता है ?

समकित : वह कषाय का अभाव नहीं, कषाय की मंदता है।

प्रवेश : मतलब ?

समकित : **कषाय की मंदता** तो किन्हीं-किन्हीं जीवों के सहज[7] ही हो जाती है। कषाय की अति-मंदता के कारण ही मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी मुनि नवमें

1.jainism 2.social-world 3.system 4.omission 5.respectively 6.step 7.automatically

ग्रैवेयक तक भी चले जाते हैं और कषायों को दबाकर गृहीत मिथ्यादृष्टि अन्य मत के साधु भी बारहवें स्वर्ग तक चले जाते हैं। दोनों ही निश्चय[1] सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र से रहित होने के कारण यानि कि मिथ्यात्व और **कषायों का अभाव** न कर पाने के कारण संसार में ही भटकते रहते हैं, मोक्ष नहीं पाते और कहा भी है-

**भोगि पुण्य फल हो इक इंद्री, क्या इसमें लाली।**

**कुतबाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली।।**

प्रवेश : भाईश्री ! बंध तत्व संबंधी भूल ?

समकित : **बंध तत्व संबंधी भूल-** जैसा कि हमने कषाय के स्वरूप की चर्चा में देखा कि कषाय के अंतरंग स्वरूप को यह जीव समझता नहीं और मात्र बाह्य[2] क्रोधादि को ही कषाय मानता है और बाह्य क्रोधादि कषायों में तीव्र-कषाय रूप अशुभ-राग (पाप-भाव) को तो बंध का कारण जानता है, मानता है लेकिन मंद-कषाय यानि कि शुभ-राग (पुण्य-भाव) को न बंध का कारण जानता है, न मानता है। जबकि हम पहले ही देख चुके हैं कि बेड़ी चाहे लोहे की हो या सोने की, बाँधने का काम दोनों ही करती हैं। यही इसकी बंध तत्व संबंधी भूल है।

प्रवेश : भाईश्री ! और...?

समकित : बाकी संवर, निंर्जरा व मोक्ष तत्व संबंधी भूलें हम कल पढ़ेगे ।

कोई बाँधने वाला नहीं है, अपनी भूल से बँधता है।

जो छूटने के लिये ही जीता है वह बंधन में नहीं आता।

एक को उपयोग में लायेंगे तो सब शत्रु दूर हो जायेंगे।

शास्त्रों में मार्ग कहा है, मर्म नहीं कहा। मर्म तो सत्पुरुष के अन्तरात्मा में रहा है।

**-श्रीमद् राजचन्द्र वचनामृत**

1.actual 2.external

5

# संवर, निर्जरा व मोक्ष तत्व संबंधी भूल

समकित : आज हम संवर, निर्जरा व मोक्ष तत्व संबंधी भूलों की चर्चा करेंगे।

**संवर तत्व संबंधी भूलः** आश्रव का विरोधी[1] संवर है। इसलिये यदि अशुद्धि यानि कि मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति आश्रव है, तो उसकी विरोधी शुद्धि यानि कि सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र की उत्पत्ति ही संवर है।

प्रवेश : शास्त्र में तो गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परिषह-जय आदि को संवर का कारण कहा है ?

समकित : हाँ, तो ठीक ही तो कहा है। यह सब सम्यकचारित्र के ही तो भेद हैं और सम्यकचारित्र, सम्यकदर्शन-ज्ञान पूर्वक ही तो होता है।

प्रवेश : भाईश्री ! पाप-चिंतवन[2] न करना मनोगुप्ति, मौन[3] धारण करना वचन -गुप्ति, गमन आदि[4] न करना काय-गुप्ति है, देखकर चलना-फिरना, खाना-पीना, उठाना-रखना आदि समिति हैं, सबके प्रति क्षमाभाव[5], सरलता आदि रखना धर्म (दस-लक्षण धर्म) हैं, संसार-शरीर-भोगों की क्षण-भंगुरता आदि का विचार करना अनुप्रेक्षा (बारह भावना) है और कष्टों को मंद कषायपूर्वक चुपचाप सहन करना परिषह-जय है। यह तो सभी जानते व मानते हैं, तो हमारी संवर तत्व संबंधी क्या भूल रह जाती है ?

समकित : जैसा कि हमने पहले देखा था कि आत्मलीनता द्वारा प्रगट हुआ वीतराग-भाव वह निश्चय (यथार्थ) सम्यकचारित्र है और उस वीतराग-भाव रूप निश्चय चारित्र के साथ आवश्यक-रूपसे[6] पाया जाने वाला शुभ-राग व्यवहार से सम्यकचारित्र कहने में आता है। इसलिये यह व्यवहार-चारित्र, निश्चय-चारित्र का निमित्त-कारण (सहचर[7]) कहलाता है।

---

1.opposite 2.wicked-thinking 3.silence 4.physical-activities
5.forgiveness 6.compulsorily 7.parallel-companion

जो गुप्ति आदि का स्वरूप तुमने बताया है, वह शुभ-राग रूप होने से, व्यवहार गुप्ति आदि होने से, व्यवहार सम्यकचारित्र के भेद हैं इसलिये इन्हें संवर नहीं, संवर का निमित्त-कारण[1] (सहचर) कहा गया है।

वास्तविक[2] संवर तो आत्मलीनता द्वारा प्रगट हुआ वीतराग-भाव रूप निश्चय सम्यकचारित्र यानि कि निश्चय गुप्ति आदि ही हैं।

प्रवेश : यह बात तो ठीक है लेकिन यदि हम ऐसा कहेंगे तो अज्ञानी (अनात्म ज्ञानी) लोग व्यवहार चारित्र को भी छोड़ देंगे।

समकित : व्यवहार-चारित्र को छोड़ने की बात तो तब आयेगी जब अज्ञानी को व्यवहार-चारित्र प्रगट हुआ हो। सच्चा व्यवहार-चारित्र तो निश्चय-चारित्र के साथ ही प्रगट होता है यानि कि ज्ञानी (आत्मज्ञानी) को ही प्रगट होता है। क्योंकि निश्चय के बिना तो सच्चा व्यवहार होता ही नहीं। अज्ञानी का बाह्य गुप्ति आदि पालने का शुभ राग, वीतराग-भाव रूप निश्चय-चारित्र के अभाव में व्यवहार से भी सम्यक चारित्र नाम नहीं पाता।

प्रवेश : भाईश्री ! भले ही अज्ञानी (अनात्म-ज्ञानी) को व्यवहार चारित्र भी न हो लेकिन आपने कहा कि बाह्य गुप्ति आदि पालने का शुभ राग होता है। लेकिन ऐसा उपदेश सुनकर तो वह स्वच्छंदी हो जायेगा, शुभ राग छोड़कर अशुभ राग में चला जायेगा ?

समकित : अरे भाई ! वास्तव में तो, अपने स्वरूप व जिन आज्ञा से बाहर विचरण करने के कारण मिथ्यादृष्टि जीव स्वच्छंद तो है ही और रही बात शुभ-भाव छोड़कर अशुभ-भाव में जाने की तो **उपदेश[3] तो सिर्फ ऊपर चढ़ने के लिये दिया जाता है, नीचे गिरने के लिये नहीं। यदि कोई ऊपर न चढ़कर नीचे गिरे तो इसमें उपदेश का क्या दोष[4] है ?**

यहाँ तो शुभ-भाव से भी ऊपर, शुद्ध भाव प्रगट करने का उपदेश दिया जा रहा है। लेकिन कोई शुभ-भाव से शुद्ध-भाव में न जाकर, उल्टा शुभ-भाव से भी नीचे अशुभ-भाव में जाये तो इसमें उपदेश का क्या दोष है ?

1.formal-cause 2.actual 3.preachings 4.fault

प्रवेश : ओह !

समकित : जिसप्रकार मिश्री तो औषधि[1] है लेकिन यदि कोई गधा मिश्री खाने का तरीका न जानकर मिश्री की बड़ी डली गले में फसाकर मर जाये तो उसमें दोष गधे का है, मिश्री का नहीं। उसीप्रकार यह उपदेश तो संसार-रोग को नाश करने वाली औषधि है, लेकिन कोई मूर्ख इसको सुनकर अर्थ का अनर्थ कर, स्वच्छंदी हो होकर अपना बुरा करे तो इसमें उपदेश का नहीं, उसका स्वयं का ही दोष है।

प्रवेश : लेकिन यदि हम मिश्री बाँटते ही नहीं तो गधा मरने से बच जाता ?

समकित : यदि हम मिश्री नहीं बाँटते तो गधा मरने से बच जाता, इस बात की कोई गारंटी[2] हो या न हो, लेकिन ऐसा करने से वे रोगी जरूर मर जाते, जिनका रोग मिश्री खाने से ठीक हो गया।

उसी प्रकार यदि हम यह उपदेश नहीं देंगे, तो जिसको छल ही ग्रहण करना है वह स्वच्छंद होने से बच जाता इस बात की कोई गारंटी हो या न हो, लेकिन इस बात की पूरी गारंटी है कि ऐसा करने से वे जीव जरूर मोक्षमार्ग से वंचित[3] हो जायेंगे जिनका उद्देश्य[4] छल ग्रहण करना नहीं, बल्कि आत्म-कल्याण करना है, मोक्ष की प्राप्ति है।

प्रवेश : हाँ, सही है। कोई जीवन-रक्षक[5] दवाई कुछ व्यक्तियों को नुकसान[6] कर जाये, इस कारण से उसे बैन नहीं किया जा सकता।

समकित : हाँ।

प्रवेश : और निर्जरा एवं मोक्ष तत्व संबंधी भूल ?

समकित : **निर्जरा तत्व संबंधी भूलः** शास्त्र में तप को निर्जरा का कारण कहा है। सो यह जीव कायक्लेश आदि शरीर-आश्रित बाह्य-तप को तो तप जानता है, मानता है लेकिन आत्मलीनता की वृद्धि (शुद्धि की वृद्धि) रूप निश्चय-तप ही वास्तविक तप है, ऐसा न जानता है, न मानता है।

1.medicine 2.guarantee 3.deprived 4.aim 5.life saving 6.side effect

**मोक्ष तत्व संबंधी भूलः** उसी प्रकार मोक्ष के भी वास्तविक स्वरूप को न ही जानता है, न ही मानता है। कहता है कि मोक्ष में स्वर्ग से अनंत-गुना[1] सुख है, जबकि स्वर्ग का सुख तो आकुलता वाला होने से सुखाभास[2] है, इंद्रिय-जनित[3] है, पराधीन[4] व क्षणिक[5] है। वास्तव में दुःख ही है।

जबकि मोक्ष सुख तो आकुलता बिना का होने से सच्चा सुख है, अतींद्रिय[6] है, स्वाधीन[7] और शाश्वत[8] है, परमानंद[9] है, लेकिन यह अज्ञानी जीव तो यहाँ तक भूल करता है कि स्वर्ग और मोक्ष दोनों ही का कारण शुभ-भाव को मानता है। यह विचार नहीं करता कि एक ही भाव का फल संसार और मोक्ष दोनों कैसे हो सकते हैं ?

जबकि, शुभ-अशुभ भाव दानों ही संसार के कारण हैं और मोक्ष का कारण तो शुद्ध-भाव (वीतरागता) है।

प्रवेश : यह तो समझ में आ गया कि शुद्ध (वीतराग) भाव ही संवर, निर्जरा और मोक्ष का कारण है, लेकिन अनेक शास्त्रों में शुभ भावों का भी उपदेश आता है, तो आखिर कौनसी बात सही है और हमको क्या करना है, यह उलझन[10] खड़ी हो जाती है ?

समकित : यह उलझन चार अनुयोगों का स्वरूप, प्रयोजन व उनका अर्थ निकालने की पद्धति[11] न आने के कारण खड़ी होती है। हमारा अगला पाठ इसी संबंध में है।

ज्ञानी के अभिप्राय में राग है वह जहर है, काला साँप है। अभी आसक्ति के कारण ज्ञानी थोड़े बाहर खड़े हैं, राग है, परन्तु अभिप्राय में काला साँप लगता है। ज्ञानी विभाव के बीच खड़े होने पर भी विभाव से पृथक् हैं, न्यारे हैं।

**–बहिनश्री के वचनामृत**

1.infinite-times 2.delusion of bliss 3.sensual 4.dependent 5.momentary 6.beyond-senses 7.independent 8.eternal 9.blissful 10.confusion 11.technique

# 6
# चार-अनुयोग

समकित : जैसा कि हम जानते हैं कि जिनवाणी चार अनुयोगों[1] में बँटी हुई है :

1. प्रथमानुयोग(कथानुयोग)
2. करणानुयोग(गणितानुयोग)
3. चरणानुयोग
4. द्रव्यानुयोग

यह चारों ही अनुयोग जिनेन्द्र भगवान की वाणी हैं और जिनेन्द्र भगवान वीतरागी हैं इसलिये चारों ही अनुयोग वीतरागता के पोषक (प्रेरक) हैं। यानि कि चारों अनुयोगों का सार[2] वीतरागता ही है।

ऐसा होने पर भी चारों अनुयोगों की शैली[3] व विषयवस्तु[4] अलग-अलग है।

प्रवेश : मतलब ?

समकित : जहाँ द्रव्यानुयोग की विषयवस्तु **मुख्यरूप-से**[5] द्रव्य-गुण-पर्याय व नव-तत्वों में छुपी हुई आत्मज्योति यानि कि **शुद्धात्मा** और उसका ज्ञान, श्रद्धान व ध्यान (लीनता) है,तो वहीं चरणानुयोग की विषयवस्तु द्रव्यानुयोग के अनुसार शुद्धात्मा को जानने, मानने व उसमें लीन होने वाले, यानि कि वीतराग मार्ग पर चलने वाले जीवों को होने वाला भूमिका योग्य (पूर्वचर-सहचर-उत्तरचर) शुभ-राग व बाह्य क्रिया है।

प्रवेश : चरणानुयोग की विषय वस्तु तो बाह्य-आचरण है न ?

समकित : अरे भाई ! चरणानुयोग बताता है कि शुद्धात्मा को जानने, मानने व उसमें लीन होने वाले सम्यकदृष्टि व्रती-श्रावक व मुनिराज, यानि कि वीतराग मार्ग (मोक्षमार्ग) पर चलने वाले जीवों को किस प्रकार का व्रत आदि बाह्य आचरण पालने का शुभ-राग व बाह्य क्रिया हुए बिना नहीं रहती, होती ही है।

---

1.divisions 2.essence/summary 3.genre 4.theme 5.mainly

इस तरह चरणानुयोग भी वीतरागता का ही पोषक होने से, उसमें भी राग करने का उपदेश नहीं है। बस आंशिक[1] वीतरागियों को होने वाले भूमिका प्रमाण शुभ-राग व क्रिया रूप व्यवहार धर्म का ज्ञान कराया है, लेकिन पोषण[2] तो वीतरागता का ही किया है, क्योंकि **प्रयोजन तो वीतरागता के पोषण का ही है।**

समकित : करणानुयोग की विषय-वस्तु **मुख्यरूप से** द्रव्य-कर्म हैं यानि कि जो जीव द्रव्यानुयोग के अनुसार स्वयं को जानते, मानते व उसमें लीन होते हैं, ऐसे वीतराग मार्ग में चलने बाले जीवों के द्रव्य-कर्मों की स्थिति[3] कैसी होती है और जो ऐसा नहीं करते, ऐसे संसार मार्ग में चलने वाले जीवों के द्रव्य कर्मों की स्थिति कैसी होती है, यह ज्ञान करणानुयोग में कराया है।

प्रवेश : इसका मतलब यह हुआ कि भले ही करणानुयोग की विषय-वस्तु **मुख्य रूप से** द्रव्य-कर्म आदि हैं लेकिन पोषण तो उसमें भी वीतरागता का ही किया गया है, यानि कि करणानुयोग का सार भी वीतरागता ही है।

समकित : हाँ, बिलकुल ! प्रथमानुयोग की विषय वस्तु **मुख्यरूप से** महापुरुषों की कहानियाँ हैं यानि कि जो जीव द्रव्यानुयोग के अनुसार शुद्धात्मा को जानते, मानते व उसमें लीन होते हैं, ऐसे वीतराग मार्ग पर चलने वाले जीवों का जीवन कैसा होता है इसका ज्ञान प्रथमानुयोग (कथानुयोग) में कराया है। यानि कि प्रथमानुयोग में भी प्रेरणा वीतरागता की ही दी है। मतलब प्रथमानुयोग का सार भी वीतरागता ही है।

प्रवेश : अरे वाह ! चारों अनुयोगों का सार वीतरागता है, चारों अनुयोगों में वीतरागता का ही पोषण और प्रेरणा है।यह तो कभी सोचा ही नहीं था।

समकित : हाँ और इसका कारण यह है कि हम चारों अनुयोगों का स्वाध्याय तो करते हैं लेकिन चारों अनुयोगों का प्रयोजन, शैली[4] व अर्थ निकालने की पद्धति[5] को नहीं समझते।

प्रवेश : चारों अनुयोगों का प्रयोजन, शैली व अर्थ निकालने की पद्धति का क्या मतलब है?

1.partial 2.confirmation 3.position 4.genre 5.technique

समकित : चूँकि चारों अनुयोगों का सार तो वीतरागता ही है लेकिन शैली व विषय-वस्तु अलग-अलग है। इसलिये चारों अनुयोगों की विषय-वस्तु का सम्यकज्ञान करते हुए भी प्रेरणा[1] तो हमको सारभूत वीतरागता की ही लेनी चाहिये यानि कि चारों अनुयोगों के विषय जानने लायक हैं, लेकिन प्रगट करने लायक[2] तो एक वीतरागता ही है।

प्रवेश : जैसे ?

समकित : जैसे चरणानुयोग का विषय वीतराग मार्ग पर चलने वालों का बाह्य आचरण पालने का शुभ-राग है, वह जानने लायक है की किसप्रकार का भूमिका योग्य शुभराग व क्रिया वीतराग मार्गियों को होती ही है। लेकिन वीतरागता तो प्रगट करने लायक है यानि कि चरणानुयोग में भी राग कराने का प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन तो वहाँ भी वीतरागता का ही है।

प्रवेश : यह तो ठीक है, लेकिन चरणानुयोग में सभी जगह शुभ-राग और व्रत आदि बाह्य आचरण का उपदेश ही तो दिया गया है कि यह करना चाहिये, यह करना चाहिए, अणुव्रत ऐसे पालने चाहिये, महव्रत ऐसे पालने चाहिये ?

समकित : चरणानुयोग उपदेश की शैली में लिखा गया है ताकि मंद बुद्धि जीवों का भी उपकार हो जाये यानि कि जो लोग द्रव्यानुयोग की शुद्धात्मा की बात नहीं समझ सकते, स्वयं को जानकर, मानकर व लीन होकर वीतरागता नहीं प्रगट कर सकते, लेकिन अज्ञान-दशा[3] में ही मात्र बाह्य व्रत आदि धारण करके उनमें दोष लगाकर प्रतिज्ञा-भंग[4] जैसे महापाप का बंध कर रहे हैं, तो कम-से-कम[5] चरणानुयोग के उपदेश के अनुसार अपने बाह्य व्रत आदि (आचरण) को सुधारकर प्रतिज्ञा भंग के महा-पाप से तो बच जायेंगे, हालांकि इससे कुछ विशेष कार्य (मोक्ष) की सिद्धि नहीं होती।

1. inspiration 2.adoptable 3.unenlightened-state 4.pledge-dissolution 5.atleast

प्रवेश : तो क्या द्रव्यानुयोग अनुसार शुद्धात्मा को जानने, मानने व उसमें लीन होकर वीतरागता प्रगट करने वाले जीवों को चरणानुयोग अनुसार बाह्य आचरण नहीं पालने पड़ते ?

समकित : उनको जबरन नहीं पालने पड़ते, बल्कि उनके तो सहज-रूपसे[1] निर्दोष-पने[2] पल जाते हैं। क्योंकि उनको भूमिका योग्य व्रतादि बाह्य आचरण पालने का शुभ राग व तत्संबंधी बाह्य क्रिया सहज-रूपसे हुये बिना नहीं रहती।

प्रवेश : सहज मतलब ?

समकित : बिना-उपादेयबुद्धि-के[3], बिना-हठ-के[4] और बिना-खींचतान-के[5]।

प्रवेश : भूमिका-प्रमाण मतलब ?

समकित : अव्रत सम्यकिदृष्टि, व्रती श्रावक और मुनिराज सबकी भूमिका में अलग-अलग प्रकार का शुभ-राग होता है। जैसे-चौथे गुणस्थानवर्ती अव्रती सम्यकदृष्टि को आठ अंग आदि पालनें का शुभ राग होता है। हालांकि उसकी प्रतिज्ञायें नहीं होती।

पाँचवे गुणस्थानवर्ती व्रती श्रावक को ग्यारह-प्रतिमायें (प्रतिज्ञायें), अणुव्रत और दैनिक षट्कर्म आदि पालने का शुभ-राग सहज होता है व व्यवहार से मोक्षमार्ग भी कहने में आता है।

प्रवेश : क्या मिथ्यादृष्टि यानि कि जिसको वीतरागता का अंश भी नहीं प्रगटा उसको इसप्रकार के शुभ-राग नहीं हो सकते हैं ?

समकित : हो तो सकते हैं, लेकिन व्यवहार से भी मोक्षमार्ग कहने में नहीं आते।

प्रवेश : चरणानुयोग की चर्चा तो विस्तार से हो गयी। प्रथमानुयोग, द्रव्यानुयोग और करणानुयोग के बारे में भी विसातर से समझाईये न ?

समकित : ठीक है सुनो ।

1.automatically 2.flawlessly 3.without assuming them adoptable 4.without-stubborness 5.unforcibly

प्रथमानुयोग में कहीं-कहीं प्राथमिक (निचली) भूमिका वाले जीव को धर्म में लगाने के लिये लौकिक इच्छा (कामना) से पूजा-भक्ति आदि करने वालों की भी प्रशंसा कर देते हैं, जबकि लौकिक कामना से पूजा-भक्ति आदि करने से सम्यक्त्व के निःकांक्षित अंग का नाश होता है और यह निदान नाम का आर्त-ध्यान भी है, लेकिन प्रथमानुयोग में निचली भूमिका वाले जीवों को कुदेव आदि की शरण में जाने से रोकने के लिये ऐसा करने वालों की प्रशंसा कर दी जाती है, लेकिन इस कारण से आत्म-कल्याण के इच्छुक जीवों को लौकिक कामना पूर्वक धर्म आराधाना[1] करना ठीक नहीं है। धर्मात्माओं को तो धर्म कार्यों में हमेंशा वीतरागता की प्राप्ति की भावना ही भानी चाहिये।

जैसा कि हमने देखा कि द्रव्यानुयोग की मुख्य विषय-वस्तु शुद्धात्मा और उसका अनुभव (ज्ञान-श्रद्धान-लीनता) है। उसके लिये प्रयोजनभूत-तत्वों का यथार्थ निर्णय व स्व-पर भेदविज्ञान अत्यंत आवश्यक (जरुरी) है इसलिये प्रयोजनभूत-तत्व और स्व-पर भेद विज्ञान भी द्रव्यानुयोग का विषय है।

द्रव्यानुयोग में आज्ञा की नहीं परीक्षा-तर्क[2], हेतु[3], दृष्टांत[4] व स्वानुभव[5] की प्रधानता है। क्योंकि द्रव्यानुयोग का उद्देश्य प्रयोजनभूत तत्वों में कौन से तत्व ज्ञेय हैं, कौन से तत्व हेय हैं और कौन से तत्व उपादेय हैं, यह निर्णय कराना है ताकि यथार्थ श्रद्धान हो, स्व-पर भेद विज्ञान का अभ्यास[6] हो और आत्मानुभूति प्रगट हो।

द्रव्यानुयोग में आत्मानुभव (शुद्ध भाव/वीतराग भाव) की महिमा बतलाते हैं और बाह्य व्रत, तप, शील, संयम और शुभ राग (अशुद्ध-भाव) को गौण[7] करते हैं ताकि जो जीव सिर्फ बाह्य-व्रत, तप आदि क्रियाओं और शुभ राग (अशुद्ध भाव) में ही मग्न[8] हैं व आत्मानुभव (वीतरागता/शुद्ध भाव) का पुरुषार्थ नहीं करते, उनका कल्याण हो और वे सच्चे मार्ग को पहिचाने, लेकिन ध्यान रहे कि यहाँ शुभ-भाव को गौण अशुभ-भाव में ले जाने के लिये नहीं करते हैं बल्कि वीतराग भाव (शुद्ध-भाव) में ले जाने के लिये करते हैं।

---

1.practice 2.logic 3.motive 4.examples 5.self-realization 6.practice 7.subside 8.satisfied

इसप्रकार द्रव्यानुयोग का विषय जीव तर्क, हेतु, दृष्टांत व स्वानुभव[1] आदि के माध्यम से समझ सके ऐसा स्थूल बुद्धिगोचर[2] है ।

प्रवेश : और करणानुयोग ?

समकित : करणानुयोग का विषय सूक्ष्म केवलीगम्य[3] होता है। इसमें तर्क[4] काम नहीं करता। इसमें तो भगवान की आज्ञा[5] की प्रधानता है। जैसे-पुद्गल परमाणु[6] आदि सूक्ष्म-पदार्थ[7], जीव के अबुद्धिपूर्वक होने वाले परिणाम[8] आदि अंतरित-पदार्थ[9] व सुमेरू पर्वत आदि दूरस्थ-पदार्थ[10]।

प्रवेश : सूक्ष्म केवलीगम्य मतलब ?

समकित : जिन सूक्ष्म, अंतरित व दूरस्थ पदार्थों (चीजों) को हम अपने अल्प-ज्ञान से नहीं जान सकते, सिर्फ केवली भगवान का पूर्ण-ज्ञान ही जिनको जान सकता है वे पदार्थ सूक्ष्म केवलीगम्य कहलाते हैं। **जैसे-** चौथे आदि गुणस्थानों में जब निश्चय धर्म-ध्यान होता है तब जीव शुद्ध-भाव का वेदन[11] करता है लेकिन वहाँ अबुद्धिपूर्वक शुभ-भावरूप सूक्ष्म रागांश (बाकी रहा राग) भी होता है, जो उस समय उस जीव के ज्ञान (उपयोग) का विषय नहीं बनता लेकिन केवली के ज्ञान में वह बराबर[12] जानने में आता है। ऐसे सूक्ष्म केवलीगम्य परिणामों[13] की बात करणानुयोग में आती है।

प्रवेश : तो क्या इसीलिये करणानुयोग, चौथे आदि गुणस्थानों में होने वाले निश्चय धर्म-ध्यान को शुभ-राग रूप बताता है और द्रव्यानुयोग (अध्यात्म ग्रंथ) शुद्ध-भाव रूप ?

समकित : हाँ, बिलकुल ! इसी अपेक्षा से द्रव्यानुयोग का विषय स्थूल है। क्योंकि सूक्ष्म केवलीगम्य परिणामों की बात उसमें नहीं आती, वह तो सिर्फ उस स्थूल परिणाम का कथन करता है जिसका ज्ञान/वेदन जीव कर सकता है।

1.self-realization 2.experiencable 3.unexperiencable 4.logic 5.instruction 6.molecule 7.micro-substances 8.subconscious-thoughts 9.internal-substances 10.remote-substances 11.experience 12.properly 13.thoughts

चौथे आदि गुणस्थानों में होने वाले निश्चय धर्म-ध्यान के समय जीव शुद्ध-भाव का वेदन कर रहा होता है इसलिये द्रव्यानुयोग इन गुणस्थानों में होने वाले निश्चय धर्म-ध्यान को शुद्ध-भाव रूप बताता है और जो जीव के ज्ञान (उपयोग) का विषय नहीं बनता, ऐसे शुभ-भाव रूप सूक्ष्म रागांश (बाकी रहा राग) जो कि केवलीगम्य होने से, करणानुयोग का विषय है, अतः करणानुयोग इन गुणस्थानों में होने वाले निश्चय धर्म-ध्यान को शुभ-भाव रूप बताता है।

प्रवेश : दोनो में से सच्चा कथन कौनसा है ?

समकित : अपनी-अपनी अपेक्षा दोनों ही कथन[1] सच्चे हैं। जैनी को तो अनेकांत और स्याद्वाद की ही शरण है, लेकिन एकांतवादी या तो करणानुयोग की बात का एकांत (पक्ष) कर लेता है या फिर द्रवायानुयोग की बात का। करणानुयोग का पक्षपाती चौथे आदि गुणस्थानों में होने वाले धर्म-ध्यान में शुद्ध-भाव का सर्वथा अभाव मानने लगता है और द्रव्यानुयोग का पक्षपाती वहाँ अबुद्धिपूर्वक होने वाले सूक्ष्म शुभ-रागांश का सर्वथा[2] अभाव मानने लगता है। दोनों ही एकांतवादी मिथ्यादृष्टि हैं।

प्रवेश : ओह ! चार अनुयोगों की विषय-वस्तु और कथन शैली का ज्ञान न होने के कारण जीव का कितना नुकसान होता है यह बात आज समझ में आयी है। इसीलिये अनेक शास्त्रों के जानकार भी चार अनुयोगों का अर्थ निकालने की पद्धति से अनजान[3] होने के कारण एकांतवादी बने रहते हैं। स्वयं भी कुमार्ग में लगते हैं और दूसरो को भी लगाते हैं।

समकित : हाँ ! चलो अब बहुत देर हो चुकी है। तुमने जो पाँचवें गुणस्थान वाले श्रावक की प्रतिमाओं के बारे में पूछा है, वह कल समझाऊँगा।

तीर्थंकर देव की दिव्यध्वनि जो कि जड़ है उसे भी कैसी उपमा दी है ! अमृत वाणी की मिठास देखकर द्राक्षें शरमाकर वनवास में चली गई और और इक्षु अभिमान छोड़कर कोल्हू में पिल गया ! ऐसी तो जिनेन्द्र वाणी की महिमा गायी है फिर जिनेन्द्र देव के चैतन्य की महिमा का तो क्या कहना !

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1.narration 2.completely 3.unaware

# 7

# पाँचवे गुणस्थान वाले श्रावक की प्रतिमायें

समकित : आज हम पाँचवे गुणस्थान वाले यानि कि स्वयं को जानकर, मानकर व स्वयं में दूसरे स्तर की लीनता करने वाले व्रती-श्रावक की प्रतिमाओं की चर्चा करेंगे।

प्रवेश : यह प्रतिमायें क्या होती हैं ?

समकित : मन, वचन, काय (3) कृत, कारित, अनुमोदना (3) ऐसी नौ (3x3=9) कोटि से पाली जाने वाली प्रतिज्ञाओं को प्रतिमा कहते हैं।

प्रवेश : क्या यह प्रतिमायें सिर्फ पाँचवें गुणस्थान वाले श्रावक को ही होती हैं ?

समकित : सच्ची तो उनको ही होती हैं और उन्हीं की यह नौ कोटि से पाली जाने वाली प्रतिज्ञायें व्यवहार से मोक्षमार्ग कहलाती हैं।

प्रवेश : मिथ्यादृष्टि की प्रतिमाओं का क्या फल होता है ?

समकित : मिथ्यादृष्टि की व्रत, प्रतिमायें सच्ची नहीं होती। हाँ यदि वह इनको मंदकषाय और निर्दोष-रीति-से[1] पालें तो पुण्य का बंध होने से उसके फल में स्वर्गादि प्राप्त होते हैं और यदि तीव्र कषाय यानि कि आकुलता पूर्वक व सदोष पालते हैं तो प्रतिज्ञा भंग होने से पाप का बंध ही होता है और उसके फल में वह दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

प्रवेश : सच्ची प्रतिमाओं का स्वरूप क्या है ?

समकित : जैसा कि हमने पहले देखा है कि चौथे गुणस्थान वाले अविरत सम्यकदृष्टि की आत्मलीनता पहले स्तर की रहती है और वह उस आत्मलीनता (वीतरागता) को बढ़ाने का प्रयास हमेंशा करता रहता है। उसके तीव्र पुरुषार्थ के कारण जब उसकी आत्मलीनता बढ़कर पाँचवें गुणस्थान लायक होने वाली हो तब उसको बाह्य प्रतिज्ञा धारण करने का शुभ राग सहज रूप से आये बिना नहीं रहता यानि कि आता ही

1.flawlessly

है। अतः वह बाह्य प्रतिज्ञा धारण करता है और अपने आत्मलीनता के तीव्र पुरुषार्थ के माध्यम से दूसरे स्तर की आत्मलीनता (शुद्धि) भी प्रगट कर लेता है और साथ में बाह्य प्रतिज्ञायें भी पलती रहती हैं।

**उसकी पाँचवें गुणस्थान लायक आत्मलीनता (वीतरागता) निश्चय प्रतिमा है और साथ में सहज रूप से रहने वाला बाह्य प्रतिज्ञा को पालने का शुभ राग व्यवहार प्रतिमा व तत्संबंधी[1] बाह्य-क्रिया[2] व्यवहार से व्यवहार प्रतिमा हैं**, क्योंकि जीव के भावों और बाह्य क्रिया के बीच निमित्त-नैमित्तिक संबंध होता है।

प्रवेश : व्रती श्रावक की कितनी प्रतिमायें होती हैं ?

समकित : श्रावक की एक के बाद एक ग्यारह प्रतिमायें होती हैं।

प्रवेश : हर प्रतिमा के साथ आत्मलीनता (वीतरागता), बाह्य प्रतिज्ञा पालने का शुभ राग व तत्संबंधी बाह्य क्रियाएं भी बढ़ती चली जाती होगीं ?

समकित : हाँ बिल्कुल ! जैसे मान लो कि चौथे गुणस्थान वाले जीव की आत्म-लीनता बढ़कर दूसरे स्तर की होने वाली हो तब उसको व्यवहार सम्यकदर्शन के अंगों का निर्दोष पालन, अष्टमूल गुण पालन और सप्त-व्यसन के त्याग की प्रतिज्ञा लेने का शुभ राग सहज रूप से आये बिना नहीं रहता और वो प्रतिज्ञा धारण कर लेता है व अपने तीव्र-पुरुषार्थ[3] के बल से दूसरे स्तर की आत्मलीनता भी प्राप्त कर लेता है और साथ में प्रतिज्ञा भी पलती रहती है।

पंचम गुणस्थान वाले श्रावक की दूसरे स्तर की आत्मलीनता (वीतरागता) **निश्चय दर्शन-प्रतिमा** है और व्यवहार सम्यकदर्शन के अंगों का निर्दोष पालन, अष्टमूल गुण पालन और सप्त-व्यसन त्याग की प्रतिज्ञा पालने का शुभ-राग **व्यवहार दर्शन-प्रतिमा** है व तत्संबंधी बाह्य-क्रिया **व्यवहार से व्यवहार दर्शन-प्रतिमा है।**

प्रवेश : ओह ! दर्शन-प्रतिमा पहली प्रतिमा है ?

1. related 2.physical-activities 3.intense-efforts

समकित : हाँ, दर्शन-प्रतिमा पहली प्रतिमा है और दूसरी प्रतिमा है- व्रत प्रतिमा।

प्रवेश : व्रत-प्रतिमा के बारे में बताईये न।

समकित : **मानलो** पहली दर्शन-प्रतिमा वाले श्रावक की आत्मलीनता (वीतरागता) 50 डिग्री है जब उसकी आत्मलीनता बढ़कर **मानलो** 50.1 डिग्री होने वाली हो तब उसको बारह प्रकार के व्रतों की प्रतिज्ञा लेने का शुभ-राग आये बिना नहीं रहता और वह प्रतिज्ञा ले लेता है और अपने तीव्र पुरुषार्थ के बल से 50.1 डिग्री आत्मलीनता भी प्राप्त कर लेता है और साथ में प्रतिज्ञा भी पलती रहती है।

पंचम गुणस्थान वाले श्रावक की 50.1 डिग्री आत्मलीनता (वीतरागता) निश्चय व्रत प्रतिमा है और बारह प्रकार के व्रत पालने का शुभ-राग व्यवहार दर्शन प्रतिमा है व तत्संबंधी बाह्य-क्रिया व्यवहार से व्यवहार दर्शन प्रतिमा है।

इसी प्रकार आगे के प्रतिमाओं के बारे में भी समझना। बस यह बात ध्यान रखने जैसी है कि आगे के प्रतिमा में पहले की प्रतिमा की प्रतिज्ञायें भी शामिल रहती हैं।

प्रवेश : बारह-व्रत कौन-कौन से हैं ?

समकित : पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत मिलाकर बारह व्रत हो जाते हैं। जिनकी चर्चा हम आगे के पाठों में करेंगे।

| प्रतिमा | निश्चय स्वरूप | व्यवहार स्वरूप |
|---|---|---|
| पहली | 50° आत्मलीनता | अष्टमूल गुण आदि की प्रतिज्ञा |
| दूसरी | 50.1° आत्मलीनता | बारह व्रत की प्रतिज्ञा |

ज्ञान-वैराग्यरूपी पानी अंतर में सींचने से अमृत मिलेगा, तेरे सुख का फव्वारा छूटेगा राग सींचने से दुःख मिलेगा। इसलिये ज्ञान-वैराग्यरूपी जलका सिंचन करके मुक्ति सुख रूपी अमृत प्राप्त कर।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

४

# पाँचवे गुणस्थान वाले श्रावक के अणुव्रत

समकित : जैसा कि हमने पिछले पाठ में देखा कि पाँचवें गुणस्थान वाले व्रती श्रावक की भूमिका योग्य आत्मलीनता (वीतरागता) निश्चय व्रत प्रतिमा है और उसके साथ पाया जाने वाला बारह प्रकार के व्रतों को पालने का शुभ राग, व्यवहार व्रत प्रतिमा व तत्संबंधी बाह्य क्रिया व्यवहार से व्यवहार व्रत प्रतिमा कहने में आती है।

निश्चय व्रत-प्रतिमा यानि कि वीतरागता तो एक ही प्रकार की है लेकिन व्यवहार व्रत-प्रतिमा यानि कि शुभ-राग बारह प्रकार का होता है।आज हम व्यवहार व्रत-प्रतिमा यानि कि बारह व्रतों की चर्चा करेंगे।

पहली प्रतिमा वाले श्रावक को अष्टमूल गुण पालन और सप्तव्यसन त्याग की प्रतिज्ञा है। स्थूलरूप-से[1] पाँच अणुव्रत इनमें शामिल[2] हो जाते हैं। अतः पहली प्रतिमा वाले श्रावक को उपचार से अणुव्रत कहने में आते हैं।

प्रवेश : कैसे ?

समकित : अष्टमूल गुण पालन यानि कि तीन-मकार और पाँच उदम्बर फलों के त्याग में स्थूल अहिंसाणुव्रत आ गया व सप्त-व्यसन के त्याग में स्थूल रूप से सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत आ गया और इनके त्याग में लोभ कषाय की मंदता हुई तो परिग्रह-परिमाण व्रत भी आ गया। इसलिये पहली प्रतिमा में भी उपचार से पाँच अणुव्रत कहे गये है।

असल रूप में तो दूसरी व्रत प्रतिमा से ही अणुव्रत पलते हैं।

प्रवेश : अच्छा !

समकित : दूसरी प्रतिमा से पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, प्रतिज्ञा पूर्वक पलतें हैं, जो कि निम्न हैं :

---

1. roughly 2.include

**पाँच अणुव्रतः**

1. अहिंसाणुव्रत 2.सत्याणुव्रत 3.अचौर्याणुव्रत 4.ब्रह्मचर्याणुव्रत
5. परिग्रह-परिमाण व्रत

**तीन गुणव्रतः**

1. दिग्व्रत 2. देशव्रत 3. अनर्थदंड-त्यागव्रत

**चार शिक्षाव्रतः**

1. सामायिक व्रत 2. प्रोषध-उपवास व्रत 3.भोग-उपभोग परिमाण व्रत
4. अतिथि-संविभाग व्रत

प्रवेश : कृपया समझाईये ?

समकित : **अणुव्रतः** दूसरी प्रतिमा वाले श्रावक की भूमिका योग्य आत्मलीनता होने से उतनी तो वीतरागता है और शेष अनात्मलीनता संबंधी राग बाकी[1] है। इस बाकी रह गये राग में शुभ और अशुभ राग दोनों का अंश[2] बराबर[3] है इसलिये व्यवहार हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह रूप पाँच पापों का पूरी तरह से त्याग करने में काबिल न होने के कारण अणुरूप-से[4] इनका त्याग करता है। इसी को अणुव्रत कहते हैं। मुनिराज संपूर्णरूप-से[5] इन पाँच पापों का त्याग करते हैं, इसलिये उनके महाव्रत होते हैं।

**1. अहिंसाणुव्रतः** व्यवहार हिंसा चार प्रकार की होती हैः

**(अ) संकल्पी हिंसाः** संकल्प-पूर्वक[6] की गयी हिंसा (जीव-घात) संकल्पी हिंसा है। ऐसी हिंसा बिना क्रूर परिणामों के नहीं हो सकती जैसे-चूहे मारने की दवाई रखना, कॉकरोच स्प्रे छिड़कना आदि।

**(ब) उद्योगी हिंसाः** व्यापार आदि कार्यों में बहुत सावधानी[7] वर्तने के बाद भी जो हिंसा हो जाती है उसे उद्योगी हिंसा कहते है। ध्यान रहे हिंसक चीजों का व्यापार उद्योगी नहीं, संकल्पी हिंसा में शामिल है।

1. remaining 2.fraction 3.equal 4.partially 5.completely 6.intentionally 7.precausions

(स) **आरंभी हिंसाः** गृहस्थी-के-कार्यों[1] में बहुत सावधानी वर्तने के बाद भी जो हिंसा हो जाती है वह आरंभी हिंसा है।

(द) **विरोधी हिंसाः** अपनी, अपने परिवार, धर्म, समाज व देश की रक्षा के लिये बिना इच्छा के मजबूरी में की गयी हिंसा विरोधी हिंसा है।

दूसरी प्रतिमा से श्रावक संकल्पी हिंसा का तो प्रतिज्ञा पूर्वक त्यागी होता है, बाकी तीनों प्रकार की हिंसा से भी जितना हो सके उतना बचने का प्रयास करता है।

प्रवेश : यह श्रावक संकल्पी हिंसा का प्रतिज्ञापूर्वक त्यागी है, विरोधी हिंसा का नहीं। जबकि विरोधी हिंसा में तो संज्ञी पाँच इन्द्रिय मनुष्यों का प्राण-घात होता है, जो संकल्पी हिंसा में शायद ही होता हो।

समकित : हिंसा और अहिंसा का संबंध क्रिया से नहीं, अभिप्राय और परिणामों (भावों) से है। संकल्पी हिंसा में अभिप्राय और परिणाम मारने के हैं जबकि विरोधी हिंसा में मुख्यरूप से बचाने (रक्षा) के।

**2. सत्याणुव्रतः** व्यवहार असत्य मुख्य रूप से चार प्रकार के हैं:

(अ) **सत् का अपलापः** जो है, उसको नहीं है ऐसा कहना सत् का अपलाप है।

(ब) **असत् का उद्भावनः** जो नहीं है, उसको है ऐसा कहना असत् का उद्भावन है।

(स) **अन्यथा प्ररूपणः** कुछ का कुछ कहना, अन्यथा प्ररूपण है।

(द) **गर्हित वचनः** आगम-विरुद्ध, निंदनीय[2], कलहकारक[3], पर-पड़ीकारक[4], हिंसा-पोषक[5], पर-अपवाद कारक[6] आदि वचनों को गर्हित वचन कहते हैं।

यह श्रावक सभी प्रकार के असत्यों का अणु (आंशिक/एकदेश) रूप से त्यागी होता है।अतः इसके इस व्रत को सत्याणुव्रत कहते हैं।

1.household-tasks 2.cheap 3.provoking 4.hurting 5.violent 6.rumourous

**3. अचौर्याणुव्रतः** किसी भी चीज को उसके मालिक[1] की आज्ञा बिना ले लेना या किसी को दे देना व्यवहार चोरी है। ऐसी चोरी का त्याग अचौर्याणुव्रत है।

प्रवेश : यह तो महाव्रत हो गया, क्योंकि पूरी तरह से चोरी का त्याग हो गया।

समकित : नहीं, यह श्रावक पानी व मिट्टी को बिना पूछे ही ले लेता है इसलिए अणु (आंशिक/एकदेश) रूप से ही चोरी का त्यागी होने से, इसका यह व्रत अचौर्याणुव्रत कहलाता है।

**4. ब्रह्मचर्याणुव्रतः** परस्त्री-सेवन का त्याग ब्रह्मचर्याणुव्रत है। यह श्रावक अभी स्व-स्त्री सेवन के त्याग में सक्षम[2] नहीं है लेकिन परस्त्री सेवन का पूर्ण रूप से त्यागी है इसलिये इस व्रत को स्व-दार संतोष (स्व-पत्नी संतोष) व्रत भी कहते हैं।

**5. परिग्रह परिमाण व्रतः** चौबीस प्रकार के परिग्रह का आंशिक रूप से त्याग परिग्रह परिमाण व्रत है। यह श्रावक पूरी तरह से परिग्रह[3] का त्याग नहीं कर सकता लेकिन परिग्रह को सीमित[4] कर लेता है यानि कि आंशिक रूप से परिग्रह का त्यागी है।

अंतरंग-परिग्रहों[5] में इस श्रावक का मिथ्यात्व परिग्रह का तो पूरी तरह से त्याग है व क्रोध आदि कषाय रूप परिग्रह का भी भूमिका योग्य त्याग है एवं बहिरंग-परिग्रह[6] जमीन-मकान, धन-धान्य[7], नौकर-नौकरानी, कपड़ा-वर्तन, यान-शयनासन[8] आदि को भी सीमित कर लिया है।

प्रवेश : गुणव्रत और शिक्षाव्रत ?

समकित : वह बाद में। आज के लिये इतना ही काफी है।

> यथार्थ रुचि सहित शुभभाव वैराग्य एवं उपशम-रस से सरोबोर होते हैं, और यथार्थ रुचि बिना, वह के वही शुभ भाव रूखे एवं चंचलता युक्त होते हैं।
>
> **-बहिनश्री के वचनामृत**

1.owner 2.capable 3.possessions 4.limited 5.internal-possessions 6.external-possessions 7.wealth-eatables 8.vehicle&furniture

# 9

# गुण-व्रत और शिक्षा-व्रत

समकित : पिछले पाठ में हमने दूसरी प्रतिमाधारी श्रावक के बारह व्रतों में से पाँच अणुव्रत देखे। आज हम बाकी रहे तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों की चर्चा करेंगे।

गुणव्रत : **गुण-व्रतः** अणुव्रतों की रक्षा और उनमें वृध्दि के लिये तीन गुणव्रत होते हैं। गुणों की रक्षा और वृध्दि करने वाले होने के कारण ही इन्हें गुणव्रत कहते हैं। यह तीन प्रकार के हैं:

**1. दिग्व्रतः** दूसरी प्रतिमा में राग (कषाय) की मंदता अधिक हो जाने से यह श्रावक दशों दिशाओं[1] में आने-जाने की सीमा[2] जीवन-भर[3] के लिये निश्चित[4] कर लेता है।

जैसे पूर्व दिशा में सम्मेंदशिखर से, पश्चिम में गिरनार से, उत्तर में अष्टापद से और दक्षिण में जैनबद्री से आगे नहीं जाऊँगा आदि।

**2. देशव्रतः** दिग्व्रत में बाँधी गयी सीमा को स्थान, समय आदि की मर्यादा[5] पूर्वक और भी सीमित कर लेना।

जैसे गिरनार में भी फलाना मंदिर या फलानी गली, बाजार तक ही जाऊँगा, उससे आगे नहीं। उधर भी रुकूँगा तो इतने दिन या इतने धंटे ही रुकूँगा, उससे ज्यादा नहीं।

**3. अनर्थदण्ड-त्याग व्रतः** अनर्थ यानि कि बिना मतलब (प्रयोजन)। बिना मतलब ही पाप कार्यों को करना अनर्थदण्ड है। अनर्थदण्ड कई प्रकार के होते हैं, उनमें से कुछ निम्न हैं:

**अ) अपध्यान अनर्थदण्डः** बिना मतलब ही किसी की बर्बादी, हार-जीत आदि का विचार करते रहना।

---

1.directions 2.limit 3.life-time 4.fix 5.limit

**ब) पापोपदेश अनर्थदण्डः** बिना मतलब ही हिंसादि पाप वाले व्यापार[1] और खेती[2] आदि की सलाह[3] दूसरों को देते रहना।

**स) प्रमाद-चर्या अनर्थदण्डः** बिना-मतलब-ही[4] जमीन खोदना, पानी फैलाना, आग जलाना, पंखा चलाना, पेड़-पौधे फूल-पत्ती आदि तोड़ना यानि स्थावर जीवों की हिंसा करना।

**द) हिंसादान अनर्थदण्डः** दूसरों को हिंसक उपकरण[5] जैसे चाकू, तलवार, बंदूक, हल आदि देना।

**इ) दुःश्रुति अनर्थदण्डः** राग-द्वेष पैदा करने वाली विकथा[6], उपन्यास[7] या वासना[8] पैदा करने वाली कथाओं[9] को सुनना-देखना।

दूसरी प्रतिमा वाला श्रावक ऐसे अनेक प्रकार के अनर्थदण्ड का त्यागी होता है। उसकी इस प्रतिज्ञा को अनर्थदण्ड-त्याग व्रत कहते हैं।

**शिक्षाव्रतः** महाव्रतों की शिक्षा यानि कि महाव्रतों के अभ्यास[10] रूप शिक्षा व्रत होते हैं। यह चार होते हैं:

1. **सामायिक व्रतः** समता-भाव ही सामायिक है। आत्मलीनता होने पर सभी वस्तुओं में राग-द्वेष समाप्त होने से समता-भाव प्रगट हो जाता है। आत्मलीनता के बिना राग-द्वेष के अभाव रूप सच्चा समता-भाव प्रगट नहीं हो सकता। इसलिये आत्मलीनता के बिना सच्ची सामायिक नहीं हो सकती। यह श्रावक प्रतिदिन नियमरूप से सुबह, दोपहर और शाम एकांत-स्थान में कम से कम दो घड़ी (48 मिनिट) सामायिक करता है। यही उसका सामायिक शिक्षा व्रत है।

2. **प्रोषध-उपवास व्रतः** उप यानि पास[11] और वास यानि ठहरना[12]। कषाय, विषय और आहार के त्याग पूर्वक आत्मा के पास (समीप) ठहरना ही उपवास है। आत्मा के पास ठहरने यानि कि आत्मालीनता होने पर कषाय, पाँच इंद्रियों के विषयों को भोगने का भाव और आहार (भोजन) करने की इच्छा का न उत्पन्न होना ही सच्चा उपवास है। दूसरी प्रतिमा से श्रावक पर्व (अष्टमी, चतुर्दशी आदि) के दिनों में

1. business 2.farming 3.advise 4.purposelessly 5.equipments 6.nonsense-talks 7.nobel 8.eroticism 9.stories 10.practice 11.close 12.stay

नियम-पूर्वक[1] सभी प्रकार के आरंभ(गृहकार्य आदि)[2] से निवृत्त[3] होकर, एकांत स्थान में सामायिक करता रहता है। यह उसका प्रोषध-उपवास व्रत है।

प्रोषध-उपवास तीन प्रकार से किया जाता है:

(अ) उत्तम[4] (ब) मध्यम[5] (स) जघन्य[6]

(अ) उत्तमः पर्व के एक-दिन-पहले[7] और एक दिन बाद[8] कषाय, विषय का त्याग कर एकासन-पूर्वक व पर्व के दिन पूरी तरह से आहार को छोड़कर, आरंभ (गृहकार्य आदि) से निवृत्ति लेकर एकांत स्थान में सामायिक करते रहना उत्तम प्रषोध-उपवास है।

(ब) मध्यमः केवल पर्व के दिन कषाय, विषय व आहार को पूरी तरह से को छोड़कर, आरंभ (गृहकार्य आदि) आदि से निवृत्ति लेकर एकांत स्थान में सामायिक करते रहना मध्यम प्रोषध-उपवास है।

(स) जघन्यः पर्व के दिन कषाय, विषय के त्याग और एकासन-पूर्वक, आरंभ (गृह कार्य आदि) से निवृत्ति लेकर एकांत स्थान में सामायिक करते रहना, जघन्य प्रोषध-उपवास है ।

3. **भोग-उपभोग परिमाण व्रतः** परिग्रह-परिमाण व्रत में जो परिग्रह सीमित[9] किया था उस सीमित परिग्रह में भी भोग और उपभोग की सीमा कर लेना भोग-उपभोग परिमाण व्रत है।

जिन चीजों का सेवन[10] एकबार किया जा सके उन्हें भोग सामग्री कहते हैं, जैसे-भोजन आदि और जिन चीजों का सेवन बार-बार किया जा सके उन्हें उपभोग सामग्री कहते हैं, जैसे-वस्त्र आदि।

4. **अतिथि-संविभाग व्रतः** स्वयं के लिये बनाये गये शुद्ध, प्रासुक और मर्यादित भोजन में से विभाग(हिस्सा)करके सत्पात्रों[11] को विधि-पूर्वक[12] दान देना अतिथि-संविभाग व्रत है। सत्पात्र तीन प्रकार के होते हैं:

1.pledgedly 2.household-tasks etc 3.free 4.high-level 5.medium-level 6.low-level 7.previous-day 8.next-day 9.limited 10.consumption 11.deserved-one 12.systematically

1. उत्तम पात्र : मुनिराज

2. मध्यम पात्र : व्रती श्रावक

3. जघन्य पात्र : अविरत सम्यकदृष्टि

प्रवेश : भाईश्री ! कुपात्र...?

समकित : मिथ्यादृष्टि जीव कुपात्र है। कुपात्र को दान देने का फल कुभोग भूमि है। जो पात्र नहीं ऐसे जीव अपात्र हैं, उनको धर्म बुद्धि से दान देने का फल नरक है।

ध्यान रहे ! अविरत सम्यकदृष्टि और दशवीं प्रतिमा तक के व्रती श्रावक के उद्देश्य से भोजन बनाया जा सकता है लेकिन ग्यारहवीं प्रतिमाधारी श्रावक, आर्यिका और मुनिराज के उद्देश्य से भोजन नहीं बनाया जा सकता क्योंकि उनका उद्दिष्ट भोजन का त्याग है ।

इसप्रकार निश्चय व्रत-प्रतिमा (भूमिका योग्य आत्मलीनता) के साथ बारह प्रकार के बाह्य व्रत पालने का सहज शुभ-राग व्यवहार प्रतिमा कहलाता है और तत्संबंधी बाह्य क्रिया व्यवहार से व्यवहार प्रतिमा कहलाती है, क्योंकि **जीव के भावों और बाह्य क्रिया के बीच निमित्त-नैमित्तिक संबंध होता है।**

निश्चय व्रत के साथ जो बाह्य व्रतादि पालने का शुभ राग व बाह्य क्रिया है वही सच्चे व्यवहार व्रत हैं क्योंकि निश्चय के बिना सच्चा व्यवहार नहीं होता।

प्रवेश : बारह व्रतों का स्वरूप तो अच्छी तरह से समझ में आ गया अब पंचम गुणस्थान वाले श्रावक के दैनिक[1] षट्कर्म[2] के बारे में और समझा दीजिये।

समकित : आज नहीं कल।

1.day-to-day 2.six-practices

# 1

# पाँचवे गुणस्थान वाले श्रावक के दैनिक कर्म

समकित : आज हम पंचम गुणस्थान वाले श्रावक के द्वारा प्रतिदिन अवश्यरूप-से[1] किये जाने वाले दैनिक कर्मों की चर्चा करेंगे।

प्रवेश : वे दैनिक कर्म कौनसे हैं ?

समकित : जो रोज करने लायक हों उन्हें दैनिक कर्म कहते हैं। निश्चय-से[2] तो रोज करने लायक एक ही कर्म है और वह है-स्वयं को जानना, स्वयं में अपनापन करना व स्वयं में लीन होना।

प्रवेश : यह तो तीन हो गये ?

समकित : यह तीनों कार्य एक ही समय में यानि कि एक ही साथ होते हैं। तीन भेद तो मात्र समझाने के लिये किये जाते हैं।

प्रवेश : इसका मतलब यह हुआ कि स्वयं को जानना, स्वयं में अपनापन करना और स्वयं में लीन होना यानि कि एक **अभेद-रत्नत्रय** ही निश्चय दैनिक कर्म है ?

समकित : हाँ, बिल्कुल और इस निश्चय दैनिक कर्म के साथ प्रतिदिन अवश्य रूप से होने वाला छह प्रकार का शुभ राग व्यवहार से दैनिक कर्म कहने में आता है व तत्संबंधी बाह्य क्रिया व्यवहार से व्यवहार दैनिक कर्म कहने में आती है।

प्रवेश : वे प्रतिदिन होने वाले छः प्रकार के व्यवहार दैनिक कर्म कौन-कौन से हैं ?

समकित : 1. देवपूजा 2. गुरु-उपासना 3. स्वाध्याय 4. संयम 5. तप 6. दान

**1. देवपूजाः** पाँचवे गुणस्थान योग्य आत्मलीनता रूप निश्चय पूजा के साथ होनेवाला सच्चे-देव यानि कि वीतरागी और सर्वज्ञ जिनेन्द्र

1.essentially 2.actually

देव की पूजा करने का शुभ राग व क्रिया व्यवहार देव पूजा है। व्यवहार देव पूजा भी दो प्रकार की है:

व्यवहार 1.भाव-पूजा 2.द्रव्य-पूजा

सच्चे देव का स्वरूप समझकर उनके वीतरागता-सर्वज्ञता आदि गुणों का भावपूर्वक स्तवन करना **भाव-पूजा** है और यही कार्य विधिपूर्वक[1] शुद्ध और प्रासुक द्रव्यों का अवलंबन (सहारा) लेकर करना **द्रव्य-पूजा** है।

प्रवेश : और गुरु की वैयावृत्ति[2] करना यह गुरु उपासना है ?

समकित : **2. गुरु-उपासना:** गुरु यानि कि आत्मा। आत्माकी उपासना (लीनता) रूप निश्चय गुरु-उपासना के साथ सच्चे गुरु (आचार्य, उपाध्याय और साधु) का स्वरूप समझ कर उनके बताये हुए मार्ग पर चलकर उनकी वैयावृत्ति आदि करना व्यवहार गुरु उपासना है।

**3. स्वाध्याय:** स्व का अध्ययन (लीनता) रूप निश्चय स्वाध्याय के साथ जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे गये वीतरागता का पोषण करने वाले सत् शास्त्रों का पठन-पाठन, अध्ययन-मनन आदि करना व्यवहार स्वाध्याय है।

व्यवहार स्वाध्याय के पाँच भेद हैं:

1. वाचना- वीतरागी सत् शास्त्रों को स्वयं पढ़ना और दूसरों को पढ़ाना।
2. पृच्छना- शंका-समाधान[3] के लिये प्रश्न करना।
3. अनुप्रेक्षा- स्वाध्याय के विषय (वस्तु-स्वरूप) का चिंतन-मनन करना।
4. आम्नाय- शास्त्र-पाठों और गाथाओं को शुद्धि-पूर्वक पढ़ना[4]।

1.systematically 2.service 3.doubt-clearance 4.chanting

5. धर्मोपदेश- प्रवचन, वचनिका, धार्मिक-कक्षा आदि लेना।

प्रवेश : और संयम ?

समकित : **4. संयमः** स्वयं में संयमित (लीन) होने रूप निश्चय संयम के साथ यथायोग्य इन्द्रिय-संयम[1] और प्राणी-संयम[2] को पालने का शुभ राग व क्रिया व्यवहार संयम कहलाता है।

छः काय (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस काय) के जीवों की हिंसा के त्याग का शुभ राग व क्रिया छः प्रकार का प्राणी संयम है।

पाँच इंन्द्रिय और मन के विषयों का त्याग करने का शुभ राग व क्रिया छः प्रकार का इंद्रिय संयम है। दोनों मिलाकर संयम कुल[3] बारह प्रकार का हो जाता है। पाँचवे गुणस्थावर्ती श्रावक इन बारह प्रकार के संयम को आंशिक रूप से पालते हैं, जबकि मुनिराज इसको संपूर्ण रूप से पालते हैं।

**5. तपः** इसी प्रकार आत्म-स्वभाव में प्रतपन यानि की लीनता बढ़ाने के उग्र पुरुषार्थ रूप निश्चय तप के साथ बारह प्रकार की शरीर-आश्रित[4] तपस्या करने का शुभ राग व क्रिया व्यवहार तप है।

प्रवेश : बारह प्रकार के व्यवहार-तप कौन-कौन से हैं ?

समकित : 1. अनशन 2. अवमौदर्य 3. वृत्ति-परिसंख्यान 4. रस-परित्याग 5. काय-क्लेश 6. विविक्त-शय्यासन 7. प्रयाश्चित 8. विनय 9. वैयावृत्य 10. स्वाध्याय 11. व्युत्सर्ग 12. ध्यान

इनमें शुरु के छः तप बहिरंग-व्यवहार तप है और बाद के छः तप अंतरंग-व्यवहार तप हैं।

प्रवेश : ऐसा क्यों ?

समकित : शुरु के छः अनशन आदि तपों का स्वरूप कुछ ऐसा है कि इनको करने वाला व्यक्ति बाहर से देखने वालों को तपस्वी[5] लगता है इसलिये इन्हें बहिरंग[6] तप कहा है।

1.sensual-control 2.violence-control 3.total
4.physical 5. ascetic 6.external

बाद के प्रयाश्चित आदि छः तपों का स्वरूप कुछ ऐसा है कि इनको करने वाला व्यक्ति बाहर से देखने वालों को तपस्वी नहीं लगता, इसलिये इन्हें अंतरंग[1] तप कहा गया है। यहाँ अंतरंग और बहिरंग दोनों ही तप शुभ-राग रूप होने से व्यवहार-तप हैं।

प्रवेश : इनका स्वरूप समाझाईये न ?

समकित : ठीक है!

1. **अनशन तप–** सभी प्रकार के आहार[2] का त्याग अनशन तप है।

2. **अवमौदर्य तप–** भूख से कम आहार लेना अवमौदर्य (ऊनोदर) तप है।

3. **वृत्ति परिसंख्यान तप–** भोजन[2] संबंधी वृत्तियों[3] को अटपटे नियमों[4] द्वारा सीमित[5] कर लेना वृत्ति परिसंख्यान तप है।

4. **रस परित्याग तप–** एक, दो या सभी रसों[6] का त्याग करके भोजन लेना रस-परित्याग तप है।

5. **काय क्लेश तप–** शरीर के प्रति निर्मोहता[7] की परीक्षा करने के लिये शरीर को तरह-तरह की प्रतिकूलताएँ[8] देना काय-क्लेश तप है।

6. **विविक्त शय्यासन तप–** बाधा[9] रहित, एकांत व प्रासुक स्थान में एक ही आसन[10] में शरीर को विश्राम देना विविक्त-शय्यासन तप है।

7. **प्रयाश्चित तप–** प्रमाद[11] वश व्रतों में लगने वाले दोषों का परिमार्जन करना प्रयाश्चित तप है।

8. **विनय तप–** दर्शन, ज्ञान व चारित्र में अपने से ज्येष्ठ[12] व श्रेष्ठ[13] गुणी[14] जनों का आदर करना विनय तप है।

9. **वैयावृत्य तप–** बाल, वृद्ध व रोगी साधु व श्रावकों की सेवा-सुश्रुषा[15] या परिचर्या[16] करना वैयावृत्य तप है।

10. **स्वाध्याय तप–** वीतरागी शास्त्रों का स्वाध्याय करना स्वाध्याय तप है।

1.internal 2.diet 3.instincts 4.regulations 5.limited 6.taste 7.detachment 8.rough-treatment 9.disturbance 10.posture 11.carelessness 12.senior 13.eminent 14.deserving 15.service 16.care-taking

प्रवेश : स्वाध्याय को परम् तप कहा गया है, ऐसा क्यों ?

समकित : क्योंकि स्वाध्याय तप के माध्यम से ही सभी प्रकार के तपों का वास्तविक (असली) स्वरूप समझा जा सकता है । जब तक हम तप के असली स्वरूप को समझेंगे नहीं, तब तक सच्चे तप को करेंगे कैसे ? इसीलिये सच्चे तप को करने के लिये स्वाध्याय तप करना अत्यंत आवश्यक[1] है। इसलिये इसे ही परम् तप कहा गया है।

**11. व्युत्सर्ग तप**- शरीर आदि से उपयोग हटा कर आत्मा में लगाने का अभ्यास[2] करना व्यवहार-व्युत्सर्ग तप है। शरीर आदि से उपयोग हटकर आत्मा में लग जाना यह निश्चय-व्युत्सर्ग है। व्युत्सर्ग को **कायोत्सर्ग** भी कहते हैं। ध्यान रहे अंगुली[3] पर मंत्रादि गिनना कायोत्सर्ग में लगने वाला अंगुली-चालन नाम का दोष[4] है।

**12. ध्यान तप-** चित्त को आत्मा में एकाग्र[5] करने का अभ्यास व्यवहार-ध्यान तप है। आत्मा में एकाग्र हो जाना निश्चय-ध्यान है।

पाँचवे गुणस्थानवर्ती श्रावक को इन बारह प्रकार के तपों को अपनी शक्ति[6] अनुसार करने का शुभ-राग आये बिना नहीं रहता।

प्रवेश : और दान ?

समकित : **6.दानः** स्वयं को शुद्ध भावों का दान (आत्मलीनता) रूप निश्चय दान के साथ होने वाला चार प्रकार के बाह्य दान देने का शुभ राग व्यवहार दान कहलाता है।

व्यवहार दान चार प्रकार के होते हैं जो कि निम्न हैं:

1. आहार दान 2. औषधि दान 3. अभय दान 4. ज्ञान दान

**1. आहार दान-** पहले बताये हुए तीन प्रकार के सत्पात्रों को विधिपूर्वक शुद्ध, प्रासुक और मर्यादित आहार (भोजन) देना आहार दान है।

1.essential 2.practice 3.fingers 4.fault 5.zconcentrate 6.capability 7.medicine

**2. औषधि दान–** तीन प्रकार के सत्पात्रों को शुद्ध, प्रासुक और मर्यादित औषधि[1] देना औषदि दान है।

**3. अभय दान–** अपने व्यवहार द्वारा सभी जीवों को भय-रहित[2] करना अथवा प्राण दान देना अभय दान है।

**4. ज्ञान दान–** पात्र जीव को देखकर वीतरागी तत्व-ज्ञान[3] प्रदान करना ज्ञान दान है।

यह थे पाँचवे गुणस्थान वाले श्रावक के दैनिक कर्म। ध्यान रहे निश्चय दैनिक कर्म के बिना यह छः प्रकार का शुभ-राग व क्रिया पुण्य बंध का कारण तो है लेकिन व्यवहार से भी सच्चे दैनिक कर्म या धर्म नाम नहीं पाता। इसलिये हमें निश्चय दैनिक कर्म को करने का प्रयास[4] अवश्य करना चाहिये। तभी हमारे पूजा आदि कर्म सच्चे व्यवहार दैनिक कर्म कहलायेंगे।

प्रवेश : यह सब तो बहुत अच्छे से समझ में आ गया। कृपया पूजा का स्वरूप और विस्तार से समझाईये क्योंकि पूजा तो हम रोज ही करते हैं, तो क्यों न उसका सही स्वरूप समझकर करें।

समकित : हमारा अगला विषय यही है।

**पूजा**

- निश्चय पूजा (आत्मालीनता)
- व्यवहार पूजा (जिनेन्द्र गुण स्तवन)
  - भाव-पूजा (द्रव्य रहित)
  - द्रव्य-पूजा (द्रव्य सहित)

1.medicine 2.fearless/relaxed 3.preachings 4. effort

**2**

# पूजा

जैसा कि हमने पिछले पाठ में देखा कि पूजा दो प्रकार की होती हैः

1. निश्चय पूजा 2. व्यवहार पूजा

और व्यवहार पूजा भी दो प्रकार की होती हैः

1. भाव पूजा 2. द्रव्य पूजा

प्रवेश : मतलब, भाव-पूजा में भावों की प्रधानता[1] है और द्रव्य-पूजा में द्रव्य (पूजा-सामग्री) की ?

समकित : नहीं। दोनों ही पूजा में भावों की ही प्रधानता है।

प्रवेश : यदि दोनों में भावों की ही प्रधानता है, तो फिर द्रव्य की जरूरत ही क्या है?

समकित : ऊँची-दशा वाले जीवों को भाव टिकाने के लिये अवलम्बन (सहारे) की जरूरत नहीं पड़ती, लेकिन जो जीव निचली-दशा में हैं उन्हें भावों को टिकाने के लिये अवलंबन (सहारे) की जरुरत पड़ती है इसलिये वह द्रव्य का अवलंबन लेते हैं। लेकिन यह अवलंबन भी भावों के लिये ही है। इसलिये प्रधानता तो द्रव्य-पूजा में भी भावों की ही है। भाव बिना की क्रिया कुछ भी फल नहीं देती।

प्रवेश : द्रव्य (पूजा सामग्री) किस प्रकार अवलंबन है ?

समकित : पूजा के समय, जब उपयोग[2] आत्मा-परमात्मा की भक्ति से बाहर भटके तो द्रव्य को देख फिर से भक्ति में लग जाता है क्योंकि जल-फल आदि द्रव्य आत्मा-परमात्मा के गुणों के प्रतीक[3] स्वरूप हैं। जैसे-

1.significance 2.attention 3.symbol

**जल** निर्मलता[1] का प्रतीक है। परमात्मा पर्याय में निर्मल और आत्मा स्वभाव से निर्मल है।

**चंदन** शीतलता[2] का प्रतीक है। परमात्मा पर्याय में शीतल और आत्मा स्वभाव से शीतल है।

**अक्षत** अखंडता[3] का प्रतीक है। परमात्मा पर्याय में अखंडित और आत्मा स्वभाव से अखंडित है।

**पुष्प** कोमलता/सरलता[4] का प्रतीक है। परमात्मा पर्याय में सरल और आत्मा स्वभाव से सरल है।

**नैवेद्य** रस-परिपूर्णता[5] का प्रतीक है। परमात्मा पर्याय में आनंद रस से परिपूर्ण और आत्मा स्वभाव से आनंद रस से परिपूर्ण है।

**दीपक** स्व-पर प्रकाशकता[6] का प्रतीक है। परमात्मा पर्याय में पूर्ण स्व-पर प्रकाशक हो गये हैं और आत्मा स्वभाव से स्व-पर प्रकाशक है।

**धूप** ऊर्ध्वगमन (ऊपर की ओर जाना)[7] का प्रतीक है। परमात्मा का पर्याय में ऊर्ध्वगमन हो गया है और आत्मा ऊर्ध्वगमन स्वभावी है।

**फल** उपलब्धि (सुफल)[8] का प्रतीक है। परमात्मा ने पर्याय में मोक्ष रूपी उपलब्धि (सुफल) को प्राप्त कर लिया है। आत्मा स्वभाव से मुक्त (मोक्ष स्वाभावी) है।

इसप्रकार जब पूजक के भाव, पूज्य (आत्मा-परमात्मा) से हटकर बाहर जाते हैं तो सबसे पहले हाथ में ली हुई द्रव्य पर जाते हैं। जिसे देखकर उसे फिर से आत्मा-परमात्मा का स्मरण[9] हो जाता है।

प्रवेश : क्या ये आठ ही पूजा के द्रव्य हैं ?

समकित : वर्तमान परंपरा में तो यह आठ द्रव्य ही प्रचलित हैं। शक्ति-अनुसार[10] कम या ज्यादा भी हो सकते हैं, लेकिन जितने भी हों सभी शुद्ध, प्रासुक, मर्यादित और अहिंसक होने चाहिये। अशुद्ध, अप्रासुक,

1.purity 2.calmness 3.integrity 4.simplicity 5.bliss 6.illuminancy
7.upright-motion 8.achievement 9.remembrance 10.according to capability

बाजारु, अमर्यादित और हिंसक द्रव्यों से पूजा करने से पाप का बंध होता है क्योंकि अन्य क्षेत्र में किया हुआ पाप तो धर्म क्षेत्र में नष्ट हो जाता है लेकिन धर्म क्षेत्र में किया हुआ पाप कहाँ जाकर नष्ट होगा? वह तो वज्रलेप के समान मजबूत हो जाता है। उसे नष्ट करना मुश्किल हो जाता है।

प्रवेश : पूजा की विधि क्या है ?

समकित : सबसे पहले छने जल से स्नान करके, धुले-हुये शुद्ध, सूती, सादा, सफेद एवं पारंपारिक-वस्त्र[1] पहिनकर, तिलक लगाकर, विनय[2] सहित, विधि-विधान पूर्वक[3] जिनेन्द्र देव की पूजा करनी चाहिये।

प्रवेश : सुना है कि रेशमी-वस्त्र[4] पहिनकर पूजा करनी चाहिये ?

समकित : बिल्कुल नहीं ! आजकल रेशम[5] बहुत ही हिंसा से बनता है। एक मीटर रेशम का कपड़ा बनाने के लिये हजारों रेशम के कीड़ों[6] को मारा जाता है इसलिये रेशम तो पूजा में क्या कभी भी पहिनने लायक नहीं है। उसको तो छूने में भी पाप है।

इसी प्रकार हिंसक सौंदर्य-प्रसाधन-सामग्री[7], परफ्यूम, स्प्रे आदि लगाकर और चमड़े के बैग में रखे वस्त्र पहिनकर पूजा नहीं करनी चाहिये।

प्रवेश : पूजा करते समय और किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिये ?

समकित : पूजा के लिये प्लास्टिक[8] आदि के उपकरण[9], स्टील के बर्तनों[10] का उपयोग नहीं करना चाहिये। पीतल[11], ताँबा[12], चाँदी[13], सोना[14] आदि उच्च धातुओं[15] के बर्तन ही पूजा के लायक हैं।

प्रवेश : और ?

समकित : बाकी कल।

1.traditional-wear 2.modesty 3.systematically 4.silk-fabric 5.silk 6.silkworms 7.cosmetics 8.plastic 9.equipments 10.utensils 11.brass 12.to copper 13.silver 14.gold 15.good-metals

# 3

# पूजा के प्रकार और उसका फल

प्रवेश : क्या पूजा कई प्रकार की होती है ?

समकित : हाँ, पूजा का वर्गीकरण[1] अनेक आधारों[2] पर किया गया है।

अवसर[3] के आधार पर पूजा के पाँच प्रकार हैं:

1. **नित्यमह पूजाः** प्रतिदिन[4] की जानेवाली पूजा। इसको सदार्चन पूजा भी कहते हैं।

2. **चतुर्मुख पूजाः** मुकुटबद्ध राजाओं द्वारा की जाने वाली महापूजा।

3. **कल्पद्रुम पूजाः** चक्रवर्ती राजा द्वारा किमिच्छिक-दान[5] देकर की जाने वाली पूजा।

4. **अष्टाह्निक पूजाः** आठ दिन के पर्व[6] में की जाने वाली पूजा।

5. **ऐन्द्रध्वज पूजाः** इन्द्रों[7] द्वारा की जाने वाली पूजा।

प्रवेश : और ?

समकित : नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव निक्षेप के आधार पर भी पूजा के भेद किये गये हैं:

1. **नाम पूजाः** अरिहंत आदि का नाम स्मरण करते हुए पुष्प क्षेपण[8] करना नाम पूजा है।

2. **स्थापना पूजाः** यह दो प्रकार की होती है:

स्थापना पूजा

- तदाकार स्थापना पूजा (प्रतिमा मौजूद होने पर)
- अतदाकार स्थापना पूजा (प्रतिमा मौजूद न होने पर)

---

1.categorization 2.basis 3.occasion 4.daily 5.desired-donations
6.festival 7.lords of heaven 8.shower

**तदाकार-स्थापना पूजाः** अरिहंत भगवान के आकार[1] जैसी प्रतिमा (मूर्ति) में उनके गुणों की विधिपूर्वक स्थापना करके पूजा करना तदाकार स्थापना पूजा है। यानि कि प्रतिष्ठित प्रतिमा की पूजा करना तदाकार स्थापना पूजा है। इस पूजा में प्रतिष्ठित प्रतिमा सामने होने से पुष्पादि में अरिहंतादि का आह्वानन्, स्थापन्, सन्निधिकरण और विसर्जन करने की जरूरत नहीं रहती।

**अतदाकार-स्थापना पूजाः** अरिहंत भगवान के आकार से रहित पुष्पादि में उनकी स्थापना करके पूजा करना अतदाकार स्थापना पूजा है। चूँकि इस पूजा में अरिहंतादि की प्रतिष्ठित प्रतिमा सामने नहीं होती इसलिये पुष्पादि में अरिहंतादि का आह्वानन, स्थापन्, सन्निधिकरण और पूजा के बाद उनका विसर्जन करना आवश्यक होता है।

ध्यान रहे अतदाकार पूजा अरिहंत भगवान की प्रतिष्ठित प्रतिमा न होने पर ही की जा सकती है। वर्तमान हुण्डावसर्पिणी काल में अन्य-मती[2] भी अपने कुदवों की इसी प्रकार की अतदाकार स्थापना करके पूजा करते हैं। जिनेन्द्र देव और कुदेवों की स्थापना में अंतर बना रहे इसलिये हमें अतदाकार स्थापना पूजा से बचना चाहिये।

प्रवेश : यह तो पता ही नहीं था। पूजा के और भी प्रकार हैं क्या ?

समकित : हाँ, पूज्य के आधार पर भी पूजा का वर्गीकरण किया गया है जो कि निम्न हैः

**1. सचित्त पूजाः** साक्षात् समवसरण में विराजमान जीवंत (सचित्त) अरिहंत भगवान की पूजा करना सचित्त पूजा है।

**2. अचित्त पूजाः** अरिहंत भगवान की प्रतिमा की पूजा करना अचित्त पूजा है।

**3. मिश्र पूजाः** समवसरण में विराजमान जीवंत (सचित्त) अरिहंत भगवान व प्रतिमा (अचित्त) की एक साथ पूजा करना मिश्र पूजा है।

1.shape 2.false-believers

प्रवेश : आपने कहा कि भाव बिना की क्रिया फल नहीं देती। तो भाव सहित की गयी पूजा का फल क्या है ?

समकित : पूज्य यानि कि अरिहंत भगवान (जिनेन्द्र) जैसे गुणों की प्राप्ति ही भाव[1] सहित की गयी जिन-पूजा का फल है।

प्रवेश : जिन-पूजा तो शुभ-भाव है। उससे कैसे जिनेन्द्र जैसे गुणों (वीतरागता) की प्राप्ति होती है ?

समकित : जिनेन्द्र की पूजा करते समय हमें उनके जैसे गुणों की प्राप्ति करने की व उनके बताये हुए मार्ग[2] पर चलने की प्रेरणा मिलती है और सच्ची व्यवहार पूजा के साथ तो निश्चय पूजा (वीतरागता) भी होती ही है, क्योंकि निश्चय पूजा के बिना सच्ची व्यवहार पूजा हो ही नहीं सकती।

प्रवेश : ये तो हुआ पूजा का पारमार्थिक[3] फल। पर पूजा से कुछ लौकिक[4] फल भी मिलता है या नहीं ?

समकित : जिनेन्द्र भगवान के सच्चे भक्त को तो पूजा करते समय एक मोक्ष की ही इच्छा रहती है। लौकिक फल का तो उसको विचार तक नहीं आता। हाँ, यह बात जरूर है कि ऐसी निष्काम (निर्वांछक)[5] व सहज भक्ति करने वाले भक्त को कषाय की मंदता होने से सहज सातिशय[6] पुण्य का बंध होता है जिसके फल में उसे लौकिक अनुकूलता[7] और मोक्षमार्ग में साधक[8] निमित्तों की प्राप्ति सहज ही हो जाती है।

लेकिन जो पूजा करते समय लौकिक फल की बांछा रखते हैं उन्हें लोभ कषाय की तीव्रता होने से सातिशय पुण्य का बंध नहीं होता।

प्रवेश : लेकिन लौकिक बाँछा (कामना) रखकर पूजा करने वालों को भी तो अनुकूलताएँ प्राप्त होती देखी जाती हैं ?

समकित : वह उनके पूर्व में किये हुये पुण्य का फल होता है लेकिन वह उसको वाँछा (कामना) के साथ की हुई पूजा का फल मानकर अपने मिथ्यात्व को और अधिक पुष्ट कर लेते हैं।

1.conscience 2.path 3.spiritual 4.worldly 5.desireless
6.extra-ordinary 7.favored-halvings 8.favored

प्रवेश : पाँचवें गुणस्थान वाले श्रावक की प्रतिमायें, व्रत, दैनिक षट्-कर्म तो अच्छी तरह से समझ में आ गये। अब कृपया छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलने वाले मुनिराजों के महाव्रतों का स्वरूप और समझा दीजिये ?

समकित : हमारा अगला विषय यही है।

श्रावक तो हमेशा देवपूजा करे, देव अर्थात सर्वज्ञदेव, उनका स्वरूप पहचानकर उनके प्रति बहुमानपूर्वक रोज-रोज दर्शन-पूजन करे। पहले ही सर्वज्ञ की पहचान की बात कही थी। स्वयं ने सर्वज्ञ को पहचान लिया है और स्वयं सर्वज्ञ होना चाहता है वहाँ निमित्त रूप में सर्वज्ञता को प्राप्त अरहंत भगवान के पूजन-बहुमान का उत्साह धर्मी को आता है। जिन मन्दिर बनवाना, उसमें जिनप्रतिमा स्थापन करवाना, उनकी पंचकल्याणक पूजा-अभिषेक आदि उत्सव करना, ऐसे कार्यों का उल्लास श्रावक को आता है, जो उसका निषेध करे तो मिथ्यात्व है और मात्र इतने शुभराग को ही धर्म समझे तो उसको भी सच्चा श्रावकपना होता नहीं-ऐसा जानो। सच्चे श्रावक को तो प्रत्येक क्षण पूर्ण शुद्धात्मा के श्रद्धानरूप सम्यकत्व वर्तता है, और उनके आधार से जितनी शुद्धता प्रकट हुई उसे ही धर्म जानता है। ऐसी दृष्टिपूर्वक वह देव पूजा आदि कार्यों में प्रवर्तता है।

जिनेन्द्र की मूर्ति साक्षात् जिनेन्द्र तुल्य वीतराग भाववाही होती है। जिस अपेक्षा से कहा हो वह अपेक्षा जाननी चाहिये। जिन प्रतिमा है, उसकी पूजा, भक्ति सब है। जब स्वरूप में स्थिर नहीं हो सकता तब, अशुभ से बचने के लिये ऐसा शुभ भाव आये बिना नहीं रहता। 'ऐसा भाव आता ही नहीं' ऐसा जो माने उसे वस्तु स्वरूप की खबर नहीं है, और आयें इसलिये 'उससे धर्म है'- ऐसा माने तब भी वह बराबर नहीं है।...

देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति, पूजा, प्रभावनादि के शुभ-भाव जैसे ज्ञानी को होते हैं वैसे अज्ञानी को होते ही नहीं।

**-गुरुदेवश्री के वचनामृत**

# 4

# छठवें-सातवें गुणस्थान वाले मुनिराज के महाव्रत

स्वयं में तीसरे स्तर की आत्मलीनता से प्रगट वीतरागता ही छठवें-सातवें गुणस्थान वाले मुनिराज का निश्चय महाव्रत है। निश्चय महाव्रत के साथ आवश्यक रूप से पाया जाने वाला पाँच पापों के संपूर्णरूप-से[1] त्याग रूप शुभ-राग व बाह्य क्रिया व्यवहार से महाव्रत कहने में आते हैं।

प्रवेश : इस शुभ-राग का कारण क्या है ?

समकित : मुनि को बाकी-रह-गया[2] राग मात्र शुभ-भाव रूप होता है। श्रावक की तरह शुभ-अशुभ दोनों के अंश[3] रूप नहीं ।

प्रवेश : व्यवहार अणुव्रत की तरह व्यवहार महाव्रत भी पाँच प्रकार के होते होंगे ?

समकित : हाँ, व्यवहार हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व परिग्रह के संपूर्ण रूप से त्याग रूप पाँच महाव्रत होते हैं जो कि निम्न हैं:

1. अहिंसा महाव्रत 2. सत्य महाव्रत 3. अचौर्य महाव्रत 4. ब्रह्मचर्य महाव्रत 5. अपरिग्रह महाव्रत

पाँचवें गुणस्थानवर्ती श्रावक की प्रतिमाओं और व्रतों की तरह मुनिराज भी अपने महाव्रतों का नौ-कोटि से पालन करते हैं।

प्रवेश : नौ-कोटि के बारे में डीटेल में समझाईये न।

समकित : नौ-कोटि का मतलब है मन, वचन, काय से कृत, कारित, अनुमोदना पूर्वक कोई कार्य करना। मुनिराज ने नौ-कोटि से पाँच पापों के त्याग की प्रतिज्ञा की है यानि कि वे नौ-कोटि से किसी भी प्रकार का पाप नहीं करेंगे जो कि इस प्रकार है:

---

1.completely 2.remaining 3.fraction

1. मन में पाप करने का विचार[1] नहीं करना
2. मने में दूसरों से पाप कराने का विचार नहीं करना
3. मन में पाप की अनुमोदना[2] नहीं करना
4. वचन से स्वयं पाप करने का नहीं कहना
5. वचन से दूसरों को पाप करने का नहीं कहना
6. वचन से पाप की अनुमोदना नहीं करना
7. काय से पाप नहीं करना
8. काय से (इशारे आदि से) दूसरों को पाप करने का नहीं कहना
9. काय से (इशारे आदि से) पाप की अनुमोदना नहीं करना

ध्यान रहे अपनी भूमिका से नीचे का पुण्य कार्य भी पाप की श्रेणी में आता है।

प्रवेश : मतलब ?

समकित : जैसे श्रावक के लिये नौ-कोटि से द्रव्य-पूजा करना पुण्य कार्य है क्योंकि उसके अणुव्रत होने से हिंसा का संपूर्ण रीति से त्याग नहीं है।

लेकिन मुनिराज के लिये द्रव्य-पूजा करना पाप कार्य है, क्योंकि उनके महाव्रत होने से हिंसादि का संपूर्ण रूप से व नौ-कोटि से त्याग है।

उसीप्रकार श्रावक के लिये नौ-कोटि से मंदिर, तीर्थ आदि का निर्माण करना पुण्य कार्य है लेकिन मुनिराज के लिये वह पाप कार्य है।

यहाँ जो सबसे जरूरी बात यह है कि एक कोटि टूटने से सभी कोटि टूट जाती हैं। क्योंकि वे आपस में भावात्मक रूप से जुड़ी हुई हैं।

प्रवेश : कृपया पाँचों महाव्रत के बारे में एक-एक करके समझाईये ?

समकित : ठीक है !

**1. अहिंसा महाव्रतः** नौ-कोटि से छः काय यानि पाँच स्थावर और त्रस जीवों की हिंसा का सर्वथा[3] त्याग व्यवहार अहिंसा महाव्रत है।

1.thought 2.approval 3.completely

निश्चय से तो तीसरे स्तर की आत्मलीनता के बल[1] से तीसरे स्तर तक के रागादि की उत्पत्ति नहीं होने देना यानि कि तीसरे स्तर की वीतरागता ही अहिंसा महाव्रत है और वही सत्य, अचौर्य, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

मुनिराज अहिंसा महाव्रत का इतनी बारीकी-से[2] पालन करते हैं कि प्राण जाये लेकिन अपने उद्देश्य[3] से बना हुआ आहार-जल तक नहीं लेते क्योंकि आहार आदि बनाने में हिंसा होती है। और यदि वह उनके उद्देश्य से बनाये जायें तो उनको उसमें होने वाली हिंसा की अनुमोदना[4] का दोष लग जाता है।

**2. सत्य महाव्रतः** सत् स्वरूपी आत्मा में लीनता ही निश्चय सत्य महाव्रत है।

नौ-कोटि से चारों प्रकार के झूठ (असत्य) का सर्वथा त्याग व्यवहार सत्य महाव्रत है। मुनिराज स्वप्न में भी सत् का अपलाप, असत् का उद्‌भावन, अन्यथा प्ररूपण और निंदनीय, कलहकारक, पर-पीड़ाकारक, हिंसापोषक, पर-अपवादकारक एवं आगम विरुद्ध आदि गर्हित-वचन[5] व उभय-वचन[6] नहीं बोलते। वह तो अधिकतर मौन[7] ही रहते हैं और जब बोलते हैं तो हित (हितकारी), मित (नपे-तुले), और प्रिय-वचन[8] ही बोलते हैं। यानि कि मुनिराज सत्य (हितकारी) तो बोलते हैं लेकिन वह नपा-तुला होने से कड़वा[9] नहीं होता बल्कि मीठा (प्रिय) ही होता है।

**3. अचौर्य महव्रतः** पर-द्रव्य में लीन न होकर स्व-द्रव्य (आत्मा) में तीसरे स्तर की लीनता होना निश्चय अचौर्य महाव्रत है।

नौ-कोटि से चोरी का सर्वथा त्याग व्यवहार अचौर्य महाव्रत है। मुनिराज मिट्टी व पानी भी बिना दिये नहीं लेते और जो वस्तु उनके योग्य[10] नहीं है उसको देने पर भी नहीं लेते। यही मुनिराज का व्यवहार अचौर्य महाव्रत है।

1.strength 2.minutely 3.purpose 4.approval 5.disguise-words 6.half truth 7.silent 8.pleasant-words 9.bitter 10.suitable

**4. ब्रह्मचर्य महाव्रतः** निश्चय से तो ब्रह्म (आत्मा) में चर्या (तीसरे स्तर की आत्मलीनता) करना ही ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

नौ-कोटि से अब्रह्म (काम सेवन) का सर्वथा त्याग व्यवहार ब्रह्मचर्य महाव्रत है।

मुनिराज नौ-कोटि और नौ-बाड़ो सहित अठारह हजार प्रकार के अखंड ब्रह्मचर्य (शील) का पालन करते हैं। मुनिराज ब्रह्मचर्य का पालन इतनी सूक्ष्मता से करते हैं कि दीक्षा आदि विशेष-प्रसंगों[1] को छोड़कर स्त्री[2] से सात हाथ दूर रहते हैं।

प्रवेश : यह नौ-बाड़े क्या होती हैं ?

समकित : जैसे किसान अपने खेत को सुरक्षित[3] करने के लिये बाड़[4] लगाता है उसीप्रकार मुनिराज और ब्रह्मचारी लोग अपने ब्रह्मचर्य को सुरक्षित रखने के लिए नौ-बाड़ों का पालन करते है जो कि निम्न हैंः

1. स्त्रियों[5] के बीच में न रहना
2. उनको राग भरी दृष्टि[6] से न देखना
3. छुपकर बात या पत्राचार[7] आदि न करना
4. पहले भोगे[8] हुए भोगों को याद नहीं करना
5. काम-वासना[9] बढ़ाने वाला गरिष्ठ-भोजन[10] नहीं करना
6. श्रृंगार[11] नहीं करना
7. स्त्रियों के आसन, पलंग आदि पर न बैठना, न सोना
8. वासना बढ़ाने वाली कहानियाँ, नाटक, गीत आदि न सुनना, न देखना
9. भूख से अधिक भोजन[12] नहीं करना

प्रवेश : और अपरिग्रह महाव्रत ?

समकित : **5. अपरिग्रह महाव्रतः** निश्चय से तो मिथ्यात्व और कषाय रूप अंतरंग परिग्रह का त्याग ही अपरिग्रह महाव्रत है।

नौ-कोटि से बाह्य परिग्रह का सर्वथा त्याग व्यवहार अपरिग्रह महाव्रत है।

1.special-occassions 2.females 3.protect 4.fencing 5.females 6.sight 7.communicate 8.physical-pleasures 9.eroticism 10.heavy-diet 11.make-over 12.over-eating

मुनिराज का अंतरंग परिग्रह में मिथ्यात्व का तो पूरी तरह से त्याग (अभाव) है और तीसरे स्तर तक की कषाय का त्याग (अभाव) है यानि कि मुनिराज का अपने में अपनापन पूर्णरूप से है और लीनता तीसरे स्तर तक की है यही उनका निश्चय अपरिग्रह महाव्रत है।

बहिरंग परिग्रह में मुनि योग्य उपकरणों को छोड़कर सभी परिग्रह का त्याग है। उपकरणों के अलावा वे तिल-तुष मात्र भी परिग्रह नहीं रखते।

प्रवेश : भाईश्री ! यदि इन पाँच महाव्रतों में से कोई एक भंग हो जाये तो ?

समकित : यथार्थ में तो एक महाव्रत भंग होने से पाँचों महाव्रत भंग हो जाते हैं क्योंकि भावात्मक-रूप-से[1] सभी एक ही हैं। आत्मा में रागादि भावों की उत्पत्ति ही हिंसा है, वही झूठ, चोरी, कुशील व परिग्रह संग्रह है। भेद तो सिर्फ समझाने के लिये व्यवहार से किये गये हैं।

प्रवेश : भाईश्री ! महाव्रत का स्वरूप तो समझ में आ गया। अब मुनिराज की पाँच समितियों का स्वरूप और समझा दीजिये ।

समकित : आज नहीं कल।

धन्य वह निर्ग्रन्थ मुनिदशा ! मुनिदशा अर्थात् केवल ज्ञान की तलहटी। मुनि को अंतर में चैतन्य के अनंत गुण-पर्यायों का परिग्रह होता है, विभाव बहुत छूट गया होता है। बाह्य में श्रामण्यपर्याय के सहकारी कारणभूतपने से देहमात्र परिग्रह होता है। प्रतिबंध-रहित सहज दशा होती है, शिष्यों को बोध देने का अथवा ऐसा कोई भी प्रतिबंध नहीं होता। स्वरूप में लीनता वृद्धिंगत होती है। मुनि एक-एक अन्तर्मुहूर्तमें स्वभावमें डुबकी लगाते हैं। अंतरमें निवास के लिये महल मिल गया है, उसके बाहर आना अच्छा नहीं लगता। मुनि किसी प्रकारका बोझ नहीं लेते। अन्दर जायें तो अनुभूति और बाहर आयें तो तत्त्वचिंतन आदि। साधकदशा इतनी बढ़ गई है कि द्रव्यसे तो कृतकृत्य हैं ही परन्तु पर्यायमें भी अत्यन्त कृतकृत्य हो गये हैं।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1.abstractively

# 5
# मुनिराज की पाँच समिति

निश्चय से आत्मा में गमन (लीनता) करना समिति है।

ऐसी निश्चय समिति के साथ आवश्यकरूप-से[1] होने वाला जीवों को पीड़ा से बचाने का शुभ राग और उससे संबंधित सावधानी (यत्नाचार) पूर्वक की जाने वाली क्रियायें व्यवहार से समिति कहने में आती है।

मुनिराज का अपनी शुद्धात्मा में तीसरे स्तर की लीनता होना निश्चय समिति है और शेष रह गये जीव-रक्षा संबंधी शुभ-राग और उसके लिये अत्यंत सावधानी-पूर्वक[2] की जाने वाली क्रियायें व्यवहार समिति हैं।

प्रवेश : निश्चय समिति तो एक ही है, व्यवहार समिति कितने प्रकार की होती हैं ?

समकित : व्यवहार समिति पाँच प्रकार की होती हैं: 1.ईर्या समिति 2.भाषा समिति 3.एषणा समिति 4.आदान-निक्षेपण समिति 5.प्रतिष्ठापना समिति

प्रवेश : यह नाम तो बहुत कठिन हैं ?

समकित : थोड़ी देर में सरल लगने लगेंगे, सुनो !

**1. ईर्या समिति**: जीव-जन्तु रहित प्रासुक-मार्ग[3] में दिन के प्रकाश[4] में ही चार हाथ भूमि[5] को देखकर चलना ईर्या समिति है।

**2. भाषा समितिः** दूसरों को पीड़ा पहुचाने वाले, कानों को चुभने वाले, दूसरों की हँसी उड़ाने वाले, दूसरों की निंदा व अपनी प्रशंसा करने वाले, कलहकारक, पर-अपवाद कारक, विकथा आदि शब्दों को त्याग

---

1.essentially 2.carefully 3.disinsected-route 4.day-light 5.land

कर हित (सबका भला करने वाले), मित (नपे-तुले), प्रिय (मीठे) सत्य व अनुभय[1] वचन सावधानी पूर्वक बोलना या मौन[2] रहना भाषा समिति है।

**3. एषणा समितिः** विधि व सावधानी पूर्वक छियालीस-दोष[3] व बत्तीस-अंतराय[4] टालकर निर्दोष व प्रासुक आहार (गोचरी) लेना एषणा समिति है।

**4. आदान-निक्षेपण समितिः** पुस्तक आदि उपकरणों[5] को प्रतिलेखन[6] करके सावधानी पूर्वक उठाना व रखना आदान-निक्षेपण समिति है।

**5. प्रतिष्ठापना समितिः** जीव जन्तु रहित प्रासुक स्थान में सावधानी पूर्वक प्रतिलेखन करके मल-मूत्र[7] आदि छोड़ना व उठना-बैठना आदि प्रतिष्ठापना समिति है।

प्रवेश : क्या मुनिराज को यह समितियाँ पालना जरूरी हैं ?

समकित : हाँ, इन पाँच समितियों को निरतिचार (बिना दोष लगाये) पालने पर ही उनका अहिंसा महाव्रत पल सकता है।

प्रवेश : पाँच समितियों में लगने वाले दोष[8] कौनसे हैं ?

समकित : मैं एक-एक करके पाँचों समितियों के दोष बताता हूँ।

**1. ईर्या समिति में लगने वाले दोष (अतिचार):**

- सूरज की रोशनी मंद[9] होने पर या रात में गमन[10] करना।
- बिना देखे पैर रखना या चलना।
- विचार करते-करते,कोई और काम, बात-चीत आदि करते-करते चलना।
- दूसरों को चलने के लिये कहना आदि मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना ऐसे नौ-कोटि पूर्वक लगने वाले दोष।

**2. भाषा समिति में लगने वाले दोष (अतिचार):**

1.formal 2.silent 3.46-flaws 4.32-obstructions 5.equipments 6.broom 7.waste 8.flaws 9.dim 10.walk

- बिना सोचे-विचारे बोलना।
- किसी बात की सच्चाई जाने बिना बोलना।
- बीच में बोलना।
- धर्म का स्वरूप समझे बिना बोलना आदि मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना पूर्वक लगेने वाले दोष[1]।

### 3. ऐषणा समिति में लगने वाले दोष (अतिचार):

- अपने उद्देश्य[2] से बनाया हुआ या छः काय के जीवों में से किसी को भी पीड़ा पहुँचाकर बनाये हुए आहार (गोचरी) को लेना, ऐसे अधःकर्म आदि सोलह उद्गम-दोष[3]।
- श्रावक की प्रशंसा करके लिया गया आहार, ऐसे धात्री आदि सोलह उत्पादन-दोष[4]।
- यह भोजन मेरे लायक नहीं है ऐसी शंका[5] हो जाने पर भी आहार ले लेना, ऐसे शक्ति आदि दस अशन्-दोष[6]।
- अचित्त में सचित्त को मिलाकर बनाया हुआ आहार लेना, ऐसे संयोजन आदि प्रागेषणा-दोष[7]।
- गरिष्ठ या अधिक भोजन लेना।

इसके अलावा निकृष्ट (नीच) आचरण वाले गृहस्थ, वैश्या[8], व्यभिचारिणी[9], कंजूस, दरिद्री[10], व्यसनी[11], निर्माल्य (देव-द्रव्य) सेवन करने वाले, हिंसक व्यापार करने वाले, गृहीत मिथ्यात्वी आदि के घर का आहार लेना।

एवं जहाँ अँधेरा हो, गीला हो, सचित्त पुष्प आदि बिखरे हों ,त्रस-जीव, मल-मूत्र, भूसा, पेड़-पौधे, पत्थर, गोबर आदि पड़े हों, अधिक सजावट की गयी हो, यज्ञशाला, दानशाला, शादी का घर, सुनसान[12] में बना घर, फार्महाउस, पेड़-पौधों और बेलों[13] से घिरा घर, नाटकशाला, गायनशाला आदि स्थानों पर आहार लेना आदि नौ-कोटि से लगने वाले अनेक दोष हैं लेकिन अभी सभी की चर्चा कर पाना असंभव है।

1.flaws 2.purpose 3.origin-flaws 4.gain-flaws 5.doubt 6.meal-flaws 7.combination-flaws 8.prostitute 9.loose-character 10.deprived 11.addict 12.isolation 13.creepers

**4. आदान-निक्षेपण समिति में लगने वाले दोष (अतिचार):**

- जो उपकरण[1] उठाना या रखना है उसको बिना सावधानी के, बिना प्रतिलेखन के उठाना या रखना।

- जिस स्थान पर उपकरण रखना या उठाना है वहाँ बिना सावधानी के, बिना प्रतिलेखन के रखना या उठाना आदि नौ-कोटि पूर्वक लगने बाले दोष।

**5. प्रतिष्ठापना समीति में लगने वाले दोष (अतिचार):**

- जिस स्थान पर मल-मूत्र आदि छोड़ना है, उठना-बैठना है वहाँ बिना सावधानी के, बिना प्रतिलेखन किये मल-मूत्र आदि छोड़ देना या उठना-बैठना आदि नौ-कोटि से लगने वाले दोष।

प्रवेश : भाईश्री ! अतिचार और अनाचार में क्या अंतर है ?

समकित : प्रमाद[2] अथवा अज्ञान[3] से जो दोष व्रतों में लग जाते हैं उन्हें अतिचार कहते हैं।

जो दोष जान-बूझकर[4] या फिर पाँच इंद्रियों के विषयों-की-इच्छा[5] से किये जायें उन्हें अनाचार कहते हैं। यह व्रत के मूल स्वरूप को ही समाप्त कर देते हैं। ध्यान रहे बार-बार लगाया जाने वाला अतिचार, अनाचार बन जाता है।

प्रवेश : अतिचार और अनाचार दोनों का प्रयाश्चित[6] किया जाता है ?

समकित : अतिचार के तो साधारण प्रयाश्चित हो जाते हैं लेकिन अनाचार के लिये एक ही प्रयाश्चित होता है और वह है-मूल प्रयाश्चित यानि कि दीक्षा-छेद (दीक्षा समाप्ति)।

प्रवेश : कृपया मुनिराज की तीन गुप्ति और पाँच-इंद्रिय विजय (निग्रह) का स्वरूप और समझा दीजिये।

समकित : हाँ, हमारा अलगा पाठ यही है।

1.equipments 2.carelessness 3.unknowingly 4.knowingly
5.materialistic-desires 6. atonement

6

# मुनिराज की तीन गुप्ति और पाँच-इन्द्रिय विजय (निग्रह)

समकित : **गुप्तिः** शुद्धात्मा में गुप्त (लीन) हो जाना वह निश्चय गुप्ति है । निश्चय गुप्ति होने पर मन-वचन-काय की सभी शुभ-अशुभ चेष्टाएं स्वयं ही रुक जाती हैं।

शुद्धात्मा में से उपयोग[1] बाहर आने पर मन-वच-काय की अशुभ चेष्टाओं (क्रियाओं) से दूर रहना व्यवहार गुप्ति है।

प्रवेश : भाईश्री ! इसीलिये व्यवहार गुप्ति तीन प्रकार की हैं ?

समकित : हाँ, मनो-गुप्ति, वचन-गुप्ति, काय-गुप्ति यह तीन प्रकार की व्यवहार गुप्ति हैं।

प्रवेश : कृपया समझाईये।

समकित : ध्यान से सुनो !

**व्यवहार मनोगुप्ति-** मोह, अशुभ-राग, द्वेष आदि पाप (अशुभ) भावों का परिहार (दूर रहना) व्यवहार मनो-गुप्ति है।

**व्यवहार वचनगुप्ति-** असत्य, पर-पीड़ाकारक, निंदनीय, कलहकारक, हिंसापोषक, विकथा आदि अशुभ वचनों से दूर रहना व्यवहार वचन गुप्ति है।

**व्यवहार काय गुप्ति-** हिंसा आदि पाप-रूप (अशुभ) शरीर की क्रियाओं से दूर रहना व्यवहार काय गुप्ति है।

प्रवेश : और पाँच इन्द्रिय विजय (निग्रह) ?

समकित : **इन्द्रिय विजयः** आत्मलीनता द्वारा स्वयं ही पाँच इन्द्रियों के विषयों की इच्छा उत्पन्न नहीं होना निश्चय इंद्रिय-विजय है।

---

1.attention

ऐसे निश्चय इंद्रिय विजय के साथ पाँच इंद्रिय के विषयों-की-इच्छाओं[1] से दूर रहना व्यवहार से इंद्रिय-विजय (निग्रह) कहने में आता है।

व्यवहार इंद्रिय-विजय (निग्रह) पाँच प्रकार का हैः

1. **स्पर्शन इंद्रिय निग्रहः** स्पर्शन इंद्रिय का विषय स्पर्श[2] है। यह मुख्य रूप के आठ प्रकार का होता हैः हल्का-भारी, रुखा-चिकना, कठोर-नरम, ठण्डा-गरम। तत्वों के चिंतवन् (विचार) द्वारा इन विषयों की इच्छाओं से दूर रहना व्यवहार स्पर्शन-इंद्रिय-निग्रह कहलाता है।

2. **रसना इंद्रिय निग्रहः** रसना इंद्रिय का विषय रस[3] है। यह मुख्य रूप से पाँच प्रकार का होता हैः खट्टा, मीठा, कड़वा, कषायला व चरपरा। तत्वों के चिंतवन द्वारा इन विषयों की इच्छाओं से दूर रहना व्यवहार रसना-इंद्रिय-निग्रह है ।

3. **घ्राण इंद्रिय निग्रहः** घ्राण इंद्रिय की विषय गंध[4] है। यह दो प्रकार की होती हैः सुगंध और दुर्गंध। तत्वों के चिंतवन् द्वारा इन विषयों की इच्छाओं से दूर रहना व्यवहार घ्राण-इंद्रिय-निग्रह है।

4. **चक्षु इंद्रिय निग्रहः** चक्षु इंद्रिय का विषय वर्ण[5] है। यह मुख्य रूप से पाँच प्रकार का हैः काला, नीला, पीला, लाल व सफेद। तत्वों के चिंतवन् द्वारा इन विषयों की इच्छाओं से दूर रहना व्यवहार चक्षु-इंद्रिय-निग्रह है।

5. **श्रोत्र (कर्ण) इंद्रिय निग्रहः** कर्ण इंद्रिय का विषय शब्द[6] है। यह मुख्य रूप से दो प्रकार का हैः सुस्वर व दुःस्वर। तत्वों के चितवन् द्वारा इन विषयों की इच्छाओं से दूर रहना व्यवहार कर्ण-इंद्रिय-निग्रह है।

प्रवेश : यहाँ **तत्वों के चिंतवन** का क्या मतलब है ?

समकित : मुख्य रूप से दो ही तत्व हैं- एक जीव और दूसरा अजीव। मुनिराज जब आत्मा में लीन यानि कि सातवें गुणस्थान में रहते है तब तो उनको शुभ और अशुभ दानों प्रकार के विषयों के सेवन की इच्छा

1.materialistic-desires 2.touch 3.taste 4.smell 5.colour 6.sound

उत्पन्न ही नहीं होती। लेकिन जब उनका उपयोग[1] आत्मा से बाहर रहता है यानि कि जब वह छठवें गुणस्थान में रहते हैं तो उनको तत्वों का चिंतवन (विचार) चलता रहता है कि-मैं जीव तत्व हूँ और यह स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द आदि तो पुद्गल (अजीव) के गुण हैं। यह मेरे नहीं, मुझे हितकारी[2] नहीं। इनको अपना मानना मिथ्यादर्शन है और इनमें लीन-तल्लीन-तन्मय रहना यानि कि इनमें राग करना मिथ्याचारित्र (अचारित्र) है, जो कि दुःख रूप है व संसार में भटकने का कारण है।

मुनिराज को ऐसे तत्व चिंतवन् (विचार) के कारण छठवें गुणस्थान में भी पाँच-इंद्रिय के विषयों-की-इच्छा[3] रूप अशुभ-राग (पाप-भाव) उत्पन्न नहीं होता।

प्रवेश : धन्य मुनि दशा ! मुनिराज जो साक्षात् चलते-फिरते सिद्ध हैं।

समकित : हाँ, सिद्धों की श्रेणी में आने वाला जिनका नाम है, जग के उन सब मुनिराजों के मेरा नम्र प्रणाम है !

प्रवेश : भाईश्री ! कृपया छः आवश्यक का स्वरूप और समझाईये।

समकित : ठीक है कल !

मुनिराज कहते हैं:-चैतन्यपदार्थ पूर्णतासे भरा है। उसके अन्दर जाना और आत्मसम्पदा की प्राप्ति करना वही हमारा विषय है। चैतन्य में स्थिर होकर अपूर्वता की प्राप्ति नहीं की, अवर्णनीय समाधि प्राप्त नहीं की , तो हमारा जो विषय है वह हमने प्रगट नहीं किया। बाहर में उपयोग आता है तब द्रव्य-गुण-पर्यायके विचारों में रुकना होता है, किन्तु वास्तव में वह हमारा विषय नहीं है। आत्मा में नवीनताओं का भण्डार है। भेदज्ञान के अभ्यास द्वारा यदि वह नवीनता-अपूर्वता प्रगट नहीं की, तो मुनिपने में जो करना था वह हमने नहीं किया ।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1.attention 2.beneficial 3.materialistic-desires

# 7

# छः आवश्यक

समकित : **आवश्यकः** अवश (स्वाधीन[1]) होने के लिये अवश्य रूप से करने लायक कार्यों[2] को आवश्यक[3] कहा जाता है।

स्वाधीनता का अर्थ है स्व में लीन होना और यही अवश्य रूप से करने लायक कार्य है। इसलिये निश्चय से तो आत्मलीनता ही एकमात्र आवश्यक है।

ऐसे आत्मलीनता रूप निश्चय आवश्यक के साथ छः प्रकार का शुभ राग व क्रिया व्यवहार से आवश्यक कहने में आते हैं, यानि कि व्यवहार आवश्यक हैं।

प्रवेश : ये व्यवहार आवश्यक कौन-कौन से हैं ?

समकित : व्यवहार आवश्यक छः होते हैं:

1. सामायिक
2. चतुर्विंशति स्तव
3. वंदना
4. प्रतिक्रमण
5. प्रत्याख्यान
6. कायोत्सर्ग (व्युत्सर्ग)

प्रवेश : कृपया समझाईये।

समकित : ठीक है !

**1. सामायिकः** जैसे कि हम पहले भी चर्चा कर ही चुके है कि सामायिक का अर्थ है-समता भाव। यानि कि आत्मालीनता द्वारा समस्त पर द्रव्यों में राग-द्वेष का अभाव होकर समता-भाव प्रगट होना ही निश्चय सामायिक है। निश्चय से वही स्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग है।

1.independent 2.practices 3.essential

राग-द्वेष को छोड़कर सभी कार्यों में समता-भाव रखना और जिन-सूत्र (जिनवाणी) में उपयोग[1] को लगाकर आत्मनीलता का प्रयास करना व्यवहार सामायिक है। निश्चय सामायिक शुद्ध-भाव रूप है और व्यवहार सामायिक शुभ-भाव रूप है।

प्रवेश : सामायिक करने का समय कौन-सा है ?

सामायिकः प्रतिदिन सुबह, दोपहर व शाम यानि कि तीनों संधि कालों में कम से कम दो घड़ी (48 मिनट) व्यवहार सामायिक की जाती है। निश्चय सामायिक तो कभी भी कर सकते हैं।

प्रवेश : क्या सामायिक अनेक प्रकार की होती है ?

समकित : सामायिक अनेक प्रकार की नहीं होती, सामायिक का कथन अनेक प्रकार से होता है। निश्चय से आत्मलीनता और व्यवहार से आत्मलीनता का प्रयास समायिक है। लेकिन निमित्त, संयोगादि की अपेक्षा से सामायिक के निम्न भेद बताये गये हैं:

1. **नाम सामायिकः** अच्छे या बुरे नाम में राग-द्वेष का त्याग।

2. **स्थापना सामायिकः** किसी भी अच्छे या बुरे चित्र, प्रतिमा आदि में राग-द्वेष का त्याग।

3. **द्रव्य सामायिकः** सभी द्रव्यों में राग-द्वेष का त्याग।

4. **क्षेत्र सामायिकः** अनुकूल या प्रतिकूल स्थान में राग-द्वेष का त्याग।

5. **काल सामायिकः** किसी भी अनुकूल या प्रतिकूल मौसम, महीना, वार (दिन) आदि में राग-द्वेष का त्याग।

6. **भाव सामायिकः** निर्मल आत्मज्ञान-श्रद्धान-लीनता द्वारा मिथ्यात्व (मोह) और कषाय (राग-द्वेष) का त्याग भाव (निश्चय) सामायिक है। भाव (निश्चय) सामायिक होने पर ही नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र व काल सामायिक सच्ची सामायिक कहलाती है।

1.concentration

प्रवेश : और चतुर्विंशति स्तव ?

समकित : **2. चतुर्विंशति स्तवः** जैसे कि नाम से ही समझ में आ रहा है-चौबीस तीर्थंकरों का विधिपूर्वक स्तवन करना ही चतुर्विंशति स्तव है।

यह भी छः प्रकार का हैः

**1. नाम स्तवः** चौबीस तीर्थंकरों का 1008 नामों के द्वारा स्तवन करना ।

**2. स्थापना स्तवः** चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमा का स्तवन करना।

**3. द्रव्य स्तवः** समवसरण में विराजमान चौबीस तीर्थंकरों के स्वरूप का स्तवन करना।

**4. क्षेत्र स्तवः** चौबीस तीर्थंकरों की कल्याणक भूमियों का स्मरण करते हुए स्तवन करना।

**5. काल स्तवः** चौबीस तीर्थंकरों की कल्याणक तिथियों का स्मरण करते हुये स्तवन करना

**6. भाव स्तवः** चौबीस तीर्थंकरों जैसे गुणों (स्वभाव) का स्वयं में अनुभव करना भाव (निश्चय) स्तव है।

स्तव भी सामायिक की तरह ही दिन में तीन बार, तीनों संधि कालों (सुबह-दोपहर-शाम) में किया जाता है।

प्रवेश : और वंदना ?

समकित : **3. वंदनाः** किसी एक तीर्थंकर, जिन प्रतिमा, जिन मंदिर, आचार्य परमेष्ठी व जिन तीर्थ आदि की विधिपूर्वक भक्ति करना वंदना है।

वंदना भी सामायिक व स्तव की तरह ही दिन में तीन बार, तीनों संधि कालों में की जाती है।

स्तव की तरह इसके भी छः प्रकार समझना।

सामायिक, स्तव और वंदना को सामूहिक रूप से **कृतिकर्म** कहते हैं। ये तीनों संधि कालों में करने लायक कर्म हैं।

प्रवेश : और प्रतिक्रमण में किसकी भक्ति करते हैं ?

समकित : **4. प्रतिक्रमणः** प्रतिक्रमण में किसी की भक्ति नहीं बल्कि अपने व्रतों में लगे हुए दोषों की समीक्षा[1] कर उन दोषों का निराकरण (त्याग) करते हैं यह एक तरह का कन्फैसन[2] है। यह प्रतिदिन दो बार (सुबह-शाम) किया जाता है।

निश्चय से तो विभाव (शुभ-अशुभ भाव) से स्वभाव (शुद्ध-भाव) में **वापिस लौटना** ही प्रतिक्रमण है।

प्रवेश : क्या प्रतिक्रमण भी अनेक प्रकार का होता है ?

समकित : हाँ, उसकी चर्चा विस्तार से अगले पाठ में करेंगे। अभी तो व्यवहार प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग के स्वरूप को समझते हैं।

**5. प्रत्याख्यानः** व्यवहार प्रतिक्रमण में, व्रतों में लगे दोषों की समीक्षा तो कर ली जाती है, लेकिन यह दोष भविष्य[3] में नहीं लगने दूँगा इस प्रतिज्ञा का नाम व्यवहार प्रत्याख्यान यानि कि त्याग है। इसलिये प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान के बिना अधूरा है क्योंकि हर गलती के लिये हम प्रतिक्रमण करते जायें यानि कि गलती को स्वीकार करते जायें और उसके लिये क्षमायाचना करते जायें लेकिन उस गलती को सुधारे नहीं, यानि कि भविष्य में वह गलती न होने देने की प्रतिज्ञा (प्रत्याख्यान) न करें, तो इस तरह गलती को स्वीकारने और क्षमा याचना (प्रतिक्रमण) करने का कोई अर्थ नहीं रह जाता। वह मात्र औपचारिकता[4] बन के रह जाती है।

जैसे कोई बार-बार किसी गलती के लिये सॉरी[5] बोले और बार-बार वही गलती दोहराये। सॉरी की सार्थकता[6] सिर्फ गलती स्वीकार करके उसके लिये क्षमायचना करने में नहीं है बल्कि ऐसी गलती मैं दोबारा नहीं दोहराऊँगा ऐसा वायदा[7] करने में है।

1.analysis 2.confession 3.future 4.formality 5.sorry 6.usefulness 7.commitment

प्रवेश : प्रत्याख्यान कितनी तरह का होता है ?

समकित : वैसे तो प्रत्याख्यान कई तरह का होता है लेकिन मुख्य भेद तो निम्न हैः

**1. नाम प्रत्याख्यानः** गलत और गंदे नामों का उच्चारण नहीं करूँगा।

**2. स्थापना प्रत्याख्यानः** रागी और अल्पज्ञ कुदेवों की प्रतिमा आदि की विनय और जिनेद्र देव की प्रतिमा आदि की अविनय नहीं करूँगा।

**3. द्रव्य प्रत्याख्यानः** जो पद के लायक नहीं है ऐसे भोजन, वसतिका[1], पुस्तक व उपकरण आदि चीजों का किसी भी कारण[2] से ग्रहण नहीं करुँगा।

**4. क्षेत्र प्रत्याख्यानः** जो जाने लायक नहीं है ऐसे गंदे, हिंसा-पोषक, मिथ्यात्व-पोषक संयम में बाधक[3] व तीव्र-कषाय में निमित्त स्थान पर नहीं जाऊँगा।

**5. काल प्रत्याख्यानः** अकाल[4] में भोजन, गमन[5], शयन[6] व स्वाध्याय आदि नहीं करुँगा।

**6. भाव प्रत्याख्यानः** शुभ-अशुभ (अशुद्ध) भावों का त्याग या कहो कि शुद्ध-भावों को प्रगट करना भाव (निश्चय) प्रत्याख्यान है।

**6. कायोत्सर्ग (व्युत्सर्ग)ः** काय-आदि[7] का उत्सर्ग (त्याग) कायोत्सर्ग है। शारिरिक-क्रियाओं[8] को बंद कर शरीर में अपनापन और लीनता छोड़कर आत्मा में अपनापन और लीनता करना निश्चय कायोत्सर्ग है और ऐसे निश्चय कायोत्सर्ग का प्रयास[9] करना व्यवहार कायोत्सर्ग है।

निश्चय कायोत्सर्ग शुद्ध-भाव रूप होने से संवर-निर्जरा का कारण है व व्यवहार कायोत्सर्ग शुभ-भाव रूप होने से पुण्य-बंध का कारण है। कायोत्सर्ग का जघन्य[10] काल 108 श्वास-उच्छ्वास है।

प्रवेश : कायोत्सर्ग की विधि क्या है ?

---

1.shelter 2.reason 3.obstructive 4.inappropriate-time 5.walk
6.sleep 7.body-etc 8.physical-activities 9.effort 10.minimum

समकित : एकांत स्थान में पूर्व या उत्तर दिशा[1] की तरफ या जिन-प्रतिमा अथवा जिन-मंदिर की तरफ मुँह करके खड़े होकर, दोनों हाथ लंबे छोड़कर, दोनों पैरों के बीच चार-अंगुल[2] का अंतर[3] रखकर, शरीर की क्रियाओं (हलन-चलन आदि) को बंद कर व उपसर्ग-परिषह[4] को जीतकर कायोत्सर्ग किया जाता है।

प्रवेश : यह कब किया जाता है ?

समकित : प्रतिक्रमण आदि आवश्यकों के समय एवं आहार, विहार, निहार व स्वाध्याय आदि क्रियाओं के बाद नियमपूर्वक कायोत्सर्ग किया जाता है। बाकी कल..!

**शुद्ध-उपयोग व अशुद्ध-उपयोग के काल में जीव के ज्ञान, श्रद्धा व चारित्र गुण का परिणमनः**

| जीव | | शुद्ध-उपयोग के काल में | | अशुद्ध-उपयोग के काल में | |
|---|---|---|---|---|---|
| गुण | पर्याय | स्व में | पर में | स्व में | पर में |
| ज्ञान | उपयोग | ✓ | | | ✓ |
| | लब्ध | | ✓ | ✓ | |
| श्रद्धा | अपनापन | ✓ | | ✓ | |
| चारित्र | उपयोग | ✓ | | | ✓ |
| | परिणति | आंशिक ✓ | | आंशिक ✓ | |

पहले ध्यान सच्चा नहीं होता। पहले ज्ञान सच्चा होता है कि-मैं इन शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पार्शादि सबसे पृथक् हूँ, अंतरमें जो विभाव होता है वह मैं नहीं हूँ, ऊँचे से ऊँचे जो शुभभाव वह मैं नहीं हूँ, मैं तो सबसे भिन्न ज्ञायक हूँ।

गृहस्थाश्रम में वैराग्य होता है परन्तु मुनिराज का वैराग्य कोई और ही होता है। मुनिराज तो वैराग्य-महल के शिखर के शिखामणि हैं।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1.direction 2.four-fingers 3.gap 4.calamities-distractions

## ४

# प्रतिक्रमण

प्रतिक्रमण के सामान्य-स्वरूप[1] की चर्चा तो हम पिछले पाठ में ही कर चुके हैं। अब हमें प्रतिक्रमण के भेदों की चर्चा करनी है।

प्रतिक्रमण के भेद अनेक आधारों[2] पर किये गये हैं। जैसे-

1. पात्र (प्रतिक्रमण करने वाले) के आधार पर
2. निक्षेप के आधार पर
3. समय के आधार पर
4. प्रयोजन[3] के आधार पर

प्रवेश : एक-एक करके समझाईये न।

समकित : ठीक है !

1. पात्र के आधार पर प्रतिक्रमण के भेदः

**अ) यति प्रतिक्रमणः** मुनि (आचार्य, उपाध्याय, साधु) के द्वारा किया जाने वाला प्रतिक्रमण।

**ब) श्रावक प्रतिक्रमणः** श्रावक के द्वारा किया जाने वाला प्रतिक्रमण।

2. निक्षेप (नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) के आधार पर प्रतिक्रमण के भेदः

**अ) नाम प्रतिक्रमणः** गंदे नामों के उच्चारण[4] के लिये प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

**ब) स्थापना प्रतिक्रमणः** रागी-द्वेषी और अल्पज्ञ देवी-देवता की प्रतिमा आदि की विनय[5] हो जाने या फिर वीतरागी और सर्वज्ञ जिनेद्र देव की प्रतिमा आदि की अविनय[6] हो जाने पर प्रतिक्रमण कर प्रत्याखयान करना।

---

1.general-aspect 2.basis 3.purpose 4.pronounciation 5.honour 6.dishonour

**स) द्रव्य प्रतिक्रमणः** जो अपने ग्रहण करने लायक नहीं हैं ऐसे भोजन, वसतिका व उपकरण आदि को ग्रहण[1] कर लेने पर प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

**द) क्षेत्र प्रतिक्रमणः** जो अपने जाने लायक नहीं है ऐसे गंदे, हिंसा-पोषक, मिथ्यात्व-पोषक व संयम में बाधक स्थान में चले जाने पर प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

**ड) काल प्रतिक्रमणः** असमय (अयोग्य समय) में गमन आदि करने या फिर आवश्यक क्रियाओं के समय गमानादि करने के लिये प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

**फ) भाव प्रतिक्रमणः** समस्त शुभ-अशुभ भावों का प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान (त्याग) करना यानि कि शुद्ध-भावों को प्रगट करना भाव (निश्चय) प्रतिक्रमण है।

भाव प्रतिक्रमण होने पर ही सभी प्रतिक्रमण सच्चे कहलाते हैं और ध्यान रहे प्रतिक्रमण बिना प्रत्याख्यान के सार्थक[2] नहीं होता।

प्रवेश : समय के आधार पर प्रतिक्रमण के भेद कोने से हैं ?

समकित : 2. समय के आधार पर प्रतिक्रमण के भेदः

**अ) दैवसिक प्रतिक्रमणः** पूरे दिन में लगे दोषों के लिए प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

**ब) रात्रिक प्रतिक्रमणः** पूरी रात में लगे दोषों के लिये प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

**स) साप्ताहिक प्रतिक्रमणः** पूरे सत्पाह[3] में लगे दोषों के लिये प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

**द) पाक्षिक प्रतिक्रमणः** पूरे पंद्रह दिन (पक्ष) में लगे दोषों के लिये प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

1.accept/adopt 2.meaningfull 3.week

**इ) मासिक प्रतिक्रमणः** पूरे महीने में लगे दोषों के लिये प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

**ज) चातुर्मासिक प्रतिक्रमणः** पूरे चार महीने में लगे दोषों के लिये प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

**क) वार्षिक प्रतिक्रमण (सांवत्सरिक)**: पूरे साल भर में लगे दोषों के लिये प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

**ल) युग प्रतिक्रमणः** पूरे पाँच साल में लगे हुये दोषों के लिये प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

प्रवेश : यह विषय तो बहुत ही रोचक[1] है। प्रतिक्रमण के इतने भेद हो सकते हैं यह तो मैंने कभी सोचा भी नहीं था।

समकित : और सुनो !

3. प्रयोजन[2] के आधार पर प्रतिक्रमण के भेदः

**अ) ईर्या-पथ प्रतिक्रमणः** ईर्या समिति पूर्वक गमन करने पर भी जो दोष लग जाते हैं उनके लिये प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

**ब) भक्तपान प्रतिक्रमणः** आहार-चर्या (गोचरी) में लगने बाले दोषों के लिये प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

**स) ज्ञानाचार प्रतिक्रमणः** शास्त्र-स्वाध्याय में लगे दोषों के लिये प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

**द) उत्तमार्थ प्रतिक्रमणः** सल्लेखना (संथारा) लेते समय, दीक्षा से लेकर तब तक लगे दोषों के लिये प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

**इ) सर्वातिचारिक प्रतिक्रमणः** पूरी दीक्षा पर्याय में लगे हुये दोषों के लिये जीवन के उपान्त्य-समय[3] में प्रतिक्रमण कर प्रत्याख्यान करना।

प्रवेश : यह सुनकर तो हमें भी दीक्षा लेने के भाव पैदा हो गये।

1.interesting 2.purpose 3.second-last

समकित : इससे अच्छी भावना और क्या हो सकती है। लेकिन सम्यकचारित्र (छठवाँ-सातवाँ गुणस्थान) प्रगट[1] करने के लिये सम्यकदर्शन (चौथा गुणस्थान) प्रगट करना अत्यंत[2] आवश्यक है। और सम्यकदर्शन के लिये आत्मानुभूति[3]। आत्मानुभूति के लिये स्व-पर भेद विज्ञान व भेद-विज्ञान के लिये तत्व-निर्णय और सच्चे वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु का निर्णय करना अत्यंत आवश्यक[4] है एवं यह सब चारों अनुयोगों के क्रमिक[5] व व्यवस्थित[6] स्वाध्याय के बिना नामुमकिन है। इसीलिये पूरी निष्ठा[7] के साथ चारों अनुयोगों के एक-एक शब्द की सही अपेक्षा[8] समझकर, योग्य-शिक्षक[9] के मार्गदर्शन[10] में स्वाध्याय करना अत्यंत आवश्यक है।

प्रवेश : अनात्मज्ञानी मिथ्यादृष्टि का पहला गुणस्थान, आत्मज्ञानी अविरत-सम्यकदृष्टि का चौथा गुणस्थान, आत्मज्ञानी व्रती-श्रावक का पाँचवा गुणस्थान, आत्मज्ञानी मुनिराज का छठवें से बारहवाँ गुणस्थान, अरिहंत भगवान का तेरहवाँ-चौदहवाँ गुणस्थान होता है व सिद्ध भगवान गुणस्थानातीत होते हैं। यह बात तो आप पहले ही बता चुके हैं लेकिन कृपया विस्तार से गुणस्थानों का स्वरूप बताईये।

समकित : हमारा अगला विषय यही है।

जो केवलज्ञान प्राप्त कराये ऐसा अन्तिम पराकाष्ठा का ध्यान वह उत्तम प्रतिक्रमण है । इन महा मुनिराजने ऐसा प्रतिक्रमण किया कि दोष पुनः कभी उत्पन्न ही नहीं हुए; ठेठ श्रेणी लगा दी कि जिसके परिणाम से वीतरागता होकर केवलज्ञान का सारा समुद्र उछल पड़ा ! अन्तर्मुखता तो अनेक बार हुई थी, परन्तु यह अन्तर्मुखता तो अन्तिमसे अन्तिम कोटिकी! आत्माके साथ पर्याय ऐसी जुड़ गई की उपयोग अंदर गया सो गया, फिर कभी बाहर आया ही नहीं । चैतन्यपदार्थ को जैसा ज्ञानमें जाना था, वैसा ही उसको पर्यायमें प्रसिद्ध कर लिया।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1.achieve 2.extremely 3.self-experience 4.essential 5.sequential 6.systematic 7.dedication 8.intention 9.capable-teacher 10.guidance

## 9

# देव-स्तुति

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन ।
सो जिनेंद्र जयवंत नित, अरि-रज-रहस विहीन।।1।।

जय वीतराग विज्ञानपूर।
जय मोहतिमिर को हरन सूर।।
जय ज्ञान अनंतानंत धार ।
दृग-सुख-वीरजमंडित अपार।।2।।

**सारांश-** जिनेन्द्र देव की स्तुति करते हुए पण्डित दौलतरामजी कहते हैं कि- हे जनेन्द्र देव ! आप समस्त ज्ञेयों (लोकालोक) का ज्ञान होने पर भी अपनी आत्मा के आनन्द में लीन रहते हो। चार घतिया कर्म हैं निमित्त जिनके ऐसे मोह, राग-द्वेष व अज्ञान आदि विकारों[1] से रहित हो। प्रभो ! आपकी जय हो ।।1।।

आप मोह, राग-द्वेषरूप अंधकार[1] का नाश करनेवाले वीतरागी सूर्य हो। अनन्त[2] ज्ञान के धारण करने वाले हो, अतः पूर्णज्ञानी (सर्वज्ञ) हो तथा अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य से भी सुशोभित[3] हो। हे प्रभो ! आपकी जय हो ।।2।।

जय परमशांत मुद्रा समेत ।
भविजन को निज अनुभूति हेत ।।
भवि भागन वचजोगे वशाय ।
तुम धुनि है सुनि विभ्रम नशाय ।।3।।

तुम गुण चिंतत निज-पर विवेक ।
प्रगटै विघटै आपद अनेक ।।
तुम जगभूषण दूषणवियक्त ।
सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त ।।4।।

अविरुद्ध, शुद्ध, चेतन-स्वरूप ।
परमात्म परम् पावन अनूप ।।

---

1.darkness 2.infinite 3.adorned

शुभ-अशुभ विभाव अभाव कीन ।
स्वाभाविक परिणतिमय अछीन ।।5।।

अष्टादश दोष विमुक्त धीर ।
स्व-चतुष्टयमय राजत गंभीर ।।
मुनि गणधरादि सेवत महंत ।
नव केवल लब्धिरमा धरंत ।।6।।

तुम शासन सेय अमेय जीव ।
शिव गये जाहिं जैहैं सदीव ।।
भवसागर में दुःख छार वारि ।
तारन को और न आप टारि ।।7।।

यह लखि निज दुःखगद हरणकाज ।
तुमही निमित्त कारण इलाज ।।
जाने तातैं मैं शरण में शरण आय ।
उचरो निज दुःख जो चिर लहाय ।।8।।

**सारांश–** भव्य जीव आपकी परम् शान्तमुद्रा[1] को देखकर अपनी आत्मा की अनुभूति[2] प्राप्त करने का लक्ष्य[3] करते हैं । भव्य जीवों के भाग्य[4] से और आपके वचनयोग से आपकी दिव्यध्वनि[5] होती है, उसको श्रवण कर भव्य जीवों का भ्रम[6] नष्ट हो जाता है ।।3।।

आपके गुणों का चिंतवन् करने से स्व और पर का भेद-विज्ञान हो जाता है और मिथ्यात्व-दशा[7] में होने वाली अनेक आपत्तियाँ (विकार) नष्ट हो जाती हैं। आप समस्त दोषों[8] से रहित हो, सब विकल्पों[9] से मुक्त हो, सर्व प्रकार की महिमा[10] धारण करने वाले और जगत के भूषण (सुशोभित करनेवाले) हो।।4।।

हे परमात्मा ! आप समस्त उपमाओं[11] से रहित, परम-पवित्र, शुद्ध व चेतन (ज्ञान-दर्शन) मय हो। आप में किसी भी प्रकार का विरोध[12] भाव नहीं है। आपने शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के विकारी-भावों का अभाव कर दिया है और स्वभाव-भाव से युक्त हो गये हो, अतः कभी भी क्षीण[13] दशा को प्राप्त होने वाले नहीं हो।।5।।

1.peaceful-posture 2. self-experience 3.aim 4.fortune 5.sermons 6.delusion 7.false-belief 8.flaws 9.worries 10.glory 11.compassion 12.adverse 13.inferior

आप अठारह दोषों से रहित हो और अनंत चतुष्टय युक्त विराजमान हो। केवलज्ञानादि नौ प्रकार के क्षायिक-भावों को धारण करने वाले होने से महान मुनि और गणधर देवादि आपकी सेवा करते हैं ।।6।।

आपके बताये मार्ग पर चलकर अनंत जीव मुक्त[1] हो गये हैं, हो रहे हैं और सदाकाल[2] होते रहेंगे। इस संसार रूपी समुद्र में दुःख रूपी अथाह[3] खारा-पानी[4] भरा हुआ है। आपको छोड़कर और कोई भी इससे पार नहीं उतार सकता है ।।7।।

इस भयंकर दुःख को दूर करने में निमित्त कारण आप ही हो, ऐसा जानकर मैं आपकी शरण[5] में आया हूँ और अनंत काल से जो दुःख पाया है, उसे आपसे कह रहा हूँ ।।8।।

मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप ।
अपनाये विधि फल पुण्य-पाप ।।
निज को पर का करता पिछान ।
पर में अनिष्टता इष्ट ठान ।।9।।

आकुलित भयो अज्ञान धारि ।
ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि ।।
तन-परिणति में आपो चितार ।
कबहुँ न अनुभवो स्वपदसार ।।10।।

तुमको बिन जाने जो क्लेश ।
पाये सो तुम जान जिनेश ।।
पशु, नारक, नर, सुरगति मँझार ।
भव धर-धर मर्‍यो अनंत बार ।।11।।

अब काललब्धि बलतैं दयाल ।
तुम दर्शन पाय भयो खुशाल ।।
मन शांत भयो मिटि सकल द्वंद्व।
चाख्यो स्वातम-रस दुख-निकंद ।।12।।

1.liberate 2.forever 3.immeasurable 4.hard-water 5.shelter

तातैं अब ऐसी करहुँ नाथ।
बिछुरै न कभी तुव चरण साथ।।
तुम गुणगण को नहिं छेव देव।
जग तारन को तुव विरद एव।।13।।

आतम के अहित विषय-कषाय।
इनमें मेरी परिणति न जाय।।
मैं रहूँ आप में आप लीन।
सो करो होऊँ ज्यों निजाधीन।।14।।

मेरे न चाह कछु और ईश।
रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश।।
मुझ कारज के कारण सु आप।
शिव करहुँ हरहुँ मम् मोहताप।।15।।

**सारांश-** मैं अपनी ज्ञानस्वभावी आत्मा को भूलकर अपने आप ही संसार में भ्रमण[1] कर रहा हूँ और मैंने कर्मों के फल पुण्य और पाप को अपना मान लिया है। अपने को पर का कर्ता मान लिया है और अपना कर्ता पर को मान लिया है।।9।।

और पर-पदार्थों में से ही कुछ को इष्ट[2] मान लिया है और कुछ को अनिष्ट[3] मान लिया है। परिणाम स्वरूप अज्ञान को धारण करके स्वयं ही आकुलित[4] हुआ हूँ, जिसप्रकार कि हिरण मृगतृष्णा वश बालू[5] को पानी समझकर अपने अज्ञान से ही दुःखी होता है। उसी प्रकार मैंने भी शरीर की दशा को ही अपनी दशा मानकर अपने पद (आत्म-स्वभाव) का अनुभव[6] नहीं किया और दुःख पाया।।10।।

हे जिनेश ! आपको पहिचाने बिना जो दुःख मैंने पाये हैं, उन्हें आप जानते ही हैं। तिर्यंच गति, नरक गति, मनुष्य गति और देव-गति में उत्पन्न होकर अनन्त बार मरण किया है।।11।।

अब काललब्धि के आने पर आपके दर्शन प्राप्त हुए हैं, इससे मुझे बहुत ही प्रसन्नता है। मेरा अन्तर्द्वन्द्व[7] समाप्त हो गया है और मेरा मन शान्त हो गया है और मैंने दुःखों को नाश करने वाली आत्मानुभूति को प्राप्त कर लिया है।।12।।

1.wander 2.favored 3.unfavored 4.restless 5.sand 6. experience 7.confusion

अतः हे नाथ ! अब बस यही भावना है की आपके चरणों के साथ का वियोग[1] न हो। तात्पर्य यह है कि जिस मार्ग (आचरण) द्वारा आप पूर्ण सुखी हुए हैं, मैं भी वही प्राप्त करूँ। हे देव ! आपके गुणों का तो कोई अन्त नहीं है और संसार से पार उतारने का तो मानो आपका विरद्[2] ही है ।।13।।

पाँचों इन्द्रियों के विषयों में लीनता और कषायें आत्मा का अहित[3] करने वाली हैं । हे प्रभो ! मैं चाहता हूँ कि इनकी ओर मेरा झुकाव[4] न हो । मैं तो अपने में ही लीन रहूँ, जिससे मैं पूर्ण स्वाधीन[5] हो जाऊँ ।।14।।

मेरे हृदय में और कोई इच्छा नहीं है, बस एक रत्नत्रय निधि[6] ही पाना चाहता हूँ। मेरे हित रूपी कार्य के निमित्त कारण आप ही हो । मेरा मोह-ताप नष्ट होकर कल्याण हो, यही भावना है ।।15।।

शशि शांतिकरन तपहरन हेत ।
स्वयमेव तथा तुम कुशल देत ।।
पीवत पीयूष ज्यों रोग जाय ।
त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय ।।16।।

त्रिभुवन तिहुँकाल मँझार कोय ।
नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय ।।
मो उर यह निश्चय भयो आज ।
दुख-जलधि उतारन तुम जहाज ।।17।।

तुम गुणगणमणि गणपति,
गणत न पावहिं पार ।
**दौल** स्वल्पमति किम कहै,
नमूँ त्रियोग संभार ।।18।।

**सारांश-** जैसे चन्द्रमा स्वयमेव[7] गर्मी कम करके शीतलता[8] प्रदान करता है, उसीप्रकार आपकी स्तुति करने से स्वयमेव ही आनन्द प्राप्त होता है। जैसे अमृत[9] के पीने से रोग चला जाता है, उसी प्रकार आपके समान अपनी शुद्धात्मा का अनुभव करने से संसार-रूपी रोग चला जाता है ।।16।।

1.seperation 2.fame 3.harm 4.inclination 5.independent 6.treasure 7.naturally 8.coolth 9.medicine

तीनों लोकों और तीनों कालों में आपसे सुखदायक (सन्मार्ग-दर्शक) और कोई नहीं है। आज मुझे ऐसा निश्चय हो गया है कि आप ही दुःखरूपी समुद्र से पार उतारने वाले जहाज हैं ।।17।।

आपके गुण-रूपी मणियों[1] को गिनने में गणधर देव भी समर्थ नहीं है, तो फिर मैं (दौलतराम) अल्पबुद्धि उनका वर्णन[2] किस प्रकार कर सकता हूँ। अतः मैं आपको मन, वचन और काय को संभाल[3] कर बार-बार नमस्कार करता हूँ ।।18।।

| अपूर्णता/अशुद्धता | | | मूल घातिया कर्म | अनंत चतुष्टय | उत्तर घातिया कर्म | नव क्षायिक लब्धियाँ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| रज | अज्ञान | अज्ञान | ज्ञानावरण कर्म | अनंत ज्ञान | ज्ञानावरण कर्म | क्षायिक ज्ञान |
| | | अदर्शन | दर्शनावरण कर्म | अनंत दर्शन | दर्शनावरण कर्म | क्षायिक दर्शन |
| अरि | मोह | मिथ्यात्व | मोहनीय कर्म | अनंत सुख | दर्शन मोह.कर्म | क्षायिक सम्यकत्व |
| | राग-द्वेष | कषाय | | | चारित्र मोह.कर्म | क्षायिक चारित्र |
| रहस | सामर्थ्यहीनता | असमर्थता | अंतराय कर्म | अनंत वीर्य | दानांतराय कर्म | क्षायिक दान |
| | | | | | लाभांतराय कर्म | क्षायिक लाभ |
| | | | | | भोगांतराय कर्म | क्षायिक भोग |
| | | | | | उपभोगांतराय कर्म | क्षायिक उपभोग |
| | | | | | वीर्यांतराय कर्म | क्षायिक वीर्य |

स्वभाव की बात सुनते ही सीधी हृदय पर चोट लग जाय। 'स्वभाव' शब्द सुनते ही शरीर को चीरता हुआ हृदय में उतर जाय, रोम-रोम उल्लसित हो जाय-इतना हृदय में हो, और स्वभाव को प्राप्त किये बिना चैन न पड़े, सुख न लगे, उसे लेकर ही छोड़े। यथार्थ भूमिका में ऐसा होता है।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1.pearls 2.narration 3.focus

# चौदह गुणस्थान

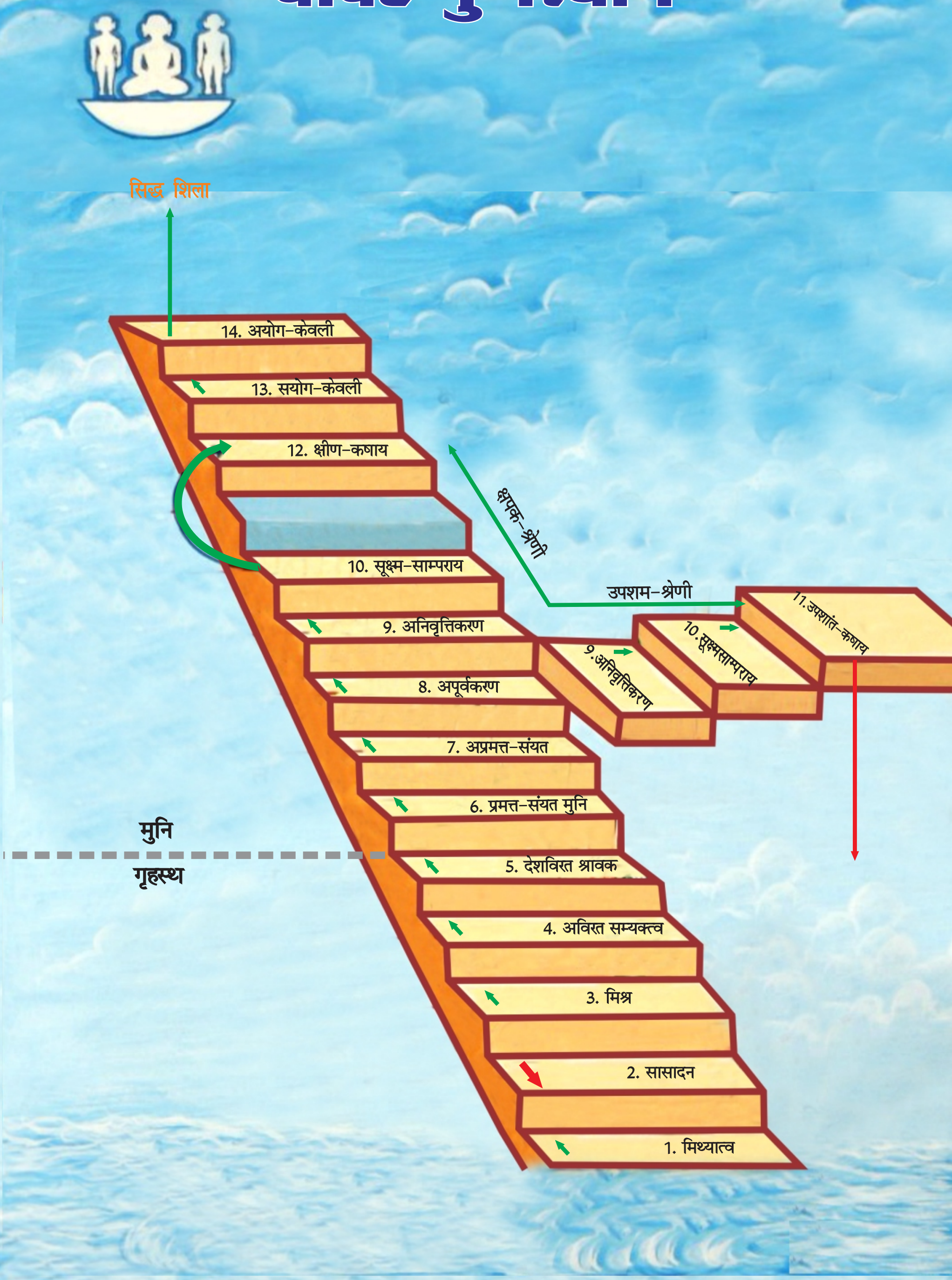
सिद्ध शिला
14. अयोग–केवली
13. सयोग–केवली
12. क्षीण–कषाय
क्षपक–श्रेणी
10. सूक्ष्म–साम्पराय
उपशम–श्रेणी
11.उपशांत–कषाय
10.सूक्ष्मसाम्पराय
9.अनिवृत्तिकरण
9. अनिवृत्तिकरण
8. अपूर्वकरण
7. अप्रमत्त–संयत
6. प्रमत्त–संयत मुनि
मुनि
गृहस्थ
5. देशविरत श्रावक
4. अविरत सम्यक्त्व
3. मिश्र
2. सासादन
1. मिथ्यात्व

# 1
# गुणस्थान

समकित : गुण का अर्थ है जीव के भाव यानि कि पर्याय। जीव की पर्यायों के तारतम्य[1] से जो चौदह स्थान[2] बनते हैं, उन्हें चौदह गुणस्थान कहते हैं।

प्रवेश : यहाँ जीव के कौन से गुणों की पर्याय लेना ?

समकित : मुख्य-रूप-से[3] जीव के श्रद्धा, चारित्र और योग गुण की पर्याय लेना, क्योंकि पहले से चौथे गुणस्थान तक का कथन **श्रद्धा गुण** की मुख्यता[4] से है। पाँचवें से बारहवें गुणस्थान तक का कथन **चारित्र गुण** की मुख्यता से है और तेरहवें-चौहदवें गुणस्थान का कथन **योग गुण** की मुख्यता से है।

प्रवेश : वे चौदह गुणस्थान कौन-कौन से हैं ?

समकित : वे निम्न हैं:

1. मिथ्यात्व (मिथ्यादर्शन)
2. सासादन
3. मिश्र (सम्यक-मिथ्यात्व)
4. अविरत सम्यकदर्शन (सम्यक्त्व)
5. देशविरत (देश-संयत)
6. प्रमत्त-संयत
7. अप्रमत्त-संयत
8. अपूर्वकरण
9. अनिवृत्तिकरण
10. सूक्ष्म-साम्पराय
11. उपशांत-कषाय
12. क्षीण-कषाय
13. सयोग-केवली
14. अयोग-केवली

1. sequence 2. positions 3.majorly 4.prominance

प्रवेश : कृपया एक-एक का स्वरूप विस्तार से समझाईये।

समकित : ठीक है !

**1. मिथ्यात्व (मिथ्यादर्शन) गुणस्थानः** मिथ्या का अर्थ है अयथार्थ/विपरीत[1]। इस गुणस्थान वाले जीव को न तो सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के स्वरूप की और न ही उनके द्वारा बताये गये जीव आदि प्रयोजन भूत तत्वों की यथार्थ-श्रद्धा[2] होती है। यानि कि यह जीव आत्मानुभव पूर्वक अजीव आदि तत्वों से भिन्न जीव तत्व (शुद्धात्मा) की प्रतीति (अपनापन) नहीं करता।

पहले गुणस्थानवर्ती मिथ्यादृष्टि जीव दो प्रकार के होते हैं:

1. अनादि मिथ्यादृष्टि 2. सादि मिथ्यादृष्टि

**अनादि मिथ्यादृष्टि** जीव वे हैं जिन्हें अनादिकाल से आज तक अपने शुद्धात्मा की आत्मानुभव पूर्वक प्रतीति[3] यानि कि सम्यकदर्शन हुआ ही नहीं।

**सादि मिथ्यादृष्टि** जीव वे हैं जिन्हें सम्यकदर्शन होकर छूट गया है और वे फिर से मिथ्यादृष्टि हो गये हैं।

प्रवेश : एक बार सम्यकदर्शन होकर छूट जाता है ? कैसे ?

समकित : हाँ, अब हम यही देखने वाले हैं कैसे। इसीलिये दूसरे व तीसरे गुणस्थान से पहले हम चौथे गुणस्थान (अविरत् सम्यकदर्शन) के बारे में समझेंगे।

**4. अविरत सम्यकदर्शन (सम्यक्त्व):**

जो जीव सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप समझकर उनके बताये हुए जीव आदि प्रयोजनभूत तत्वों का यथार्थ-निर्णय कर आत्मानुभव यानि कि शुद्धात्मा को जानकर, उसमें अपनापन कर **दर्शन-मोहनीय (मिथ्यात्व)** का अनुदय[4] करता है और साथ ही साथ शुद्धात्मा में पहले स्तर की लीनता कर आनंतानुबंधी कषाय का अनुदय करता है, उसे

1.opposite 2.right-belief 3.belief 4.un-rise

चौथा अविरत् सम्यकदर्शन गुणस्थान प्रगट होता है।

जब अनादि मिथ्यादृष्टि जीव इस प्रकार मिथ्यात्व और आनंतानुबंधी कषाय का अनुदय कर अविरत सम्यकदर्शन प्रगट करता है तो उसके दर्शन-मोहनीय (मिथ्यात्व) के तीन टुकड़े[1] हो जाते हैं:

1. मिथ्यात्व प्रकृति 2. मिश्र (सम्यक-मिथ्यात्व) प्रकृति 3. सम्यक्त्व प्रकृति

सम्यकदर्शन प्रगट होने से अधिकतम एक अंतर्मुहूर्त[2] तक इन तीनों टुकड़ों का उदय[3] नहीं होता। इस दशा[4] को प्रथमोपशम (प्रथम-उपशम) सम्यक्त्व कहते हैं।

यदि यह अंतर्मुहूर्त (प्रथमोपशम-सम्यक्त्व) का समय पूरा न हो पाये और उसको वापिस आनंतानुबंधी कषाय का उदय आ जाये तो वह जीव सम्यक्त्व की असादना[5] करके दूसरे सासादन गुणस्थान में गिर जाता है।

प्रवेश : यदि प्रथमोपशम-सम्यक्त्व का अंतर्मुहूर्त पूरा हो जाये तो ?

समकित : अंतर्मुहूर्त पूरा होने के बाद निम्न संभावनाएँ बनती हैं:

1. यदि अंतर्मुहूर्त पूरा होने पर मिथ्यात्व प्रकृति का उदय आ जाये तो जीव पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में गिर जाता है।

2. यदि अंतर्मुहूर्त पूरा होने पर मिश्र (सम्यक-मिथ्यात्व) प्रकृति का उदय आ जाये तो वह जीव तीसरे मिश्र (सम्यक-मिथ्यात्व) गुणस्थान में गिर जाता है।

3. और यदि अंतर्मुहूर्त पूरा होने पर सम्यक्त्व प्रकृति (मिथ्यात्व का तीसरा टुकड़ा) का उदय आ जाये, तो वह जीव रहता तो चौथे अविरत् सम्यक्त्व गुणस्थान में ही है, लेकिन प्रथमोपशम सम्यकदृष्टि से क्षायोपशमिक सम्यकदृष्टि हो जाता है। यह क्षायोपशमिक सम्यकदृष्टि होता तो सम्यकदृष्टि ही है लेकिन इसको कुछ केवली के ज्ञानगम्य चल-मल-अगाढ़ दोष[6] लगते रहते हैं।

1.parts 2.less than 48 minutes 3.arise 4.state 5.dishonour 6.flaws

प्रवेश : और क्षायिक सम्यकदर्शन ?

समकित : यदि यह क्षायोपशमिक सम्यकदृष्टि तीव्र-पुरुषार्थ[1] करके दर्शन मोहनीय (मिथ्यात्व) के तीनों टुकडों को जड़ से नष्ट[2] कर दे तो क्षायिक सम्यकदृष्टि हो जाता है यानि कि अनंतकाल[3] तक सम्यकदृष्टि ही रहता है और कभी-भी चौथे गुणस्थान से नीचे नहीं गिरता बल्कि ऊपर ही ऊपर उठता है। क्षायिक सम्यकदर्शन से पहले औपशमिक व क्षायोपशमिक सम्यकदृष्टि के मिथ्यात्व के तीनों टुकड़े मौजूद तो थे लेकिन वह उनका यथायोग्य उदय[4] नहीं आने दे रहे थे मगर क्षायिक सम्यकदृष्टि ने अपने तीव्र पुरुषार्थ द्वारा उन तीनों टुकड़ों को जड़ मूल से नष्ट कर दिया है।

प्रवेश : तीव्र पुरुषार्थ मतलब ?

गुरूजी : स्वयं को जानने, स्वयं में अपनापन करने व स्वयं लीन होने का तीव्र पुरुषार्थ।

प्रवेश : दर्शन-मोहनीय (मिथ्यात्व) के तीन टुकड़े मिथ्यात्व, सम्यक-मिथ्यात्व व सम्यक्त्व प्रकृति हैं। तीसरे टुकड़े को सम्यक्त्व क्यों कहा गया है ?

समकित : हमने देखा न कि सम्यक्त्व नाम के टुकड़े का उदय आने पर जीव का सम्यक्त्व छूटता नहीं बस औपशमिक से क्षायोपशमिक हो जाता है। इसलिये दर्शन-मोहनीय (मिथ्यात्व) के टुकड़े को भी यहाँ उपचार-से[5] सम्यक्त्व प्रकृति कह दिया गया है।

प्रवेश : दर्शन-मोहनीय (मिथ्यात्व) टुकड़ों में बँट गया इसका मतलब यही मतलब है न कि मिथ्यात्व तीन श्रेणियों[6] में बँट गया है: एक तीव्र[7] दूसरी मध्यम[8] और तीसरी जघन्य[9] ?

समकित : हाँ, ऐसा समझ सकते हैं।

प्रवेश : यह तो बहुत ही रोचक[10] विषय है। दूसरे व तीसरे गुणस्थान के बारे में भी बताईये न।

1.intense-efforts 2.destroy 3.infinity 4.arise 5.formally
6.intensities 7.high 8.medium 9.low 10.interesting

समकित : **1. सासादन गुणस्थानः** जैसा कि हमने देखा कि चौथा गुणस्थान प्रगट[1] होने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्व का अंतर्मुहूर्त पूरा न हो पाये और अनंतानुबंधी कषाय का उदय[2] आ जाये तो जीव सम्यक्त्व की असादना (विराधना) कर चौथे अविरत् सम्यकदर्शन गुणस्थान से दूसरे सासादन गुणस्थान में आ जाता है यानि कि उसका सम्यक्त्व छूट जाता है।

प्रवेश : दूसरे गुणस्थान में वह जीव कितने समय तक रहता है ?

समकित : जितना समय प्रथमोपशम सम्यक्त्व का अंतर्मुहूर्त पूरा होने में बाकी[3] रह गया था उतने समय तक वह जीव दूसरे सासादन गुणस्थान में रहता है।

प्रवेश : उसके बाद ?

समकित : उसके बाद वह नियम से पहले गुणस्थान में आ जाता है। जैसे कोई छिपकली छत[4] से गिरे तो भले ही कुछ देर हवा में रहे लेकिन आना तो उसे जमीन पर ही है।

प्रवेश : इस उदाहरण के हिसाब से छिपकली है-जीव, छत है-चौथा गुणस्थान, हवा है-दूसरा गुणस्थान और जमीन है- पहला गुणस्थान ?

समकित : हाँ बिलकुल सही पहचाना। अब आगे सुनो !

**3. मिश्र (सम्यक-मिथ्यात्व) गुणस्थानः** जैसा कि हमने देखा कि चौथा गुणस्थान प्रगट[5] होने पर प्रथमोपशम सम्यक्त्व का अंतर्मुहूर्त पर होने के बाद यदि मिश्र (सम्यक-मिथ्यात्व) प्रकृति का उदय आ जाये तो जीव चौथे अविरत् सम्यकदर्शन गुणस्थान से गिरकर तीसरे मिश्र गुणस्थान में आ जाता है।

प्रवेश : इस गुणस्थान का नाम सम्यक-मिथ्यात्व क्यों है ?

समकित : क्योंकि यहाँ न सम्यक्त्व ही है और न मिथ्यात्व ही। कोई तीसरा ही केवली के ज्ञान गम्य परिणाम[6] है। जैसे दही और गुड़ को मिला दिया जाये तो फिर वह मिश्रण[7] न खट्टा ही होता है और न मीठा ही। कोई

1.occur 2.arise 3.remaining 4.ceiling 5.occur 6.state 7.mixture

तीसरे ही जात्यांतर (जुदा) स्वाद वाला होता है।

लेकिन एक बात तो पक्की है कि वह सम्यक्त्व से तो छूट ही गया है।

प्रवेश : इस तीसरे गुणस्थान में जीव कितने समय तक रहता है ?

समकित : अंतर्मुहूर्त तक।

प्रवेश : उसके बाद ?

समकित : यदि इस अंतर्मुहूर्त के भीतर वह दोबारा शुद्धात्मा की प्रतीति[1] में स्थिर[2] हो जाये तो वापिस चौथे अविरत् सम्यकदर्शन गुणस्थान में पहुँच जाता है और यदि वह ऐसा न कर सके तो पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में आ जाता है।

प्रवेश : अच्छा ! अब समझ में आया कि इसीलिये चौथे गुणस्थान तक का कथन[3] श्रद्धा गुण की अपेक्षा से होता है क्योंकि यहाँ मिथ्याश्रद्धा और सम्यकश्रद्धा की मुख्यता[4] से ही बात है।

समकित : हाँ बिलकुल। अब पाँचवे गुणस्थान से चारित्र गुण की मुख्यता से बात होगी। सुनो !

**5. देशविरत् (देशसंयत) गुणस्थानः** चौथे गुणस्थान में अविरत् सम्यकदृष्टि को मिथ्यात्व और अनंतातुबंधी कषाय का अनुदय है। यानि कि उसने आत्मा को जानकर (अनुभव कर), उसमें अपनापन किया है और उसमें पहले स्तर की लीनता की है। जब वह अपनी इस अल्प[5] आत्म-लीनता को बढ़ाकर दूसरे स्तर की कर लेते हैं तो उनको पाँचवा देशविरत् गुणस्थान प्रगट[6] होता है

चौथे गुणस्थान में जब यह जीव आत्मलीनता को पहले स्तर से बढ़ाकर दूसरे स्तर की करने का पुरुषार्थ[7] कर रहे होते हैं तब उनको देशव्रत व प्रतिमाओं की प्रतिज्ञा[8] लेने का सहज शुभ राग आता है और वह अपने योग्य प्रतिमा को धारण कर लेते हैं एवं अपनी आत्मा में

1.belief 2.stable 3.narration 4.prominance
5.minor 6.occur 7.effort 8.pledge

दूसरे स्तर की लीनता कर अविरत् सम्यकदृष्टि से पाँचवा देश-विरति गुणस्थान प्रगट[1] कर लेते हैं।

प्रवेश : इनको देश-विरति, देश (आंशिक)[2] व्रत होने के कारण ही कहते हैं न?

समकित : हाँ, क्योंकि सकल (संपूर्ण)[3] व्रत मुनिराज को ही होते हैं।

यही देश-विरति श्रावक जब अपनी आत्मनीलता को दूसरे स्तर से से बढ़ाकर तीसरे स्तर की करने का पुरुषार्थ करते हैं तो उनको महाव्रत आदि लेने का सहज[4] शुभ-राग आता है और वह मुनि दीक्षा धारण कर लेते हैं व आत्मा में तीसरे स्तर की लीनता कर सातवें अप्रमत्त-संयत गुणस्थान को प्रगट[5] कर लेते हैं।

प्रवेश : पाँचवे गुणस्थान से सीधा सातवाँ गुणस्थान ? फिर छठवाँ ?

समकित : सुनो!

**7. अप्रमत्त संयतः** इस सातवें गुणस्थान में तो मुनिराज को आत्मा में तीसरी स्तर की लीनता है। यह गुणस्थान शुद्ध-भावों (शुद्धोपयोग) का है। यानि कि तीसरे स्तर तक की कषाय (राग) का तो अनुदय[6] है, बाकी रह गई चौथे स्तर की कषाय(राग) भी बहुत ही मंद[7] है यानि कि इस गुणस्थान में मुनिराज को जरा भी प्रमाद[8] नहीं है। इसलिये इस गुणस्थान का नाम अप्रमत्त संयत है। सातवें गुणस्थान का समय अंतर्मुहूर्त है। अंतर्मुहूर्त पूरा होने पर यहाँ से गिरकर मुनिराज छठवें प्रमत्त-संयत गुणस्थान में आ जाते हैं।

**6. प्रमत्त-संयतः** जब सातवें गुणस्थान में मुनिराज का बाकी रहा कषाय (राग) जो कि बहुत ही मंद थी वह थोड़ी-तीव्र[9] हो जाती है तब मुनिराज शुद्ध-भावों (शुद्ध-उपयोग) से शुभ-राग (शुभ-उपयोग) में, यानि कि अल्प प्रमाद वाले इस प्रमत्त-संयत नाम के छठवें गुणस्थान में आ जाते हैं और अपने व्यवहार महाव्रत, मूलगुण आदि को निर्दोष-रीति-से[10] पालते हैं।

1.achieve 2.partial 3.complete 4.automatic 5.achieve 6.un-rise 7.low 8.in-cautiousness 9.little-high 10.flawlessly

प्रवेश : भाईश्री ! मुनिराज को आहार, विहार, निहार व स्वाध्याय आदि की क्रिया इसी गुणस्थान में होती है ?

समकित : हाँ, देखो शुभ-उपयोग भी अशुद्ध-उपयोग ही होने से उसे यहाँ प्रमाद कहा है और इसीलिये इस गुणस्थान का नाम भी प्रमत्त-संयत है।

प्रवेश : छठवें गुणस्थान का काल[1] (समय) कितना है ?

समकित : छठवें गुणस्थान का समय भी अंतर्मुहूर्त है। लेकिन अंतर्मुहूर्त भी कई तरह के होते हैं। छठवें गुणस्थान का अंतर्मुहूर्त सातवें गुणस्थान से दोगुने[2] समय का है। मुनिराज अंतर्मुहूर्त सातवें गुणस्थान (शुद्धोपयोग) और अंतर्मुहूर्त छठवें गुणस्थान (शुभोपयोग) में रहते हैं। इस प्रकार मुनिराज पूरे दिन छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते रहते हैं। **यहाँ एक बात याद रखना कि गुणस्थान संबंधी यह सारा कथन पारमार्थिक दृष्टिकोण व स्थूल तरीके से किया जा रहा है। विशेष जानने के लिए आगम का अभ्यास करना।**

प्रवेश : धन्य हैं मुनिराज ! वे तो साक्षात् परमात्मा के पुत्र हैं !

समकित : बिल्कुल ! हम तो ऐसे मुनिराजों के दासानुदास[3] हैं। शेष आगे .....

अखण्ड द्रव्यको ग्रहण करके प्रमत्त-अप्रमत्त स्थिति में झूले वह मुनिदशा ! मुनिराज स्वरूपमें निरंतर जागृत हैं, मुनिराज जहाँ जागते हैं वहाँ जगत सोता है, जगत जहाँ जागता है वहाँ मुनिराज सोते हैं। 'मुनिराज जो निश्चयनयाश्रित, मोक्षकी प्राप्ति करें'।

निर्विकल्प दशा में 'यह ध्यान है, यह ध्येय है' ऐसे विकल्प टूट चुकते हैं। यद्यपि ज्ञानी को सविकल्प दशा में भी दृष्टि तो परमात्मतत्त्व पर ही होती है, तथापि पंच परमेष्ठी, ध्याता-ध्यान-ध्येय इत्यादि सम्बन्धी विकल्प भी होते हैं, परन्तु निर्विकल्प स्वानुभूति होने पर विकल्पजाल टूट जाता है, शुभाशुभ विकल्प नहीं रहते। उग्र निर्विकल्प दशा में ही मुक्ति है। ऐसा मार्ग है।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1.period 2.double 3.slave of slaves

# 2

# उपशम और क्षपक श्रेणी

अब तक हमने सातवें गुणस्थान तक की चर्चा की। सातवा गुणस्थान दो प्रकार का है: 1.स्वस्थान[1] 2.सातिशय[2]

जिस सातवें गुणस्थान से गिरकर मुनिराज छठवें गुणस्थान में आ जाते हैं और इसीप्रकार छठवें से सातवें व सातवें से छठवें गुणस्थान में झूलते रहते हैं, उस सातवें गुणस्थान को **स्वस्थान अप्रमत्त-संयत** गुणस्थान कहते हैं।

जिस सातवें गुणस्थान से मुनिराज आठवें गुणस्थान में चढ़ने का पुरुषार्थ[3] शुरू कर देते हैं, उस सातवे गुणस्थान को **सातिशय अप्रमत्त-संयत** गुणस्थान कहते हैं। यहाँ अधः प्रवृत्त-करण (विशेष आत्मलीनता) की प्रक्रिया[4] होती है। जिसका काल[5] अंतर्मुहूर्त है।

प्रवेश : सातवें से आठवें गुणस्थान में मुनिराज कैसे पहुँचते हैं ?

समकित : इस प्रक्रिया को श्रेणी-आरोहण[6] कहते हैं। इसमें मुनिराज अपनी तीसरे स्तर की आत्मलीनता को बढ़ाकर चौथे स्तर की (पूर्ण) करने का पुरुषार्थ शुरु कर देते हैं और स्वयं (शुद्धात्मा) में और गहरे-गहरे उतरते जाते हैं। यह पुरुषार्थ सातवें गुणस्थान से ही शुरु होता है इसलिये इसको सातिशय अप्रमत्त-संयत गुणस्थान कहते हैं।

श्रेणी-आरोहण की प्रक्रिया दो प्रकार की होती है:

1. उपशम[7] श्रेणी  2. क्षपक[8] श्रेणी

**उपशम श्रेणी** चढ़ने वाले मुनिराज आत्मलीता बढ़ाकर (अधः-प्रक्तकरण परिणाम कर) सांतवें से आठवें, आठवें से नौवें, नौवें से दसवें और दसवें से ग्यारहवें गुणस्थान गुणस्थान में पहुँच जाते हैं। वहाँ अंतर्मुहूर्त के लिये चौथे स्तर की (पूर्ण) आत्मलीनता (वीतरागता) का अनुभव[9] करते हैं यानि कि औपशमिक (निर्दोष लेकिन अस्थाई)

---

1. regular 2.extra-ordinary 3.effort 4. process 5.period 6.level-ascent 7.suppressing 8.abolishing 9.experience

चारित्र प्राप्त करते हैं, लेकिन अंतर्मुहूर्त पूरा होते ही ग्यारहवें गुणस्थान से वापिस दसवें फिर नौवें फिर आठवें फिर सातवें और फिर छठवें गुणस्थान में पहुँच जाते हैं।

कभी-कभी तो कोई-कोई मुनिराज पहले गुणस्थान में तक पहुँच जाते हैं। हालांकि[1] यह बहुत कम ही होता है। लेकिन इसकी संभावना[2] है।

प्रवेश : ऐसा क्यों होता है कि ग्यारहवें गुणस्थान में जीव चौथे स्तर की (पूर्ण) आत्मलीनता/वीतरागताका अनुभव कर वापिस गिर जाता है व पहले जैसी तीसरे स्तर की आत्मलीनता/वीतरागता वाला हो जाता है ?

समकित : क्योंकि उपशम श्रेणी चढ़ने वाले मुनिराज की आत्मलीनता से कषाय जड़[3] से नष्ट[4] नहीं हो पाती है सिर्फ उपशमित[5] ही हो पाती है। जो चीजें उपशमित की जाती हैं वह उखड़ती जरूर हैं।

प्रवेश : और क्षपक श्रेणी ?

समकित : **क्षपक-श्रेणी** चढ़ने वाले मुनिराज आत्मलीनता बढ़ाकर (अधः प्रवृत्तकरण परिणाम कर) सातवें से आठवें फिर नौवें फिर दसवें और व कषायों को जड़ से नष्ट करते हुये दसवें से सीधे बारहवें गुणस्थान में पहुँचकर पूर्ण आत्मलीनता (वीतरागता) का अनुभव करते हैं और हमेंशा के लिए ऐसे ही हो जाते हैं यानि कि क्षायिक (निर्दोष व स्थाई)[6] चारित्र प्राप्त करते हैं और फिर कभी नीचे नहीं गिरते। हमेंशा पूर्ण वीतरागी रहते हैं।

प्रवेश : क्या, जैसे चौथे गुणस्थान में क्षायिक सम्यकदृष्टि जीव की श्रद्धा गुण की पर्याय हमेंशा के लिये पूर्ण शुद्ध हो गयी थी वैसे ही यहाँ बारहवें गुणस्थान में क्षीण-कषाय मुनि की चारित्र गुण की पर्याय हमेंशा के लिये पूर्ण शुद्ध हो गयी है ?

समकित : हाँ बिल्कुल ! इसीलिये क्षायिक (निर्दोष और स्थाई) सम्यकदृष्टि ही क्षपक श्रेणी चढ़ सकते हैं। औपशमिक (निर्दोष लेकिन अस्थाई) या क्षायोपशमिक (दोष सहित व अस्थाई) सम्यकदृष्टि नहीं।

1.although 2.possibility 3.root 4. abolish 5. suppress 6. flawless & stable

प्रवेश : और उपशम श्रेणी ?

समकित : **उपशम श्रेणी** तो क्षायिक और औपशमिक दोनों ही सम्यकदृष्टि चढ़ सकते हैं। **क्षायोपशमिक सम्यकदृष्टि दोनों में से कोई भी श्रेणी नहीं चढ़ सकते हैं।**

प्रवेश : यदि कोई सातवें गुणस्थान वाले मुनिराज क्षायोपशमिक सम्यकदृष्टि हों तो फिर वे कैसे श्रेणी चढ़ेंगे ?

समकित : सातिशय अप्रमत्त-संयत गुणस्थान की विशेष-आत्मलीनता[1] द्वारा उनका सम्यकदर्शन क्षापोशमिक से औपशमिक या फिर क्षायिक हो जाता है। क्षायिक सम्यकदर्शन प्राप्त करने के बाद वे दोनों में से कोई भी श्रेणी चढ़ सकते हैं लेकिन औपशमिक सम्यकदर्शन प्राप्त करने पर मात्र[2] उपशम श्रेणी ही चढ़ सकते हैं।

प्रवेश : यह अधःप्रवृत्त-करण की प्रक्रिया क्या होती है ?

समकित : **अधःप्रवृत्त करणः** सातिशय अप्रमत्त गुणस्थान में प्रतिसमय[3] जीव की अनंतगुणी[4] आत्मलीनता (विशुद्धि) बढ़ते रहने को अधःप्रवृत्तकरण परिणाम कहते हैं। इन परिणामों का काल[5] भी अंतर्मुहूर्त है।

**एक जीव की अपेक्षा** देखें तो अधःप्रवृत्त-करण स्थित[6] जीव को हर समय अनंतगुणी विशुद्धि[7] बढ़ती जाती है।

जैसे मान लो कि अधःप्रवत्तकरण का अंतर्मुहूर्त बीस समय का है। तो किसी मुनिराज की पहले समय में जो विशुद्धि है, उससे अनंतगुणी विशुद्धि दूसरे समय में होगी।

**अलग-अलग[8] जीवों की अपेक्षा** देखें तो अधःप्रवृत्तकरण के अंत-र्मुहूर्त में आगे-आगे के समय वाले जीवों के परिणाम और पीछे-पीछे के समय वाले जीवों के परिणाम (विशुद्धि), एक-जैसे[9] भी हो सकते हैं और अलग-अलग[10] भी हो सकते हैं।

1.special-self-immersedness 2. only 3.every-moment 4.infinite-times
5.period 6.involved 7.purity 8.different 9.similar 10. different

जैसे मान लो कि अधःप्रवृत्तकरण का अंतर्मुहूर्त बीस समय का है। तो कोई मुनिराज अधःप्रवृत्तकरण के पाँचवें समय में है और कोई मुनिराज अधःप्रवृत्तकरण के तीसरे समय में हैं। तो दोनों के परिणाम (विशुद्धि) एक-जैसे भी हो सकते हैं और अलग-अलग भी।

प्रवेश : और आठवाँ गुणस्थान ?

समकित : **8. अपूर्वकरण गुणस्थानः** इस गुणस्थान में और भी विशेष-आत्मलीनता[1] (विशुद्धि) होती है जिसे अपूर्वकरण परिणाम कहते हैं। इसका काल[2] भी अंतर्मुहूर्त है।

**एक जीव की अपेक्षा,** अपूर्वकरण स्थित[3] जीव को भी हर समय अनंतगुणी विशुद्धि[4] बढ़ती जाती है। जैसे मान लो कि अपूर्वकरण का अंतर्मुहूर्त दस समय का है। तो किसी मुनिराज की पहले समय में जो विशुद्धि है, उससे अनंतगुणी विशुद्धि दूसरे समय में होगी।

**अलग-अलग जीवों की अपेक्षा**, आगे-आगे के समय वाले जीवों के परिणाम पीछे-पीछे के समय वाले जीवों के परिणाम से विशेष विशुद्धि वाले (अपूर्व) ही होते हैं और एक ही समय वाले जीवों के परिणाम एक जैसे भी हो सकते हैं और अलग-अलग भी।

जैसे मान लो अपूर्वकरण का अंतर्मुहूर्त दस समय का है। कोई मुनिराज अपूर्वकरण के पाँचवें समय में है और कोई मुनिराज तीसरे समय में। तो पाँचवें समय वाले मुनिराज की विशुद्धि तीसरे समय वाले मुनिराज की विशुद्धि से अधिक (विशेष) ही होगी। लेकिन मानलो यदि दो मुनिराज पाँचवें समय में ही हैं तो उनकी विशुद्धि एक जैसी भी हो सकती है और अलग-अलग भी।

**9. अनिवृत्तिकरण गुणस्थानः** इस गुणस्थान में और भी अधिक आत्मलीनता (विशुद्धि) होती है जिसे अनिवृत्तिकरण परिणाम कहते हैं। अनिवृत्ति का अर्थ होता है-असमान। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान का काल[5] भी अंतर्मुहूर्त है।

1. special-self-immersedness 2.period 3.involved 4.purity

**एक जीव की अपेक्षा**, अनिवृत्तिकरण स्थित जीव को भी हर समय अनंतगुणी विशुद्धि बढ़ती जाती है। जैसे मान लो कि अनिवृत्तिकरण का अंतर्मुहूर्त पाँच समय का है। तो किसी मुनिराज की पहले समय में जो विशुद्धि है, उससे अनंतगुणी विशुद्धि दूसरे समय में होगी।

**अलग-अलग जीवों की अपेक्षा,** आगे-आगे समय वाले जीवों के परिणाम पीछे-पीछे के समय वाले जीवों के परिणाम से अलग ही होते हैं और एक ही समय वाले जीवों के परिणाम हमेंशा एक जैसे ही होते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के हर समय के परिणाम असमान (अनिवृत्ति वाले) ही हैं।

जैसे मान लो कि अनिवृत्तिकरण का अंतर्मुहूर्त पाँच समय का है। जितने भी मुनिराज अनिवृत्तिकरण के तीसरे समय में होंगे उन सभी के परिणाम दूसरे समय वाले मुनिराजों से अलग (विशेष) और अधिक विशुद्धि वाले ही होंगे लेकिन तीसरे समय वाले सभी मुनिराजों के परिणाम एक-जैसे ही होंगे।

प्रवेश : और दसवाँ गुणस्थान ?

समकित : **10.सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थानः** यहाँ तक आते-आते बढ़ती हुई आत्म-लीनता (करण परिणामों) के द्वारा मुनिराज को मात्र सूक्ष्म-लोभ (साम्पराय) का ही उदय बाकी[1] रहता है।

प्रवेश : इतनी ऊँची दशा[2] में जाकर मुनिराज को किस चीज का लोभ[3] रह जाता है ?

समकित : शुद्ध-उपयोग के समय जिन भी कषायों (राग) का उदय होता है वह सब अबुद्धिपूर्वक[4] ही होता है यानि वे कषायें जीव के ज्ञान (उपयोग) का विषय[5] नहीं बनती क्योंकि जीव के ज्ञान (उपयोग) का विषय उस समय शुद्धात्मा है। चाहे चौथे और पाँचवें गुणस्थान में होने वाला शुद्ध-उपयोग हो या सातवें, आठवें, नौवें व दसवें गुणस्थान में होने वाला शुद्ध-उपयोग।

1.remaining 2. state 3.greed 4. subconsciously 5.subject

यह बात और है कि चौथे और पाँचवें गुणस्थान में शुद्ध-उपयोग कभी-कभार[1] और कम तल्लीनता[2] वाला ही होता है और सातवें, आठवें, नौवें व दसवें आदि गुणस्थान तो शुद्ध-उपयोगमय ही हैं।

यहाँ दसवें गुणस्थान में लोभ कषाय अबुद्धिपूर्वक होने के साथ-साथ अत्यंत सूक्ष्म[3] भी है।

**11.उपशांत कषाय गुणस्थानः** जैसे मैले पानी में फिटकरी[4] डालने से उसका मैल[5] नीचे बैठ जाता है और पानी बिल्कुल साफ दिखने लगता है लेकिन जरा सी हल-चल[6] से वह मैल फिर से ऊपर आकर पानी को फिर से गंदा कर देता है। उसी प्रकार इस गुणस्थान में कषाय उपशमित[7] हो गयी है, लेकिन इस गुणस्थान का अंतर्मुहूर्त काल[8] पूरा होने पर वह फिर से उखड़ जाती है और जीव नियम-से[9] वापिस नीचे के गुणस्थानों में गिर जाता है।

यहाँ जीव की कषाय उपशमित (दबी-हुयी) है इसलिये इस गुणस्थान का नाम उपशांत-कषाय मुनि है।

**12. क्षीण-कषाय गुणस्थानः** मिथ्यात्व (दर्शन मोहनीय) का पूर्णरूप से नाश[10] तो क्षायिक सम्यकदर्शन होने पर ही हो जाता है और अब दसवें गुणस्थान के अंतिम[11] समय में मुनिराज कषाय (चारित्र-मोहनीय) को भी पूर्णरूप से, जड़ से नष्ट कर देते हैं और बारहवां गुणस्थान यानि क्षायिक चारित्र प्रगट करके हमेंशा के लिये पूर्ण वीतरागी हो जाते हैं। कषायों का क्षय (क्षीणता) हो जाने से इस गुणस्थान का नाम क्षीण-कषाय मुनि है।

मिथ्यात्व (दर्शन मोहनीय) और कषाय (चारित्र मोहनीय) यानि कि संपूर्ण मोहनीय कर्म से रहित क्षीण-कषाय मुनि हैं।

इसप्रकार पाँचवें गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक का कथन[12] चारित्र गुण की मुख्यता से है।

1.rarely 2.less-immersedness 3.minute 4.alum 5.dirt 6.disturbance 7.suppress 8. period 9. compulsorily 10.abolishment 11. last 12.narration

प्रवेश : इन औपशमिक और क्षायिक आदि भावों को विस्तार से समझाईये न?

समकित : अभी नहीं। अभी तो योग गुण की मुख्यता से जिन आखिरी दो गुणस्थानों का कथन होता है ऐसे तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान के बारे में हमको समझना है।

**13.सयोग-केवली गुणस्थानः** मिथ्यात्व (दर्शन मोहनीय) और कषाय (चारित्र मोहनीय) यानि कि सम्पूर्ण मोहनीय कर्म से रहित पूर्ण वीतरागी बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज, बारहवें गुणस्थान के अंतिम समय में अज्ञान (ज्ञानावरण कर्म), अदर्शन (दर्शनावरण कर्म) और असमर्थता (अंतराय कर्म) ऐसे तीनों घातिया कर्मों का नाश कर अनंत सुख, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन और अनंत वीर्य स्वरूप तेरहवाँ सयोग-केवली गुणस्थान यानि कि अरिहंत दशा प्रगट कर लेते हैं।

इस गुणस्थान में मोह (मिथ्यात्व और कषाय) का नाश होकर अनंत सुख, अज्ञान का नाश होकर अनंत ज्ञान (केवल ज्ञान), अदर्शन का नाश होकर अनंत दर्शन (केवल दर्शन) और असमर्थता का नाश होकर अनंत सामर्थ्य (अनंत वीर्य) तो प्रगट हो गये हैं, लेकिन योग गुण का अभी भी अशुद्ध परिणमन (पर्याय), यानि कि आत्मा के प्रदेशों में कंपन[1] चल रहा है। आत्मप्रदेश स्थिर[2] नहीं रह पा रहे हैं। यानि कि योग (कंपन) सहित है। साथ ही द्रव्यमन (पुद्गल की रचना), वचन और काय की चेष्टायें[3] स्वयं चल रही हैं। विहार, उपदेश आदि के काम भी भगवान के भावों (इच्छा) के बिना ही स्वयं[4] चल रहे हैं क्योंकि भगवान का भाव-मन (जीव के विकल्प) समाप्त हो चुका है। वे पूर्ण वीतरागी और सर्वज्ञ हो चुके हैं। यानि कि बिना उनकी इच्छा या कोशिश[5] के उनके ज्ञान का विषय तो तीनों लोक और तीनों काल के समस्त[6] द्रव्य-गुण-पर्याय बन रहे हैं, लेकिन मोह, राग-द्वेष का अभाव हो जाने के कारण वह प्रभावित[7] किसी से भी नहीं होते।

**14. अयोग-केवली गुणस्थानः** इस गुणस्थान में भगवान के आत्म-प्रदेशों का कंपन[8] सहज व स्वयं रुक जाता है यानि कि योग गुण का शुद्ध परिणमन (पर्याय) शुरु हो जाता है। साथ ही काय (शरीर) की

1.vibration 2. stable 3.activities 4.automatically 5.effort 6.entire 7.affected 8. vibration

सूक्ष्म चेष्टायें (योग) भी सहज व स्वयं रुक गयी हैं। भगवान के आत्म-प्रदेश और शरीर आदि स्वयं स्थिर हो गये हैं। इस गुणस्थान का समय अ इ उ ऋ ऌ इन पाँच ह्रस्व स्वरों[1] के उच्चारण[2] के समय के बराबर है।

इस गुणस्थान के अंत में भगवान आयु पूर्ण कर शरीर आदि से रहित[3] होकर यानि कि वेदनीय, आयु, नाम व गोत्र ऐसे चार अघाति कर्मों का अभाव कर अव्याबाधत्व, अवगाहनत्व, सूक्षमत्व और अगुरुलघुत्व गुण प्रगट करके गुणस्थानातीत सिद्ध दशा को प्राप्त[4] करते हैं और ऊर्ध्वगमन स्वभाव प्रगट होने से लोक के अग्र (सबसे ऊपरी) भाग[5] में जाकर अंतिम वातवलय (सिद्धालय) में विराजमान[6] हो जाते हैं और वहाँ अनंतकाल[7] तक अनंत अतींद्रिय[8] सुख का वेदन[9] करते रहते हैं।

**इस प्रकार यह चौदह गुणस्थान हमें बहिरात्मा से परमात्मा बनने का क्रम[10] बतालाते हैं।**

प्रवेश : परमात्मा तो ठीक, यह बहिरात्मा क्या होता है ?

समकित : यह मैं तुम्हें कल समझाऊँगा।

मुनि असंगरूपसे आत्माकी साधना करते हैं, स्वरूपगुप्त हो गये हैं। प्रचुर स्वसंवेदन ही मुनिका भावलिंग है।

प्रथम भूमिकामें शास्त्रश्रवण-पठन-मनन आदि सब होता है, परन्तु अंतर में उस शुभ भाव से संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिये। इस कार्य के साथ ही ऐसा खटका रहना चाहिये कि यह सब है किन्तु मार्ग तो कोई अलग ही है। शुभाशुभ भाव से रहित मार्ग भीतर है-ऐसा खटका तो साथ ही लगा रहना चाहिये।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1. vowels 2.pronounciation 3.devoid 4.achieve 5.part 6. seated 7. infinity 8. beyond-senses 9.experience 10. sequence

3

# बहिरात्मा-अंतरात्मा-परमात्मा

समकित : पिछले पाठ में हमने चौदह गुणस्थानों यानि कि जीव की संसार से लेकर मोक्ष तक की चौदह अवस्थाओं[1] की चर्चा की। इन चौदह अवस्थाओं को हम तीन समूहों[2] में बाँट सकते हैं:

1. बहिरात्मा 2. अंतरात्मा 3. परमात्मा

प्रवेश : कैसे ?

समकित : **बहिरात्मा** का मतलब है-मिथ्यादृष्टि जीव, जो कि संसार में भटक रहा है।

**अंतरात्मा** का मतलब है-सम्यकदृष्टि जीव, जो कि मोक्षमार्ग में लगा हुआ है।

**परमात्मा** का अर्थ है-मुक्त जीव यानि कि जिस जीव ने मोक्ष को पा लिया है।

प्रवेश : ओह ! यह तो बहुत आसान है।

समकित : हाँ, पहले गुणस्थान वाले जीव मिथ्यादृष्टि व संसार-मार्गी होने से बहिरात्मा हैं। चौथे से बारहवें गुणस्थान वाले जीव सम्यकदृष्टि और मोक्षमार्गी होने से अंतरात्मा हैं और तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान वाले अरिहंत भगवान और गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान, मुक्त जीव होने से परमात्मा हैं। **दूसरे व तीसरे गुणस्थान वाले जीवों की चर्चा कभी समय मिलने पर करेंगे।**

प्रवेश : सिद्ध भगवान तो मुक्त हैं यानि कि मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं लेकिन अरिहंत भगवान को मोक्ष कहाँ हुआ है ?

समकित : अरिहंत भगवान को भी भाव मोक्ष तो हो ही चुका है क्योंकि वे पूर्ण वीतराग और सर्वज्ञ हो चुके हैं। उनके आत्मा के स्वभाव (गुणों) का घात (नुकसान) करने वाले घातिया कर्मों का नाश हो चुका है, अनंत

1.states 2.groups

चतुष्टय प्रगट हो चुके हैं।

प्रवेश : लेकिन अरिहंत दशा में अघातिया कर्म तो बाकी रहते हैं ?

समकित : अघातिया कर्म कहाँ आत्मा के स्वभाव (अनुजीवी गुणों) का घात (नुकसाान) करते हैं ? उनके निमित्त से तो शरीर आदि मिलते हैं। लेकिन शरीर आदि के होते हुए भी अरिहंत भगवान तो पूर्णरूप-से[1] स्वयं में लीन हैं, वीतरागी हैं, शरीर आदि से उनको कुछ लेना-देना ही नहीं है। शरीर आदि के बीच में रहकर भी वे उनसे जुदा[2] हैं। शरीर आदि अपनी योग्यता[3] से अपना काम करते रहते हैं।

प्रवेश : शरीर तो पुद्‌गल है, वह स्वयं कैसे अपना काम करता है ?

समकित : क्यों, पुद्‌गल क्या द्रव्य नहीं है ? क्या उसमें वस्तुत्व नाम का गुण नहीं है कि वह अपना प्रयोजनभूत[4] कार्य स्वयं[5] कर सके ?

अरे ! भगवान का शरीर क्या, हमारा शरीर भी अपना काम स्वयं ही करता है। बस अंतर इतना है कि हम अपने मोह, राग-द्वेष के कारण यह मानते रहते हैं कि शरीर आदि मेरे हैं, उनकी क्रियाओं[6] का कर्ता[7] मैं हूँ या जैसा मैं चाहता हूँ वैसे ही शरीर आदि चलते हैं।

वहीं अरिहंत भगवान पूर्ण वीतरागी होने से ऐसा न मानते हैं और न ही ऐसा करने का सोचते हैं।

प्रवेश : हम हाथ हिलाने का सोचते हैं इसीलिये तो हाथ हिलता है न ?

समकित : यदि ऐसा है तो पैरेलिसिस (लकवा) के मरीज[8] का भी हाथ हिलना चाहिये। उसकी इच्छा तो हमसे भी ज्यादा तीव्र[9] होती है हाथ-पैर हिलाने की, चलने की, दौड़ने की।

प्रवेश : भाईश्री ! इसका मतलब यह हुआ कि शरीर आदि की योग्यता जब चलने की होती है तब वह स्वयं चलते हैं और नहीं चलने की होती तब वह स्वयं नहीं चलते हैं। हम बेकार में ही विकल्प कर-कर के अपने भ्रम को पुष्ट[10] करते रहते हैं।

1. completely 2. seperate 3. ability 4.intended 5.self
6.activities 7.doer 8.patient 9.intense 10.strong

समकित : हाँ, इसी भ्रम (मोह) का नाम तो संसार है, यही तो दुःख का मूल कारण है।

प्रवेश : भाईश्री ! बहिरात्मा, अंतरात्मा व परमात्मा के बारे में और विस्तार[1] से समझाईये न।

गुरु : इसको हम निम्न चार्ट की मदद[2] से समझ सकते हैं:

| गुण | पर्याय | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | अशुद्ध पर्याय | शुद्ध पर्याय | | | | | | |
| | बहिरात्मा | अंतरात्मा | | | | परमात्मा | | |
| | (1) | | (4) | (5–11) | (12) | | (13,14) | (गुणस्थानातीत) |
| ज्ञान | मि. ज्ञान | स. ज्ञान | | | | अनंत ज्ञान<br>अनंत दर्शन | | |
| श्रद्धा | मि. श्रद्धा | स. श्रद्धा | → जघन्य अंतरात्मा | → मध्यम अंतरात्मा | → उत्कृष्ट अंतरात्मा | → अनंत सुख | → सकल परमात्मा | → निकल परमात्मा |
| चारित्र | मि. चारित्र | स. चारित्र<br>सम्यक्त्वाचरण<br>देश<br>सकल<br>यथाख्यात | (अविरत सम्यक दृष्टि) | (श्रावक, मुनि) | (क्षीण कषाय मुनि) | अनंत वीर्य | (अरिहंत) | (सिद्ध) |
| | | | | | | अव्याबाधत्व<br>अवगाहनत्व<br>सूक्ष्मत्व<br>अगुरुलघुत्व | | |

चार्ट में हमने देखा कि पहले गुणस्थान वाले जीव मिथ्यादृष्टि होने से बहिरात्मा हैं।

इसी प्रकार चौथे से बारहवें गुणस्थान तक के जीव अंतरात्मा है। अंतरात्मा को तीन भेदों में बाँटा गया है:

1. **जघन्य अंतरात्माः** स्वयं को जानकर, मानकर व स्वयं में पहले स्तर की लीनता करने वाले चौथे गुणस्थान वाले अविरत् सम्यकदृष्टि जीव जघन्य अंतरात्मा है। इस दशा[3] से मोक्षमार्ग शुरु हो जाता है।

1.detail 2. help 3.stage

**2. मध्यम अंतरात्मा:** स्वयं को जानकर, मानकर, स्वयं में दूसरे स्तर की लीनता करने वाले पाँचवें गुणस्थान वाले व्रती श्रावक और तीसरे स्तर की लीनता करने वाले छठवें गुणस्थान से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान वाले मुनिराज मध्यम अंतरात्मा हैं।

**3. उत्तम अंतरात्मा:** स्वयं को जानकर, मानकर, स्वयं में चौथे स्तर की (पूर्ण) लीनता करने वाले पूर्ण वीतरागी क्षीण कषाय मुनि उत्तम अंतरात्मा हैं।

प्रवेश : ग्यारहवें गुणस्थान वाले उपशांत कषाय मुनि भी तो बारहवें गुणस्थान वाले क्षीण कषाय मुनि की तरह स्वयं में पूर्णरूप से लीन हैं फिर उनको मध्यम अंतरात्मा में क्यों रखा, जबकि बारहवें गुणस्थान वाले क्षीण कषाय मुनि को उत्तम अंतरात्मा में रखा है ?

समकित : ग्यारहवें गुणस्थान वाले उपशांत कषाय मुनि भले ही स्वयं में पूर्णरूप से लीन हैं, पूर्ण वीतरागी हैं लेकिन उनकी यह लीनता/वीतरागता अस्थाई[1] है। जबकि बारहवें गुणस्थान वाले क्षीण कषाय मुनि की पूर्ण लीनता/वीतरागता स्थाई[2] है।

यह तीनों ही प्रकार के अंतरात्मा मोक्षमार्ग में चलने वाले हैं। शीघ्र ही अंतरात्मा से परमात्मा बन जायेंगे यानि कि मोक्ष को पा लेंगे।

प्रवेश : और परमात्मा ?

समकित : अरिहंत भगवान यानि कि तेरहवें गुणस्थान वाले सयोग-केवली जिन व चौदहवें गुणस्थान वाले अयोग-केवली जिन और गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान परमात्मा हैं। इसप्रकार परमात्मा के दो भेद हो जाते हैं:

1. सकल परमात्मा 2. निकल परमात्मा

**1. सकल परमात्मा:** कल का मतलब होता है-शरीर। इसप्रकार सकल मतलब हुआ-शरीर सहित। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान वाले सयोग और अयोग केवली जिन यानि कि अरिहंत भगवान शरीर सहित होने से सकल परमात्मा हैं।

1.temporary 2. permanent

**2. निकल परमात्माः** निकल का मतलब होता है-शरीर रहित। गुणस्था-नातीत सिद्ध भगवान शरीर रहित होने से निकल परमात्मा हैं।

अरे वाह ! इनका स्वरूप समझकर तो बहुत आनंद आया।

समकित : यदि ऐसा है तो बताओ कि इस पाठ से क्या सीख मिली ?

प्रवेश : यही कि बहिरात्मपना हेय (छोड़ने लायक) है, अंतरात्मपना प्रगट करने के लिये एकदेश (आंशिक[1]) उपादेय (ग्रहण करने लायक) है और परमात्मपना प्रगट करने के लिये सर्वथा (पूर्णरूप-से[2]) उपादेय (ग्रहण करने लायक) है।

समकित : और..?

प्रवेश : और क्या भाईश्री ?

समकित : यह कि, जिसके आश्रय (ज्ञान-श्रद्धान-लीनता) से अंतरात्मपना और परमात्मपना प्रगट होता है, वह **शुद्धात्मा** आश्रय करने के लिये परम्[3] उपादेय है।

प्रवेश : अरे हाँ ! यह तो ज्ञेय, हेय व उपादेय के पाठ में भी पढ़ा था।

क्या इसको ऐसा भी कह सकते हो कि पहले से तीसरे गुणस्थान हेय हैं, चौथे से बारहवें गुणस्थान प्रगट करने के लिये एकदेश उपादेय हैं, तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान व सिद्ध दशा प्रगट करने के लिये सर्वथा उपादेय है और शुद्धात्मा आश्रय (ज्ञान-श्रद्धान-लीनता) करने के लिये परम् उपादेय है ?

समकित : हाँ बिल्कुल सही।

प्रवेश : आपने कल कहा था कि औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक आदि भावों के बारे में बाद में समझायेंगे ?

समकित : आज नहीं कल।

1. partial 2.completely 3.supremely

# 4

# पाँच-भाव

समकित : भाव शब्द का अर्थ द्रव्य, गुण (स्वभाव) व पर्याय तीनों होता है। यहाँ पाँच भावों में चार भाव पर्याय रूप हैं और पाँचवा भाव गुण (स्वभाव) रूप है।

प्रवेश : ये पाँच भाव कौन से द्रव्य के गुण (स्वभाव) और पर्यायों से संबंधित[1] हैं ?

समकित : ये पाँच भाव जीव द्रव्य के गुण (स्वभाव) और पर्यायों से संबंधित हैं यानि कि यह हमारे ही असाधारण[2] भाव हैं।

प्रवेश : असाधारण भाव मतलब ?

समकित : मतलब यह पाँच-भाव जीव के अलावा किसी दूसरे द्रव्य में नहीं पाये जाते हैं।

प्रवेश : वे पाँच भाव कौन-कौन से हैं, कृपया करके समझाईये।

समकित : वे पाँच भाव हैं:

1. औदयिक भाव
2. औपशमिक भाव
3. क्षायोपशमिक भाव
4. क्षायिक भाव
5. पारिणामिक भाव

इन पाँच भावों को हम निम्न चार्ट की मदद से समझेंगे:

---

1.related 2.uncommon

| भाव | निमित्त | नाम | भेद |
|---|---|---|---|
| अशुद्ध | कर्म का उदय | औदयिक | 4 गति, 4 कषाय, 3 वेद, 6 लेश्या मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व (21) |
| अस्थायी शुद्ध | कर्म का उपशम | औपशमिक | औपशमिक सम्यक्त्व औपशमिक चारित्र (02) |
| एकदेश शुद्ध | कर्म का क्षयोपशम | क्षायोपशमिक | 4 ज्ञान, 3 मिथ्याज्ञान, 3 दर्शन 5 क्षायोपशमिक लब्धियाँ, क्षायो. सम्यक्त्व, क्षायो. चारित्र, संयमासंयम (18) |
| स्थायी शुद्ध | कर्म का क्षय | क्षायिक | 9 क्षायिक लब्धियाँ (09) |
| पारिणमिक | निरपेक्ष | पारिणामिक | जीवत्व, भव्यत्व, अभव्यत्व (03) |

जैसे कि चार्ट में अत्यंत स्पष्ट है किः

**1. औदयिक भावः** जीव की अशुद्ध-पर्याय[1] को औदयिक भाव कहते हैं। जीव की अशुद्ध पर्याय का माप[2] और कथन[3] द्रव्य (पुद्गल) कर्म के उदय के माध्यम-से[4] किया जाता है, इसलिये जीव की अशुद्ध पर्यायों को (निमित्त अपेक्षा) औदयिक भाव कहते हैं।

मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम, असिद्धत्व, 4 कषाय, 4 गति, 3 वेद, 6 लेश्या यह सब जीव की अशुद्ध पर्यायें होने से औदयिक भाव कहलाते हैं।

प्रवेश : जीव की अशुद्ध पर्यायों (भावों) का माप और कथन पुद्गल कर्म के उदय के माध्यम से क्यों किया जाता है ?

समकित : क्योंकि जीव की पर्याय (भाव) अनुभव-गोचर[5] तो हैं लेकिन वचन-गोचर[6] नहीं हैं। यानि कि उनको अनुभव[7] तो किया जा सकता है लेकिन शब्दों से नहीं कहा जा सकता। इसलिये जिन्हें शब्दों से कहा जा सकता है ऐसे पुद्गल कर्मों पुद्गल के गणित[8] के माध्यम से जीव के परिणामों का माप व कथन होता है।

1. impure-states 2. scale 3.narration 4.through 5.experienceable
6. narratable 7. experience 8.calculation

जैसे बुखार[1] का अनुभव तो किया जा सकता है लेकिन शब्दों से उसका बयान[2] नहीं किया जा सकता। इसलिये उसका माप और कथन करने के लिये थर्मोमीटर के पारे-के-गणित[3] का सहारा लिया जाता है।

प्रवेश : क्या ठीक वैसे ही जैसे आँख की कमजोरी[4] अनुभव तो की जा सकती है, लेकिन शब्दों से नहीं कही जा सकती। इसलिये उसका माप और कथन करने के लिये चश्मे के नंबर का सहारा लेते हैं ?

समकित : हाँ बिलकुल।

**2. औपशमिक भावः** जीव की अस्थाई[5] शुद्ध-पर्यायों को औपशमिक भाव कहते हैं। जीव की इन अस्थाई शुद्ध पर्यायों का माप और कथन द्रव्य-कर्म के उपशम[6] के माध्यम से किया जाता है। इसलिये जीव की अस्थाई शुद्ध पर्यायों को (निमित्त अपेक्षा) औपशमिक भाव कहते हैं।

औपशमिक सम्यकदर्शन व औपशमिक चारित्र जीव की अस्थाई शुद्ध पर्याय होने से औपशमिक भाव कहलाते हैं।

प्रवेश : अच्छा अब समझ में आया। तभी चौथे गुणस्थान में प्रगट होने वाला प्रथम-उपशम सम्यकत्व पूर्ण निर्दोष[7] होने पर भी अंतर्मुहूर्त में छूट जाता है और क्षायोपशमिक (आंशिक शुद्ध) में बदल जाता है या फिर जीव नीचे के गुणस्थानों में गिर जाता है एवं ग्यारहवें गुणस्थान में औप- शमिक चारित्र पूर्ण निर्मल (शुद्ध) होने पर भी अंतर्मुहूर्त में छूट जाता है और जीव ग्यारहवें गुणस्थान से नीचे गिर जाता है क्योंकि क्षायो- पशमिक भाव पूर्ण शुद्ध तो है लेकिन अस्थाई[8] भी है।

समकित : हाँ बिल्कुल सही समझे।

**3. क्षायोपशमिक भावः** जीव की आंशिक[9] शुद्ध पर्यायों को क्षायो-पशमिक भाव कहते हैं। जीव की आंशिक (एकदेश) शुद्ध पर्यायों का माप और कथन द्रव्य-कर्म के क्षयोपशम के माध्यम से किया जाता है इसलिये जीव की आंशिक शुद्ध पर्यायों को (निमित्त अपेक्षा) क्षायो-पशमिक भाव कहते हैं।

1.fever 2. express 3.mercury-level 4. weakness 5.unstable
6.suppression 7. completely-flawless 8.unstable 9. partial

चार प्रकार के सम्यकज्ञान, तीन प्रकार के मिथ्याज्ञान, तीन प्रकार के दर्शन, पाँच क्षायोपशमिक लब्धियाँ, क्षायोपशमिक सम्यकत्व, क्षायोपशमिक चारित्र, संयमासंयम (देश चारित्र) यह सब जीव की आंशिक शुद्ध पर्याय यानि कि क्षायोपशमिक भाव हैं।

प्रवेश : अरे वाह ! यह तो बहुत सरल है।

समकित : हाँ, ध्यान से सुनने पर सब सरल हो जाता है। दुनिया में जिस काम में हमें अपना फायदा[1] दिखता हो तो फिर वह कितना भी कठिन[2] क्यों न हो हम उसे सीख ही लेते हैं। तो यह तत्वज्ञान तो हमें सबसे ज्यादा फायदा पहुँचाने वाला है। इसे तो कैसे भी करके सीख ही लेना चाहिये।

**4. क्षायिक भावः** जीव की स्थाई[3] पूर्ण शुद्ध पर्यायों को क्षायिक भाव कहते हैं। जीव की इन स्थाई व पूर्ण शुद्ध पर्यायों का माप और कथन द्रव्य-कर्मों के क्षय[4] के माध्यम से किया जाता है। इसलिये जीव की स्थाई पूर्ण शुद्ध पर्यायों को (निमित्त अपेक्षा) क्षायिक भाव कहते हैं।

क्षायिक (अनंत) ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक सुख, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक अपभोग और क्षायिक वीर्य यह नौ क्षायिक लब्धियाँ जीव की स्थाई पूर्ण शुद्ध पर्याय यानि कि क्षायिक भाव हैं।

प्रवेश : पारिणामिक भाव जीव की कौनसी पर्याय हैं ?

समकित : अरे! पहले बताया था न कि शुरु के चार भाव पर्याय रूप हैं और आखिरी पाँचवां भाव गुण (स्वभाव) रूप है।

प्रवेश : अरे हाँ !

समकित : **5. पारिणामिक भावः** पारिणामिक भाव जीव के स्वभाव को कहते हैं। जीव का स्वभाव होने से वह हमेशा (त्रिकाल) शुद्ध, शाश्वत (ध्रुव), एक-रूप रहने वाला है।

---

1. benefit 2.tough 3. stable 4. abolishment

प्रवेश : पारिणामिक भाव का माप और कथन द्रव्य-कर्म के उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षय में से किससे होता है ?

समकित : इनमें से किसी से नहीं क्योंकि पारिणामिक भाव जीव का मूल-स्वभाव[1] होने से निरपेक्ष[2] है, यानि कि उस पर कोई अपेक्षा लागू नहीं पड़ती।

प्रवेश : क्या परिणामिक भाव भी कई प्रकार के हैं ?

समकित : पारिणामिक भाव के तीन भेद हैं :

1. जीवत्व 2. भव्यत्व 3. अभव्यत्व

इस प्रकार जीव के असाधारण पाँच भावों के कुल मिलाकर 53 (21 + 2 + 18 + 9 + 3) भेद हो जाते हैं।

प्रवेश : क्या ये पाँचों भाव सभी जीवों में हमेंशा पाये जाते हैं ?

समकित : नहीं, एक **पारिणामिक** भाव ही है जो सभी जीवों (संसारी और सिद्ध) में हमेंशा पाया जाता है क्योंकि यह तो जीव का गुण (स्वभाव) है और स्वभाव के बिना कोई द्रव्य नहीं होता और स्वभाव कहते ही उसे हैं जो शाश्वत[3] और शुद्ध[4] हो।

**औदयिक** भाव सभी संसारी जीवों के पाये जाता है लेकिन सिद्धों के नहीं।

**क्षायोपशमिक** भाव भी न तो सिद्धों के होता है और न ही संसार जीवों में तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान वाले अरिहंत भगवान के।

**क्षायिक भाव** सभी सिद्धों के तो होता है लेकिन सभी संसारी जीवों के नहीं। क्योंकि मिथ्यादृष्टि संसारी जीवों के तो क्षायिक भाव होता ही नहीं बाकी सम्यकदृष्टि और सम्यक चारित्रवान संसारी जीवों में भी सिर्फ क्षायिक सम्यकदृष्टि व क्षायिक चारित्रवान (बारहवें गुणस्थान वाले क्षीण कषाय मुनि) एवं अरिहंत भगवान के ही पाया जाता है।

1.actual-nature 2.absolute/irrespective 3.eternal 4.pure

**औपशमिक भाव** सिद्धों के तो होता ही नहीं, संसारी जीवों में भी सिर्फ औपशमिक सम्यकदृष्टि व चारित्रवान जीवों के ही पाया जाता है।

प्रवेश : अरिहंत भगवान को संसारी जीवों में क्यों गिना ? आपने तो कहा था कि उनका भाव मोक्ष हो चुका है ?

समकित : हाँ, ठीक ही तो कहा है । उनका भावों की अपेक्षा तो मोक्ष हो चुका है लेकिन द्रव्य (शरीर आदि) की अपेक्षा अभी भी वह मध्यलोक (मनुष्य लोक) में हैं, सिद्ध लोक (सिद्धालय) में नहीं। संसारियों के बीच में मौजूद[1] रहने की अपेक्षा यानि कि अघातिया कर्मों का संबंध बाकी[2] रहने की अपेक्षा से उनको संसारी कहा है। वहाँ अपेक्षा अलग थी, यहाँ अलग है। जैनी को तो अनेकांत और स्याद्वाद की ही शरण है।

प्रवेश : कौन से भाव हेय हैं और कौन से भाव उपादेय हैं ?

समकित : जीव की अशुद्ध पर्याय होने से औदयिक भाव हेय (छोड़ने लायक) हैं। जीव की आंशिक शुद्ध पर्याय होने से क्षायोपशमिक भाव प्रगट[3] करने के लिये आंशिक उपादेय (ग्रहण करने लायक) हैं।

जीव की शुद्ध पर्याय होने से औपशमिक और क्षायिक भाव प्रगट[4] करने के लिये सर्वथा उपादेय हैं।

जीव का मूल-स्वभाव[5] होने से पारिणामिक भाव आश्रय (ज्ञान, श्रद्धान व लीनता) करने के लिये परम् उपादेय हैं। **पारिणामिक भाव (निज स्वभाव) का आश्रय करने से ही क्षायोपशमिक, औपशमिक और क्षायिक भाव प्रगट होते हैं।**

पूर्ण गुणोंसे अभेद ऐसे पूर्ण आत्मद्रव्य पर दृष्टि करनेसे ,उसीके आलम्बन से, पूर्णता प्रगट होती है। इस अखण्ड द्रव्यका आलम्बन वही अखण्ड एक परमपारिणामिक भाव का आलम्बन है। ज्ञानी को उस आलंबन से प्रगट होने वाली औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिकभावरूप पर्यायों का, व्यक्त होने वाली विभूतियों का वेदन होता है परन्तु उनका आलम्बन नहीं होता-उन पर जोर नहीं होता। जोर तो सदा अखण्ड शुद्ध द्रव्य पर ही होता है। क्षायिकभावका भी आश्रय या आलम्बन नहीं लिया जाता क्योंकि वह तो पर्याय है, विशेष भाव है, ध्रुवके आलम्बनसे ही निर्मल उत्पाद होता है। इसलिये सब छोड़कर, एक शुद्धात्मद्रव्य के प्रति-अखण्ड परमपारिणामिक भाव के प्रति-दृष्टि कर, उसी के ऊपर निरन्तर जोर रख , उसी की ओर उपयोग ढले ऐसा कर।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1.present 2.remaining 3.achieve 4.achieve 5.actual-nature

# 5

# अनेकांत और स्याद्वाद

समकित : कल आपने अनेकांत और स्याद्वाद के बारे में पूछा था। आज हम अनेकांत और स्याद्वाद के स्वरूप की चर्चा करेंगे।

अनेकांत शब्द दो शब्दों से मिलकर बना हुआ हैः 1. अनेक 2. अंत

अनेक का अर्थ होता है-एक से अधिक यानि कि दो से लेकर अनंत[1] तक की संख्या[2] को अनेक कहते हैं।

अंत का अर्थ होता है-गुण या धर्म।

जब हम अनेक का अर्थ दो करते हैं तब अंत का अर्थ किया जाता है-धर्म। इस प्रकार अनेकांत का अर्थ हो जाता है-दो धर्म। जब हम अनेक का अर्थ अनंत करते हैं तब अंत का अर्थ किया जाता है-गुण। इसप्रकार अनेकांत का अर्थ हो जाता है-अनंत गुण।

प्रवेश : भाईश्री ! यह अनेकांत शब्द किसके दो धर्मों या अनंत गुणों को बताता है ?

समकित : प्रत्येक वस्तु[3] के। प्रत्येक वस्तु अनेकांतात्मक है यानि कि प्रत्येक वस्तु में दो विरोधी[4] से लगने वाले धर्मों[5] के अनंत जोड़े[6] व अनंत गुण पाये जाते हैं।

प्रवेश : जैसे ?

समकित : जैसे जीव को ही लें । जीव में ज्ञान, श्रृद्धा, चारित्र व सुख आदि अनंत गुण पाये जाते हैं या कहो कि इन अनंत गुणों का समूह[7] ही जीव है।

प्रवेश : और धर्म ?

समकित : जीव में विरोधी से लगने वाले **नित्य-अनित्य** आदि धर्मों के अनंत जोड़े पाये जाते हैं।

---

1.infinite 2.quantity 3. object 4. opposite 5. attributes 6.pair 7.collection

प्रवेश : यह धर्म तो आपस में विरोधी ही हैं, फिर विरोधी न कहकर विरोधी से लगने वाले क्यों कहा ?

समकित : क्योंकि जीव के शाश्वत[1] ध्रुव-स्वभाव की अपेक्षा[2] से वस्तु **नित्य[3] धर्म** वाली है और क्षणिक[4] पर्याय-स्वभाव की अपेक्षा से **अनित्य[5] धर्म** वाली है।

नित्य का अर्थ होता है स्थाई और अनित्य का अर्थ है अस्थाई।

प्रवेश : तो ?

समकित : तो यह कि शाश्वत ध्रुव-स्वभाव की अपेक्षा[6] से ही जीव नित्य और उसी अपेक्षा से अनित्य होता तो जीव के यह दोनों धर्म (नित्य-अनित्य) विरोधी[7] कहलाते। लेकिन जीव नित्य अलग अपेक्षा से है और अनित्य अलग अपेक्षा से।

प्रवेश : जैसे ?

समकित : जैसे राजा श्रेणिक, पहले नरक का नारकी व भविष्य[8] के पहले तीर्थंकर यह एक ही जीव की तीन पर्याय[9] हैं। राजा श्रेणिक की पर्याय नष्ट[10] होकर नारकी की पर्याय हुई और नारकी की पर्याय नष्ट होकर तीर्थंकर की पर्याय प्रगट[11] होगी। लेकिन तीनों पर्यायों में जीव तो वही का वही रहा।

या जैसे बचपन, जवानी व बुढ़ापा एक ही व्यक्ति[12] की तीन पर्यायें हैं। बचपन की पर्याय नष्ट होकर जवानी की पर्याय प्रगट होती है और जवानी की पर्याय नष्ट होकर बुढ़ापे की पर्याय प्रगट होती है। लेकिन तीनों पर्यायों[13] में व्यक्ति तो वही का वही रहा।

अतः जीव ध्रुव स्वभाव की अपेक्षा नित्य[14] है व पर्याय स्वभाव की अपेक्षा अनित्य[15] है।

प्रवेश : तो वस्तु में यह गुण-धर्मों की अनेकता[16] ही वस्तु का अनेकांत है ?

1.eternal 2.perception 3.stable 4.momentary 5.unstable 6.perception 7.opposite 8. future 9.states 10.destroy 11.occur 12.individual 13.states 14.eternal 15.momentray 16.diversity

समकित : हाँ, यह वस्तु का अनेकांत है। यह गुण-धर्म वस्तु के अंत[1] (अंश) हैं। इन अंशों से मिलकर ही वस्तु बनी हुई है।

प्रवेश : तो क्या वस्तु के अनेकांत के अलावा भी अनेकांत होता है ?

समकित : हाँ, वस्तु को जानने वाले ज्ञान का अनेकांत।

जैसे वस्तु में गुण-धर्म नाम के अनेक अंश हैं वैसे ही वस्तु को जानने वाले ज्ञान में भी नय नाम के अनेक अंश हैं। जिस प्रकार वस्तु की अंश (गुण-धर्म) रूप अनेकता वस्तु का अनेकांत है, वैसे ही वस्तु को जानने वाले ज्ञान की अंश (नय) रूप अनेकता ज्ञान का अनेकांत है। ज्ञान, अनेक गुण-धर्म रूप वस्तु को सम्पूर्णरूप-से[2] जानता है। इसी **सम्यकज्ञान** को **प्रमाण** भी कहते हैं।

प्रवेश : सम्यकज्ञान (प्रमाण) तो वस्तु को सम्पूर्णरूप से जानता है, नय किसको जानते हैं ?

समकित : सम्यकज्ञान (प्रमाण) वस्तु को सम्पूर्णरूप-से जानता है और नय (ज्ञान का एक अंश) वस्तु के एक अंश (धर्म) को जानता है।

प्रवेश : मतलब, ज्ञान के एक-एक नय से वस्तु के एक-एक धर्म जाने जाते हैं?

समकित : हाँ, सम्यकज्ञान के एक नय से वस्तु का एक धर्म जाना जाता है, **यानि कि** पूरी वस्तु को उसी धर्म रूप जाना जाता है।

प्रवेश : जैसे ?

समकित : जैसे सीता में पुत्री, पत्नी व माँ ये तीनों धर्म हैं। जनक की अपेक्षा से सीता पुत्री, राम की अपेक्षा से पत्नी और लव-कुश भी अपेक्षा से माँ है। यह तो हुआ सीता (वस्तु) का अनेकांत।

अब सीता को सम्पूर्ण रूप से जानने वाले सम्यकज्ञान (प्रमाण) के अंश नय हैं, जो सीता के एक-एक धर्म को जानेंगे यानि कि पूरी सीता को उस एक-एक धर्म रूप ही जानेंगे।

1.fractions 2.fractions 3.completely

जैसे पुत्री नय पूरी सीता को पुत्री धर्म रूप यानि कि पुत्री ही जानेगा, पत्नी नय पूरी सीता को पत्नी ही जानेगा और माँ नय पूरी सीता को माँ ही जानेगा। इस प्रकार नयों का समूह ही ज्ञान (प्रमाण) है। **नय सम्यक-एकांत हैं और नयों का समूह सम्यक्ज्ञान (प्रमाण) सम्यक-अनेकांत है।**

| **कुछ पर्यायवाचीः** | | | |
|---|---|---|---|
| प्रमाण | : | सम्यक्ज्ञान, | सम्यक-अनेकांत |
| दुष्प्रमाण | : | मिथ्याज्ञान, | मिथ्या-अनेकांत |
| नय | : | सुनय, | सम्यक-एकांत |
| दुर्नय | : | कुनय, | मिथ्या-एकांत |

प्रवेश : एकांत भी सम्यक होता है ?

समकित : हाँ बिल्कुल। नय पूरी वस्तु को एक धर्म रूप ही जानता है। इसलिये एकांत है। लेकिन दूसरे धर्मों का अभाव नहीं करता बस प्रयोजनवश[1] उनको गौण[2] कर देता है। इसलिये सम्यक-एकांत है।

**इस प्रकार सम्यक-एकांत (नयों) का समूह[3], सम्यक-अनेकांत (प्रमाण) कहलाता है।**

प्रवेश : तो फिर तो मिथ्या-एकांत और मिथ्या-अनेकांत भी होते होंगे ?

समकित : हाँ क्यों नहीं। जो एकांत वस्तु के दूसरे धर्मों को गौण नहीं बल्कि उनका अभाव[4] ही कर देता है, उस एकांत को मिथ्या-एकांत कहते हैं।

**और मिथ्या-एकांत (दुर्नय) का समूह ही मिथ्या-अनेकांत (दुष्प्रमाण) है**

प्रवेश : भाईश्री ! इन सभी को उदाहरण से समझाईये न।

समकित : जनक की अपेक्षा सीता पुत्री ही है, राम की अपेक्षा सीता पत्नी ही है, लवकुश की अपेक्षा सीता माता ही है। **यह सम्यक-एकांत यानि कि नय (सुनय) है।**

1.purposefully 2.subside 3.collection 4.abolishment

और सीता किसी अपेक्षा पुत्री है, किसी अपेक्षा पत्नी है, किसी अपेक्षा माँ है। इसप्रकार सीता को समग्र (संपूर्ण) रूप से जानने वाला **सम्यक-अनेकांत यानि कि प्रमाण (सम्यकज्ञान) है।**

व इससे विपरीत[1] सीता सर्वथा[2] पुत्री ही है या फिर सर्वथा पत्नी ही है या फिर सर्वथा माँ ही है **यह मिथ्या एकांत यानि कि दुर्नय (कुनय) है।**

और सीता सर्वथा पुत्री भी है, सर्वथा पत्नी भी है व सर्वथा माँ भी है इसप्रकार सीता के समग्र[3] स्वरूप को अनिर्णय-पूर्वक[4] जानने वाला **मिथ्या-अनेकांत यानि कि दुष्प्रमाण (मिथ्याज्ञान) है।**

प्रवेश : ज्ञान का ज्ञेय, श्रद्धा का श्रद्धेय और ध्यान का ध्येय, प्रमाण का विषय-**संपूर्ण** आत्मा न होकर परम शुद्ध निश्चय नय (शुद्धनय) का विषय[5] शुद्धात्मा क्यों है ?

समकित : अरे भाई ! परमशुद्ध निश्चय नय, संपूर्ण (परिपूर्ण) आत्मा को ही नित्य आदि धर्म (ध्रुव-स्वभाव) रूप जानता है। लेकिन आत्मा के अनित्य आदि धर्मों (पर्याय-स्वभाव) का अभाव नहीं करता बस उनको प्रयोजनवश गौण कर देता है। इसलिये सम्यक-एकांत है।

प्रवेश : क्यों ?

समकित : क्योंकि संपूर्ण आत्मा को, अनित्य आदि धर्म (पर्याय-स्वभाव) रूप ज्ञान का ज्ञेय, श्रद्धा का श्रद्धेय और ध्यान का ध्येय बनाने से विकल्प (आकुलता) नहीं मिटता। निर्विकल्पता (निराकुलता) नहीं आती।

जबकि संपूर्ण (परिपूर्ण) आत्मा को, नित्यादि धर्म (ध्रुव-स्वभाव) रूप ज्ञान का ज्ञेय, श्रद्धा का श्रद्धेय और ध्यान का ध्येय बानाने से विकल्प (आकुलता) मिट जाता है और निर्वकल्पता (निराकुलता) प्रगट हो जाती है। आकुलता यानि कि दुःख और निराकुलता यानि कि सच्चा सुख और दुःख मिटा के सच्चा सुख पाना ही तो हमारा मुख्य-प्रयोजन[6] है।

प्रवेश : अरे वाह और स्याद्वाद ?

समकित : अनेकांत का कथन[7] करने वाली शैली[8] का नाम ही **स्याद्वाद** है।

1.opposite 2.only 3.entire 4.undeterminingly 5.subject 6.main-purpose 7.narration 8.genre

स्यात् यानि कथंचित (किसी अपेक्षा से) और वाद् यानि कथन करना। यानि कि कथंचित (किसी अपेक्षा से) शब्द लगाकर वस्तु का कथन करना ही स्याद्वाद है।

प्रवेश : जैसे ?

समकित : जैसे जनक की **अपेक्षा-से** सीता पुत्री है, राम की **अपेक्षा-से** पत्नी है और लवकुश की **अपेक्षा-से** माँ है।

प्रवेश : अरे वाह ! इसप्रकार से कथन करने से तो वस्तु का संपूर्ण स्वरूप हर कोण[1] से समझ में आ जायेगा और सारे झगड़े ही समाप्त[2] हो जायेंगे।

समकित : इसीलिये तो कहा था कि जैनी को तो अनेकांत और स्याद्वाद की ही शरण है। इसीलिये जैन शास्त्रों का हर वचन[3] स्यात् पद से मुद्रित[4] होता है। यानि कि किसी अपेक्षा से ही होता है।

प्रवेश : कैसे ?

समकित : जैसे हम अपने दुःखों के लिये हमेशा दूसरों को ही दोष[5] देते रहते हैं तब शास्त्र कहते हैं कि इसमें दूसरों का कोई दोष नहीं है, हमारे कर्मों का ही दोष है।

तो फिर हम कर्मों को दोष देने लगते हैं तब शास्त्र कहते हैं कि द्रव्य-कर्म तो जड़ (पुद्गल) हैं, कुछ जानते नहीं, वह हमारे दुःखों का कारण[6] कैसे हो सकते हैं ? हम स्वयं (द्रव्य) ही अपने दुःखों (पर्याय) के कारण हैं यानि द्रव्य स्वयं ही अपनी पर्याय का कर्ता[7] है, पुद्गल कर्म आदि अन्य द्रव्य नहीं।

तो हम त्रिकाली ध्रुव अंश को ही अशुद्ध और अपराधी[8] मानने लगते हैं तब शास्त्र कहते हैं कि त्रिकाली ध्रुव अंश तो शुद्ध और शाश्वत है, निरपराध[9] है। पर्याय ही पर्याय की कर्ता है।

प्रवेश : अरे यह तो पहली बार सुना है ! विस्तार से समझाईये ?

समकित : आज नहीं कल। कल हमारा विषय षट्कारक ही है।

1.angle 2.solve 3.narration 4.stamped 5.blame 6.cause 7.doer 8.faulty 9.faultless

# 6

# षट्कारक

समकित : आज हमारी चर्चा का विषय षट्कारक है। जो किसी न किसी रूप में क्रिया[1] का जनक[2] होता है उसे **कारक**[3] कहते हैं।

कारक छह होते हैं:

1. कर्ता 2. कर्म 3. करण 4. सम्प्रदान 5. अपादान 6. अधिकरण

प्रवेश : यह कर्ता आदि क्या हैं ?

समकित : जो स्वाधीनता[4] से अपने कार्य को करता है उसे **कर्ता** कहते हैं।

कर्ता जिस कार्य को प्राप्त[5] करता है उसे **कर्म**[6] कहते हैं।

कार्य के उत्कृष्ट-साधन[7] को **करण** कहते हैं।

कार्य जिसके लिये किया जाता है उसे **सम्प्रदान** कहते हैं।

कार्य जिस ध्रुव (स्थिर)[8] वस्तु में से किया जाता है वह **अपादान** है।

कार्य जिसके आधार[9] से किया जाता है उसे **अधिकरण** कहते हैं।

प्रवेश : यह तो बहुत कठिन है।

| कारक | प्रयोग | व्यवहार | निश्चय | |
|---|---|---|---|---|
| | | | द्रव्य | पर्याय |
| कर्ता | ने | कुम्हार | मिट्टी | घड़ा |
| कर्म | को | घड़ा | मिट्टी | घड़ा |
| करण | से | चक्र | मिट्टी | घड़ा |
| सम्प्रदान | के लिए | पनिहारिन | मिट्टी | घड़ा |
| अपादान | में से | टोकरी | मिट्टी | घड़ा |
| अधिकरण | के आधार से | पृथ्वी | मिट्टी | घड़ा |

1.process 2.producer/sponser 3.factor 4. independently 5.achieve 6.task 7. supreme-mean 8.stable 9.basis

समकित : चिंता मत करो। अभी सरल हो जायेगा। जरा पिछले चार्ट को देखोः

प्रवेश : यह व्यवहार और निश्चय कारक क्या होते हैं ?

समकित : जब छहों कारक अलग-अलग (भिन्न-भिन्न[1]) होते हैं तब उन्हें **व्यवहार या भिन्न कारक कहते हैं।**

जब छहों कारक समान (अभिन्न[2]) होते हैं उन्हें **निश्चय या अभिन्न कारक कहते हैं।**

प्रवेश : जैसे ?

समकित : जैसे चार्ट में हमने घड़े बनने की क्रिया[3] के व्यवहार कारक में देखा कि कुम्हार ने घड़े को, चक्र से, पनिहारिन के लिये, टोकरी[4] में से मिट्टी लेकर, पृथ्वी (धरती) के आधार से बनाया।

यहाँ कर्ता-कुम्हार[5], कर्म-घड़ा, करण-चक्र (चाक)[6], सम्प्रदान-पनिहारिन (पानी भरने वाली), अपादान-टोकरी, अधिकरण-पृथ्वी (धरती) है।

यानि कि छहों कारक अलग-अलग हैं। इसलिये ये भिन्न यानि कि व्यवहार कारक हैं।

प्रवेश : हमने पहले देखा था कि जिस वस्तु का स्वरूप जैसा है वैसा ही कहना निश्चय नय और जिस वस्तु का स्वरूप जैसा नहीं है वैसा कहना यानि किसी का स्वरूप किसी में मिलाकर कहना या कहो कि निमित्त आदि की अपेक्षा कहना व्यवहार नय है।

समकित : हाँ, इसीलिये निश्चय नय का कथन[7] यथार्थ[8] और व्यवहार नय का कथन उपचरित[9] (आरोपित[10]) होता है।

इसीलिये व्यवहार कारक यथार्थ यानि कि सच्चे कारक नहीं हैं, उपचरित कारक हैं। यानि कि निमित्त होने के कारण उनके ऊपर कारक होने का आरोप[11] भर आता है, क्योंकि उनका स्वरूप कुछ ऐसा है।

1.different 2.same 3.process 4.basket 5. potter 6.potters-wheel
7. narration 8.actual 9. formal 10.blamed 11.blame

प्रवेश : कैसे ?

समकित : जैसे व्यवहार कारकों में पहले कर्ता कारक को ही देखो। कर्ता की परिभाषा है-जो स्वाधीनता-से[1] अपने कार्य को करे उसे कर्ता कहते हैं। लेकिन कुम्हार तो घड़ा बनाने के कार्य को करने में स्वाधीन[2] नहीं है उसे मिट्टी, चक्र आदि चाहिये।

दूसरा, जो स्वयं कार्य रूप परिणमित[3] होता है उसे कर्ता कहते हैं। लेकिन यदि हम घड़े बनने कि क्रिया[4] के व्यवहार कारक देखें तो कुम्हार (कर्ता) तो घड़े (कार्य) रूप परिणमित नहीं होता इसलिये वह घड़े रूपी कार्य का वास्तविक (सच्चा) कर्ता नहीं हो सकता। वह तो मात्र उपचरित (आरोपित) कर्ता है। कार्य में निमित्त होने की अपेक्षा उस पर कर्ता होने का आरोप[5] भर आता है क्योंकि उसके योग (मन-वचन-काय की चेष्टायें) व उपयोग (विकल्प)[6] घड़ा बनाने के हैं।

प्रवेश : तो फिर घड़े (कार्य) का यथार्थ (सच्चा) कर्ता कौन है ?

समकित : जो घड़े (कार्य) रूप परिणमित होता है वही घड़े का यथार्थ (सच्चा) कर्ता है । तुम बताओ कौन घड़े रूप परिणमित हुआ है ?

प्रवेश : घड़े रूप तो मिट्टी[7] पिरणमित हुई है।

समकित : हाँ, तो बस मिट्टी ही घड़े की यथार्थ (सच्ची) कर्ता है। यथार्थ कर्ता को ही निश्चय कर्ता कहते हैं। इसी तरह बाकी[8] चार कारकों को भी समझना ?

प्रवेश : हाँ, जैसे चक्र घड़े रूपी कार्य का उत्कृष्ट-साधन[9] है यानि कि उसके बिना घड़ा बन ही नहीं सकता।

समकित : क्यों, हाथ से भी तो घड़ा बन सकता है या किसी नयी मशीन से।

प्रवेश : फिर ?

---

1. independently 2.independent 3.transformed 4.process 5.blame 6.thoughts 7.clay 8.remainig 9. supreme-mean

समकित : अरे भाई ! हर चीज के बिना घड़ा बन सकता है यानि कि हर चीज का दूसरा विकल्प हो सकता है लेकिन मिट्टी के बिना घड़ा नहीं बन सकता इसलिये निश्चय से मिट्टी ही घड़ा बनने की क्रिया का करण कारक है और तो और निश्चय से वही सम्प्रदान, अपादान व अधिकरण कारक भी है।

इसप्रकार किसी भी क्रिया के निश्चय कारक अलग-अलग नहीं होते, एक ही होते हैं इसलिये इनको अभिन्न कारक कहते हैं।

प्रवेश : चार्ट में निश्चय कारक के भी तो दो भेद किये हैं, द्रव्य के षट्कारक व पर्याय के षट्कारक ?

समकित : हाँ, किसी अपेक्षा द्रव्य के षट्कारक अलग व पर्याय के षट्कारक अलग होते हैं।

प्रवेश : कैसे ?

समकित : जब इस बात का निषेध[1] करना हो कि कुम्हार घड़े का कर्ता है तब द्रव्य के निश्चय कारक का सहारा लेकर कहते हैं कि घड़े का कर्ता कुम्हार नहीं, मिट्टी है।

लेकिन जब द्रव्य को अकर्ता बताना हो, पर्याय को गौण करना हो, तब कहते हैं कि वास्तव-में (शुद्धनय-से) तो मिट्टी भी घड़े की कर्ता नहीं है। मिट्टी तो मिट्टी की ही कर्ता है क्योंकि घड़ा भी तो आखिरकार[2] मिट्टी ही है। वह कोई पानी थोड़ी हो गया।

प्रवेश : तो फिर घड़े का कर्ता कौन है ?

समकित : यही बात तो पर्याय के षट्कारक में बताई है कि पर्याय की कर्ता स्वयं पर्याय ही है यानि घड़े का कर्ता स्वयं घड़ा ही है। न कुम्हार (पर-द्रव्य) है, न मिट्टी (स्व-द्रव्य) है।

क्योंकि कुम्हार तो परद्रव्य है और एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता हो ही नहीं सकता क्योंकि दो द्रव्यों का आपस में अत्यंताभाव है। और मिट्टी

1.prohibition 2.ultimately

भले ही स्वद्रव्य है लेकिन वास्तव में (शुद्धनय से) तो स्वद्रव्य भी अपनी पर्याय का कर्ता नहीं हो सकता क्योंकि द्रव्य अपरिणामी (नहीं बदलने वाला) और निष्क्रिय (कुछ भी क्रिया न होना) और अकर्ता (कुछ न करने वाला) होता है लेकिन पर्याय परिणामी (बदलने वाली) और क्रियाशील होती है। इसलिये पर्याय ही पर्याय की कर्ता है। पर्याय के षट्कारक पर्याय में ही मौजूद रहते हैं। पर्याय को अपने कारक बाहर खोजने नहीं जाने पड़ते क्योंकि पर्याय भी एक समय का सत् है व सत् निरपेक्ष[1] होता है। उसे दूसरे सत् की अपेक्षा[2] नहीं होती यानि कि पर्याय के पास वो सारी व्यवस्था[3] है कि वह स्वाधीनता-से[4] अपने कर्म[5] को कर सके इसलिये पर्याय ही पर्याय ही यथार्थ (निश्चय) कर्ता है।

प्रवेश : यह अत्यंताभाव क्या होता है ?

समकित : वह मैं कल बताऊँगा।

प्रवेश : यह बात लॉजिक से तो समझ में आ गयी लेकिन इसका उपयोग क्या है, क्यों इतनी मगजमारी करनी ?

समकित : अरे भाई अंत में जाकर तो इसी का उपयोग करना है क्योंकि अकर्ता, निष्क्रिय और अपरिणामी द्रव्य के आश्रय (ज्ञान-श्रद्धान-लीनता) से ही तो सच्चे सुख (निराकुलता) की प्राप्ति होती है, मोक्ष का मार्ग प्रारंभ होता है, मोक्ष होता है।

प्रवेश : जरा विस्तार से बतायें।

समकित : कल बताया था न कि जब हम अपने दुःखों का कर्ता दूसरों को मानते हैं तब शास्त्र कहते हैं कि दूसरे हमारे दुःखों के कर्ता नहीं हैं, हमारे कर्म ही हमारे दुःखों के कर्ता हैं। फिर जब हम द्रव्य-कर्मों को दोष[6] देने लगते हैं तब शास्त्र कहते हैं कि द्रव्य-कर्म तो जड़ हैं, हम स्वयं ही अपने दुःखों के कर्ता हैं। फिर जब हम अपने त्रिकाली ध्रुव अंश को ही दोषी[7] मानने लगते हैं तब शास्त्र कहते हैं कि त्रिकाली ध्रुव अंश तो निर्दोष[8] है, अपरिणामी[9], निष्क्रिय और अकर्ता है। दुःख की पर्याय की कर्ता तो वह पर्याय स्वयं है।

1.independent 2.dependency 3.means 4.independently 5.intended-task 6.blame 7.faulty 8.faultless 9. non-transforming

इसलिये दूसरों की, कर्मों की और यहाँ तक कि अपनी पर्यायों की तरफ भी देखना छोड़ो क्योंकि पर्याय तो एक समय की (क्षणिक[1]) है, परिणमनशील[2] है, निश्चित[3] है। लेकिन तुम्हारा मूल स्वभाव तो त्रिकाली[4] ध्रुव (शाश्वत) है, अपरिणामी[5] है, निष्क्रिय है, अकर्ता है व शुद्ध (निर्दोष) है।

प्रवेश : इससे क्या होगा ?

समकित : बस अपने को ऐसा जानना ही सम्यकज्ञान है, ऐसा मानना ही सम्यकदर्शन है और ऐसा ही जानते-मानते रहना ही ध्यान यानि कि सम्यकचारित्र है। और इन तीनों की एकता[6] यानि कि रत्न-त्रय[7] ही मोक्ष[8] यानि कि सच्चे सुख की प्राप्ति का मार्ग है और सच्चा सुख पाना ही तो हम सबका एक-मात्र उद्देश्य[9] है।

जीवन आत्मामय ही कर लेना चाहिये। भले ही उपयोग सूक्ष्म होकर कार्य नहीं कर सकता हो परन्तु प्रतीति में ऐसा ही होता है कि यह कार्य करने से ही लाभ है, मुझे यही करना है, वह वर्तमान पात्र है।

जो प्रथम उपयोग को पलटना चाहता है परन्तु अंतरंग रुचि को नहीं पलटता, उसे मार्ग का ख्याल नहीं है। प्रथम रुचि को पलटे तो उपयोग सहज ही पलट जायगा। मार्ग की यथार्थ विधिका यह क्रम है।

सहज दशा को विकल्प कर के नहीं बनाये रखना पड़ता। यदि विकल्प करके बनाये रखना पड़े तो वह सहज दशा ही नहीं है। तथा प्रगट हुई दशा को बनाये रखने का कोई अलग पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता, क्योंकि बढ़ने का पुरुषार्थ करता है जिससे वह दशा तो सहज ही बनी रहती है।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

1.momentary 2. transforming 3.certain 4.eternal 5.non-transforming 6.unity 7. three-jewels 8.salvation 9.aim

# 7

# चार अभाव

समकित : **एक पदार्थ[1] का दूसरे पदार्थ में न-होना[2] अभाव कहलाता है।** एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में अभाव[3] होना यानि कि उनके बीच व्याप्य-व्यापक संबंध[4] का अभाव होना। सरल भाषा में कहे तो उनका एक दूसरे का हिस्सा[5] न होना और जहाँ व्याप्य-व्यापक संबंध का अभाव[6] होता है, वहाँ कर्ता-कर्म संबंध का भी अभाव होता है। यानि कि जो पदार्थ एक-दूसरे का हिस्सा नहीं होते वे एक-दूसरे का कुछ भी नहीं कर सकते।

प्रवेश : जैसे ?

समकित : जैसे आपका कोई मित्र[7] आपको अपनी कोई पारिवारिक-समस्या[8] सुनाता है तो आप सुन तो लेते हैं लेकिन आखिर-में[9] यही कहते हैं कि यह तुम्हारे परिवार का अंदरूनी-मसला[10] है और चूँकि मैं तुम्हारे परिवार का हिस्सा[11] नहीं हूँ इसलिये मैं इसमें कुछ भी नहीं कर सकता।

यानि कि किसी भी पदार्थ में कुछ भी करने के लिये हमें उसका हिस्सा होना जरूरी है यानि कि दो पदार्थों के बीच कर्ता-कर्म संबंध होने के लिये व्याप्य-व्यापक संबंध होना जरूरी है।

प्रवेश : अच्छा मतलब ये चार अभाव, दो पदार्थों के बीच में व्याप्य-व्यापक और कर्ता-कर्म संबंधों का अभाव बतलाते हैं ?

समकित : हाँ बिल्कुल।

प्रवेश : कौन-कौन से पदार्थों के बीच ?

समकित : भाव शब्द की तरह पदार्थ शब्द का प्रयोग भी द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों के लिये किया जाता है।

चार अभाव में पहले तीन अभाव, दो पर्यायों[12] के बीच में अभाव बतलाते हैं व चौथा अभाव, दो द्रव्यों[13] के बीच में अभाव बतलाता है।

---

1.substance 2.absence 3.absent 4.relation 5.part 6.absence 7.friend 8.family-problem 9.at the end 10.internal-issue 11.member/part 12.states 13.objects

प्रवेश : वे चार अभाव कौन-कौन से हैं ?

समकित : वे चार अभाव हैं :

1. प्राग्भाव 2. प्रध्वंसाभाव 3. अन्योन्याभाव 4. अत्यंताभाव

**1. प्राग्भावः** किसी भी द्रव्य की वर्तमान-पर्याय[1] का उसी द्रव्य की भूतकाल-की-पर्याय[2] में अभाव[3] प्रागभाव है।

जैसे गोरस की तीन पर्याय एक-के-बाद-एक[4] होती हैं:
1. दूध[5] 2. दही[6] 3. छाछ[7]

यदि हम दही को वर्तमान-पर्याय[8] की तरह देखें तो दही का दूध में अभाव प्राग्भाव है।

**2. प्रध्वंसाभावः** किसी भी द्रव्य की वर्तमान-पर्याय[9] का उसी द्रव्य की भविष्य-की-पर्याय[10] में अभाव प्रध्वंसाभाव है।

जैसे दही का छाछ में अभाव प्रध्वंसाभाव है।

प्रवेश : अन्योन्याभाव और अत्यंताभाव ?

समकित : **3. अन्योन्याभावः** एक पुद्गल द्रव्य की वर्तमान-पर्याय[11] का दूसरे पुद्गल द्रव्य की वर्तमान-पर्याय में अभाव अन्योन्याभाव है।

जैसे हल्दी के पीलेपन का दूध की सफेदी में अभाव अन्योन्याभाव है।

प्रवेश : इसका मतलब यह हुआ कि प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव एक ही द्रव्य की भूत, वर्तमान व भविष्य पर्यायों में लागू[12] होता है जबकि अन्योन्याभाव दो अलग-अलग पुद्गल द्रव्य की वर्तमान पर्यायों में लागू होता है ?

समकित : हाँ बिल्कुल सही। अब सुनो अत्यंताभाव जो कल तुमने पूछा था।

**4. अत्यंताभावः** एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में अभाव अत्यंताभाव है।

जैसे जीव द्रव्य (आत्मा) का पुद्गल द्रव्य (शरीर) में अभाव।

1.present-state 2.past-state 3.absense 4.serially 5.milk 6.curd 7.buttermilk 8.present-state 9.present-state 10.future-state 11.present-state 12.apply

प्रवेश : पर आत्मा तो शरीर में ही रहता है ?

समकित : आत्मा और शरीर के बीच एक-क्षेत्र-अवगाह[1] संबंध है यानि कि वे दोनों एक ही क्षेत्र (स्थान[2]) में रहते हैं लेकिन उनके बीच व्याप्य-व्यापक संबंध नहीं है और चूँकि उनके बीच व्याप्य-व्यापक संबंध नहीं है इसलिये कर्ता-कर्म संबंध भी नहीं है यानि कि आत्मा और शरीर एक-दूसरे के हिस्से[3] नहीं है इसलिये वे एक-दूसरे का कुछ भी नहीं कर सकते हैं।

प्रवेश : लेकिन हम (आत्मा) हाथ-पैर (शरीर) हिलाते तो हैं ?

समकित : हम (आत्मा) हाथ-पैर हिलाने का भाव करते हैं। हाथ-पैर तो स्वयं अपनी (शरीर की) योग्यता[4] से हिलते हैं और जब उनमें हिलने की योग्यता नहीं होती तब नहीं हिलते हैं। जैसे पैरालिटिक (लकवाग्रस्त) व्यक्ति हाथ-पैर हिलाने के कितने भी भाव करे लेकिन हाथ-पैर के हिलने की योग्यता न होने से वे नहीं हिलते।

प्रवेश : अरे मैं तो सोचता था कि हम जैसा शरीर को चलाना चाहते हैं वैसा ही शरीर चलता है।

समकित : नहीं, बताओ कौन शरीर को सीढ़ियों[5] से गिरना चाहता है ? कोई नहीं चाहता। लेकिन शरीर की गिरने की योग्यता[6] होती है तो गिरता ही है।

प्रवेश : ठीक है ! आत्मा[7], शरीर[8] को हिलाने-चलाने वाला नहीं है पर शरीर तो आत्मा को चलाने वाला है न ? क्योंकि शरीर सीढ़ियों से गिरता है तो आत्मा को भी साथ में गिरना ही पड़ता है ?

समकित : नहीं, भले ही आत्मा की इच्छा[9] नहीं है गिरने की, लेकिन आत्मा की क्रियावती शक्ति की गिरने (गति) रूप पर्याय (योग्यता) होने से आत्मा गिरता है और शरीर (पुद्गल) अपनी क्रियावती शक्ति की गिरने रूप पर्याय (योग्यता) होने से गिरता है। दोनों के बीच में मात्र निमित्त-नैमित्तिक संबंध है यानि कि दोनों का परिणमन[10] अपनी-अपनी (तत्समय की) योग्यता के अनुसार समानांतर[11] तो है लेकिन एक-दूसरे के कारण नहीं।

1. common-space residence 2.space 3.part 4.ability/ripeness 5.stairs 6.ability 7.soul 8.body 9.wish 10.transformation 11.parallel

जैसे रोड पर चलने वाली कार और पटरी[1] पर चलने वाली ट्रेन दोनों समानांतर[2] तो चलती हैं लेकिन स्वयं अपने-अपने कारण से चलती हैं, एक-दूसरे के कारण नहीं और एक-दूसरे के ट्रेक पर भी नहीं।

प्रवेश : अरे वाह ! यह तो अद्भुत[3] है।

समकित : अत्यंताभाव को तो हमने आत्मा पर घटा[4] कर देख लिया। अब बताओ अन्योन्याभाव को आत्मा पर कैसे घटाओगे ?

प्रवेश : नहीं, अन्योन्याभाव को आत्मा पर नहीं घटाया जा सकता क्योंकि अन्योन्याभाव तो दो पुद्गल द्रव्य की वर्तमान पर्यायों के बीच में ही घटता है।

समकित : बहुत अच्छा ! मतलब ध्यान से सुन रहे थे। ठीक है तो दो पुद्गल द्रव्य की वर्तमान पर्याय पर इसको घटाकर बताओ ?

प्रवेश : जैसे छत[5] और पंखे[6] के बीच में अभाव अन्योन्याभाव है। क्योंकि यह अलग-अलग पुद्गलों की पर्यायें हैं।

समकित : बहुत बढ़िया ! अब बताओ कि छत और पंखे के बीच में व्याप्य-व्यापक संबंध का अभाव होगा या नहीं ?

प्रवेश : बिल्कुल होगा।

समकित : इनके बीच में व्याप्य-व्यापक संबंध का अभाव होने से इनमें कर्ता-कर्म संबंध का अभाव भी होगा ही। यानि कि छत और पंखा एक-दूसरे का कुछ भी करने वाले नहीं हैं यानि कि छत पंखे को सहारा[7] देने वाली नहीं है।

प्रवेश : फिर पंखा किसके सहारे से है ?

समकित : अपने खुद के सहारे से।

प्रवेश : ऐसा कैसे मुमकिन[8] है ?

1. railway-track 2.parallel 3.wonderful 4.apply 5.ceiling 6.fan 7.support 8.possible

समकित : क्यों यह चौदह राजू का लोक (विश्व) किसके सहारे से है ? ये सिद्ध-शिला, ये स्वर्ग, ये पृथ्वी[1], ये नर्क आदि किसके सहारे से हैं ? ये तारे[2], गृह[3] व नक्षत्र[4] आदि किसके सहारे से हैं ? यह सब कौनसी छत से लटके-हुये[5] हैं या टेबल पर रखे हुए हैं ? जब इतना बड़ा लोक[6] खुद के सहारे से हो सकता है तब यह छोटा सा पंखा क्यों नहीं ?

प्रवेश : ओह ! ऐसा तो कभी विचार ही नहीं किया।

समकित : विचार नहीं किया इसीलिये तो आजतक संसार में भटक-भटक कर अनंत दुःख भोग रहे हैं और भगवान इसको स्वीकार[7] करके इस भटकन और दुःख से मुक्त हो गये हैं।

प्रवेश : लेकिन ऐसा कहते तो हैं कि छत से पंखा लटका है ?

समकित : ऐसा कहना व्यवहार है लेकिन ऐसा यथार्थ मानना मिथ्यात्व है। व्यवहार नय जैसा है वैसा कथन नहीं करता निमित्त आदि की अपेक्षा से किसी को किसी में मिलाकर कथन करता है।

व्यवहार नय अपेक्षा[8] सहित होने से सम्यकज्ञान का ही अंश[9] है इसलिये ऐसा कहना व्यवाहर नय होने से सम्यक[10] है, लेकिन ऐसा यथार्थ मानना उल्टी मान्यता होने से मिथ्यात्व[11] है, अनंत संसार व दुःख का कारण है।

प्रवेश : मतलब यह व्यवहार[12] चलाने के लिये कहने व समझने-समझाने की बात है, यथार्थ मानने की नहीं ?

समकित : हाँ, जो परमार्थ/यथार्थ (परम-सत्य)[13] को नहीं जानता ऐसे अज्ञानी को समझाने के लिये व्यवहार नय का सहारा[14] लिया जाता है इसलिये इस अपेक्षा से व्यवहार नय भी उपयोगी[15] है।

प्रवेश : भाईश्री ! प्रागूभाव और प्रध्वंसाभाव को आत्मा पर कैसे घटायेंगे ?

---

1.earth 2. stars 3. planets 4.constellations 5.hanged 6.universe 7.accept 8. intention 9.fraction 10. correct 11.false-belief 12. formality 13. supreme-truth 14.help 15.useful

समकित : चूँकि प्रागूभाव कहता है कि हमारी वर्तमान पर्याय का पूर्व पर्याय में अभाव है। यानि कि दोनों के बीच व्याप्य-व्यापक संबंध का अभाव होने से कर्ता-कर्म संबंध का भी अभाव होता है। यानि कि हमारी वर्तमान पर्याय, पूर्व पर्याय में कुछ भी नहीं कर सकती और पूर्व पर्याय वर्तमान पर्याय में भी कुछ नहीं कर सकती। असर[1], मदद[2], प्रेरणा[3] आदि कुछ भी नहीं।

इसलिये पूर्व में हमने कितने भी पाप किये हों लेकिन यादि वर्तमान में हम सही पुरुषार्थ[4] कर मोक्षमार्ग (सम्यकदर्शन-ज्ञान-चारित्र) को प्रगट[5] कर सकते हैं। इसप्रकार प्रागभाव हमें आशावादी[6] बनाता है। नया पुरुषार्थ करने की प्रेरणा[7] देता है।

प्रवेश : और प्रध्वंसाभाव ?

समकित : प्रध्वंसाभाव कहता है कि हमारी वर्तमान पर्याय का भविष्य की पर्याय में अभाव है। यानि कि हमारी वर्तमान पर्याय भविष्य की पर्याय में कुछ भी नहीं कर सकती, यानि कि आज हम कितने भी पामर (अशुद्ध) क्यों न हों लेकिन कल सही पुरुषार्थ करके परमात्मा बन सकते हैं।

इसप्रकार प्रध्वंसाभाव हमको पामर से परमात्मा बनने की प्रेरणा देता है। समझ में आया?

प्रवेश : बहुत अच्छे से।

समकित : तो बताओ बेलन से रोटी बनती है, ऐसा यथार्थ मानने वाले ने कौनसा अभाव नहीं माना ?

प्रवेश : अन्योन्याभाव, क्योंकि बेलन और रोटी अलग-अलग पुद्गलों की पर्याय हैं।

समकित : बहुत बढ़िया ! अब बताओ द्रव्य-कर्मों ने हमको संसार में बाँध[8] कर रखा है ऐसा यथार्थ मानने वाले ने कौनसा अभाव नहीं माना ?

प्रवेश : अत्यंताभाव, क्योंकि हम जीव द्रव्य हैं और द्रव्य-कर्म पुद्गल द्रव्य हैं।

1.effect 2.help 3.inspiration etc 4.efforts 5.achieve 6.optimistic 7.inspiration 8.bind

समकित : अरे वाह ! फलाना व्यक्ति बहुत पापी है उसे कभी भी मोक्ष नहीं हो सकता ऐसा मानने वाले ने कौनसा अभाव नहीं माना ?

प्रवेश : ऐसा मानने वाले ने प्रध्वंसाभाव नहीं माना।

समकित : उसको मैं बहुत पहले से जानता हूँ, उसका ट्रेक-रिकॉर्ड[1] बहुत ही खराब रहा है वो, सुधर कभी ही नहीं सकता, ऐसा मानने वाले ने कौनसा अभाव नहीं माना ?

प्रवेश : प्रागभाव।

समकित : बहुत अच्छा ! लेकिन एक बात याद रखना जिसतरह बेलन से रोटी बनती है ऐसा बोलना मिथ्यात्व नहीं है, ऐसा यथार्थ मानना मिथ्यात्व है। ऐसा समझकर बोलना तो व्यवहार नय होने से सम्यक[2] ही है। उसी तरह द्रव्य-कर्मों ने हमको संसार में बाँध रखा है या हमने द्रव्य-कर्मों को बाँध रखा है ऐसा बोलना मिथ्यात्व नहीं है, ऐसा यथार्थ मानना मिथ्यात्व है।

प्रवेश : तो फिर किसने हमको संसार में बाँध रखा है और रात-दिन हम किससे बँधते रहते हैं ?

समकित : हमारे मोह, राग-द्वेष आदि भाव कर्मों ने ही हमको संसार में बाँध[3] कर रखा है और हम इन भाव कर्मों से ही दिन-रात बँधते रहते हैं व दुःखी होते रहते हैं। द्रव्य-कर्म तो बेचारे जड़ हैं, उनको तो कुछ ज्ञान नहीं है और न ही उनका कोई दोष[4] है। कहा भी है-
**कर्म बेचारे कौन, भूल मेरी अधिकाई।**

प्रवेश : ठीक है, फिर ऐसा बोलना भी क्यों कि हमको द्रव्य कर्मों ने बाँध रखा है या हम द्रव्य कर्मों को बाँधते हैं ?

समकित : क्योंकि हमारे भाव-कर्म (परिणाम) का हम अनुभव[5] तो कर सकते हैं लेकिन उनको शब्दों में बयान[6] नहीं कर सकते इसलिये जिनका परिणमन[7] हमारे परिणमन (भाव-कर्म) के समान है, ऐसे द्रव्य-कर्मों के गणित[8] से हम अपने भाव-कर्मों (परिणामों) का माप[9] और कथन[10] (बयान) करते हैं।

1.track-record 2.correct 3.bind 4.fault 5.experience 6.express 7.transformation 8.calculation 9.scale 10.narration

प्रवेश : कथन करने की जरूरत ही क्या है ?

समकित : समझने-समझाने के लिये। हमने देखा था ना कि अज्ञानी को समझाने के लिये अज्ञानी की भाषा यानि कि व्यवहार नय का सहारा लिया जाता है।

कहा भी है-अनार्य[1] को अनार्य की भाषा में समझाया जाता है लेकिन ब्राह्मण को अनार्य बन जाना ठीक नहीं है।

प्रवेश : मतलब ?

समकित : जैसे कोई विदेशी व्यक्ति, किसी साधु-महात्मा के पास आया। साधु-महात्मा ने उसे आशीर्वाद[2] दिया-धर्मलाभ ! लेकिन विदेशी[3] की भाषा इंग्लिश होने के कारण उसको कुछ भी समझ में नहीं आता और साधु-महात्मा की बात उस तक पहुँचती ही नहीं।

लेकिन यदि साधु-महात्मा उस विदेशी की भाषा में यानि कि इंग्लिश में उसे आशीर्वाद दे तो वह विदेशी व्यक्ति उस आशीर्वाद को समझ जाता है यानि कि साधु-महात्मा की बात उस तक पहुँच जाती है।

प्रवेश : यानि कि किसी भी वस्तु के सत्य (निश्चय) स्वरूप को समझने-समझाने के लिये व्यवहार नय उपयोगी है लेकिन आश्रय करने के लिये, उसको पकड़ के बैठने के लिये नहीं ?

समकित : बिल्कुल ! ठीक उसी प्रकार जैसे प्लेन को उड़ने के लिये रन-वे पर दौड़ना[4] जरूरी तो है, लेकिन रन-वे पर ही दौड़ते रहने के लिये नहीं। यदि वह रन-वे पर न दौड़े तो भी नहीं उड़ सकेगा और रन-वे पर ही दौड़ता रहे, उसे छोड़े नहीं, तो भी नहीं उड़ सकेगा।

लेकिन आज समस्या यह है कि कुछ लोग रन-वे पर दौड़ना ही नहीं चाहते, तो कुछ लोग रन-वे को छोड़ना नहीं चाहते यानि कि उस पर ही दौड़ते रहना चाहते हैं।

1.foreigner 2.blessing 3.foreigner 4.running

ये दोनों ही नहीं उड़ सकेंगे। ध्यान रहे **प्लेन की गरिमा उड़ने में है रन-वे पर दौड़ने में नहीं।**

उसे उड़ने के लिये मजबूरी में रन-वे पर दौड़ना पड़ता है। समझे ?

प्रवेश : हाँ, **उड़ना जरूरी है, दौड़ना मजबूरी है।**

समकित : बहुत खूब !

प्रवेश : भाईश्री ! कल हमारे यहाँ रामनवमी की छुट्टी है। हमने सुना है कि राम भगवान अपने यहाँ भी पूज्य हैं ?

समकित : हाँ, पूज्य तो हैं लेकिन रागी नहीं, वीतरागी और सर्वज्ञ स्वरूप में।

प्रवेश : मतलब ?

समकित : मतलब यह कि जैन धर्म में व्यक्ति[1] की नहीं, वीतरागता-सर्वज्ञता आदि गुणों[2] की पूजा होती है। जब व्यक्तियों में यह गुण प्रगट हो जाते हैं तभी वे पूज्य[3] होते हैं, उससे पहले नहीं।

प्रवेश : तो क्या राम भगवान ने यह गुण प्रगट[4] कर लिये थे ?

समकित : हाँ, आत्मानुभवी, क्षायिक सम्यकदृष्टि तो वह पहले से ही थे फिर उन्होंने मुनिदशा धारण कर, क्षपक श्रेणी चड़कर, वीतरागता-सर्वज्ञता यानि कि अरिहंत दशा प्राप्त कर ली थी और फिर अंत[5] में आयु पूरी कर सिद्ध हो गये थे ।

प्रवेश : अरे वाह ! कृपया[6] पूरी कहानी सुनाईये ?

समकित : आज नहीं कल।

> एक नय का सर्वथा पक्ष ग्रहण करे तो वह मिथ्यात्व के साथ मिला हुआ राग है और प्रयोजन के वश एक नय को प्रधान करके उसका ग्रहण करे तो वह मिथ्यात्व से रहित मात्र अस्थिरता का राग है।
>
> **-गुरुदेवश्री के वचनामृत**

1. individual 2.attributes 3.venerable 4. achieve 5.last 6. please

# ४

# भगवान राम

समकित : आज हम भगवान राम के जीवन के बारे में चर्चा करेंगे। राजकुमार राम का जन्म अयोध्या के राजा दशरथ की रानी कौशल्या के गर्भ से हुआ था।

प्रवेश : भाईश्री ! लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न ?

समकित : राजा दशरथ की तीन रानियाँ और थी-सुमित्रा, कैकयी और सुप्रभा, जिनमें सुमित्रा से लक्ष्मण का, कैकयी से भरत का और सुप्रभा से शत्रुघ्न का जन्म हुआ था।

प्रवेश : यह कब की बात है ?

समकित : यह बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी के समय की बात है।

प्रवेश : भगवान राम तीर्थंकर तो थे नहीं, तो क्या वे सामान्य केवली हुए थे ?

समकित : हाँ, वे सामान्य केवली हुए थे, लेकिन वे बलभद्र जरूर थे।

प्रवेश : यह बलभद्र क्या होते हैं ?

समकित : बलभद्र, त्रेसठ (63) शलाका पुरुषों में आते हैं। बलभद्र के छोटे भाई नारायण होते हैं व इनके शत्रु[1] को प्रतिनारायण कहते हैं। प्रतिनारायण भरत क्षेत्र के तीन खंड[2] का स्वामी (सम्राट[3]) होता है। प्रतिनारायण के दुराचार[4] के कारण नारायण उसको मार डालते हैं और तीन खंड के स्वामी (सम्राट) यानि कि अर्द्धचक्रवर्ती (सम्राट) बन जाते हैं।

प्रवेश : त्रेसठ (63) शलाका पुरुष ?

समकित : यह त्रेसठ महान पुण्यशाली सम्यकदृष्टि जीव होते हैं। इनमें से कुछ सम्यकदर्शन पूर्वक सम्यकचारित्र की पूर्णता[5] कर मोक्ष चले जाते हैं, कुछ सम्यकदर्शन पूर्वक मरण करके स्वर्ग चल जाते हैं और कुछ सम्यकदर्शन से भ्रष्ट[6] होकर नरक चले जाते हैं।

---

1.enemy 2.sections 3.emperor 4.misconduct 5.completeness 6.corrupt

24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलभद्र, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण ऐसे कुल ६३ शलाका पुरूष होते हैं।

ये सब तीर्थंकर की तरह ही चौथे-काल (आरे) में थोड़े-थोड़े समय के अंतर से एक के बाद एक होते हैं।

प्रवेश : ये भरत क्षेत्र और चौथा-काल (आरा) क्या होता है ?

समकित : वो बाद मैं कभी बताऊँगा।

प्रवेश : 63 शलाका पुरुषों के नाम बताईये न ?

समकित : 24 तीर्थंकर के नाम तो तुमको पता ही हैं। बाकी मैं बताता हूँ।

**12 चक्रवर्तीः** भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, सुभौम, पद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त

**9 नारायणः** त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम पुरुषसिंह, पुण्डरीक, दत्त, लक्ष्मण और श्रीकृष्ण

**9 बलभद्रः** विजय, अचल, सुधर्म, सुप्रभ, सुदर्शन, नंदी, नंदिमित्र, रामचन्द्र व बलदेव

**9 प्रतिनारायणः** अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधु-कैटभ, निशुंभ, बलि, प्रहरण, रावण व जरासन्ध

प्रवेश : अच्छा, तो श्रीराम आठवें बलभद्र, लक्ष्मण आठवें नारायण और राक्षस रावण आठवाँ प्रतिनारायण था ?

समकित : अरे रावण कोई राक्षस नहीं था। वह तो सम्यकदृष्टि और महाविद्वान विद्याधर (अनेक विद्याओं का धारी) मनुष्य और अर्द्धचक्रवर्ती (सम्राट) था, मात्र उसके वंश (कुल[1]) का नाम राक्षस-वंश था। हाँ यह बात जरूर है कि बाद में उसका सम्यकत्व छूट गया था और वह सीता हरण[2] जैसा महापाप कर बैठा था।

1.clan 2. kidnapping

प्रवेश : सीता हरण ?

समकित : हाँ, राजकुमार राम का विवाह मिथिला के राजा जनक की बेटी देवी सीता के साथ हुआ था। उनके विवाह के बाद श्रीराम के पिता राजा दशरथ के दीक्षा लेने के भाव हुए और राम के भाई भरत के भी दीक्षा लेने के परिणाम होने लगे। राजा दशरथ ने श्रीराम को राजा बनाने का निर्णय लिया। लेकिन...

प्रवेश : लेकिन ?

समकित : रानी कैकई को लगा कि पति और पुत्र (भरत) दोनों ही दीक्षा ले लेंगे तब मेरा क्या होगा। अतः भरत को दीक्षा लेने से रोकने के लिये उसने राजा दशरथ से राम की जगह भरत को राजा बनाने की माँग कर दी।

प्रवेश : तो राजा दशरथ मान गये ?

समकित : हाँ, मजबूरी में मानना पड़ा क्योंकि राजा दशरथ ने कैकई को वचन[1] दे रखा था कि जब जो इच्छा हो वो माँग लेना, मैं मना नहीं करूँगा इसलिये उनको कैकई की माँग स्वीकार करनी पड़ी।

प्रवेश : फिर राम ?

समकित : राम बहुत समझदार थे। मैं प्रजा[2] को बहुत प्रिय हूँ, मेरे रहते हुये भरत को कोई राजा नहीं मानेगा और राज्य व्यवस्था चौपट हो जायेगी, ऐसा सोचकर राम ने अयोध्या छोड़कर जाने का निर्णय लिया।

प्रवेश : वह अयोध्या छोड़कर चले गये ?

समकित : हाँ, वे तो गये ही, पत्नि सीता और भाई लक्ष्मण भी उनके साथ वन में चले गये।

प्रवेश : फिर वे कहाँ और कैसे रहे होंगे ?

गुरू : वे कोई सामान्य व्यक्ति नहीं, महा-पुण्यशाली बलभद्र और नारायण थे। उनके पुण्य के उदय[3] से वन में भी उनके रहने की सारी व्यवस्थायें हो

1.promise 2.public 3.arise

गयीं और उन्हें कोई तकलीफ नहीं हुई लेकिन पाप के उदय में देवी सीता के अपहरण ने उनको भयानक परेशानी में डाल दिया।

प्रवेश : अच्छा मतलब रावण सीता का अपहरण करके अपनी राजधानी लंका में ले गया, लेकिन क्यों ?

समकित : क्योंकि लक्ष्मण ने गुस्से में आकर रावण की बहिन चन्द्रनखा (सूपनखा) का अपमान कर दिया था। उसका बदला लेने के लिये रावण ने यह खोटा काम किया और भ्रष्ट हो गया। हालांकि उसने सीता को छुआ तक नहीं लेकिन अपने भाव (परिणाम) तो खराब कर ही लिये थे और **परिणामों से बंध है, परिणामों से मोक्ष।**

प्रवेश : फिर ?

समकित : फिर क्या। राम-लक्ष्मण ने हनुमान, सुग्रीव आदि की मदद से लंका पर चढ़ाई (हमला) कर दी।

प्रवेश : तो क्या हनुमान जी आदि भी बंदर (वानर) नहीं थे। उनके भी वंश (कुल) का नाम वानर वंश था।

समकित : हाँ बिल्कुल। वे सभी तो सर्वांग सुन्दर विद्याधर राजा थे और हनुमान जी तो संसार के सबसे सुंदर पुरुष थे।

प्रवेश : फिर ?

समकित : श्रीराम-लक्ष्मण और हनुमान जी आदि सभी विद्याधरों ने रावण की सेना से साथ भीषण युद्ध किया और रावण मारा गया। श्रीराम, देवी सीता को लंका से वापिस अयोध्या ले आये।

प्रवेश : चलो अच्छा हुआ।

समकित : अच्छा क्या हुआ ? पाप के उदय में जीव कहीं भी साता से नहीं रह सकता। परम् पवित्र देवी सीता को कुछ मूर्ख लोगों ने सिर्फ इस बात पर बदनाम करना शुरु कर दिया कि वह इतने महीनों तक रावण के यहाँ लंका में रहकर आयीं हैं। भले ही रावण ने उनको कभी स्पर्श भी

न किया हो और सीता ने रावण की तरफ आँख उठाकर भी न देखा हो। बदनामी के डर से और राजा का कर्तव्य निभाने के लिये श्रीराम ने फिर से गर्भवती सीता को वनवास भेज दिया।

प्रवेश : सीता ने कुछ नहीं कहा ?

समकित : देवी सीता ने श्रीराम को बस यही कहलवाया कि **जिस तरह बदनामी के डर से मुझे छोड़ दिया, उसी तरह बदनामी के डर से सच्चे धर्म को मत छोड़ देना।**

प्रवेश : फिर ?

समकित : पापा या पुण्य के उदय स्थाई नहीं रहते। सीता जी के पुण्य का उदय आया और घोर वियावान-वन में भी उनको सहायता मिल गयी। पुण्डरीकपुर के राजा वज्रजंघ सीता को अपनी बहिन बनाकर अपने घर ले गये। उनकी पत्नी ने गर्भवती सीता की खूब देख-भाल की और वहीं देवी सीता ने लव-कुश नाम के दो जुड़वा-पुत्रों को जन्म दिया। वे दोनों भी श्रीराम-लक्ष्मण जैसे शूरवीर हुये।

प्रवेश : वे अपने पिता श्रीराम से कभी नहीं मिले ?

समकित : एक बार ऐसा संयोग बना कि अनजाने में पिता-पुत्रों के बीच में युद्ध हो गया। लेकिन युद्ध के बीच में ही उन्हें आपस में पता चला गया कि हम पिता-पुत्र हैं। तब श्रीराम ने उन्हें गले से लगा लिया।

प्रवेश : चलो उन सब के दुःखो का अंत हुआ।

समकित : पूर्ण वीतरागी हुये बिना किसी के दुःखो का अंत नहीं हो सकता।

प्रवेश : क्यों अब क्या हुआ ? श्रीराम, देवी सीता को वापिस अयोध्या नहीं ले गये ?

समकित : श्रीराम ने देवी सीता को अयोध्या ले जाने से पहले अग्नि-परीक्षा पार करने की शर्त रख दी।

देवी सीता ने अग्नि-परिक्षा पार भी कर ली। देवी सीता के पुण्योदय से उनके प्रवेश करते ही अग्नि का कुण्ड पानी के तालाब में बदल गया। देवी सीता की जय-जयकार होने लगी।

प्रवेश : फिर क्या दिक्कत हुई ?

समकित : अब देवी सीता ने अयोध्या जाने से मना कर दिया। संसार की असारता[1] का विचार कर उनको वैराग्य आ गया और पृथ्वी आर्यिका से दीक्षा लेकर आत्मसाधना में लीन हो गयी।

प्रवेश : फिर श्रीराम व लव-कुश आदि का क्या हुआ ?

समकित : कुछ समय के बाद श्रीराम ने भी संसार की असारता का विचार कर, **बारह भावनाओं** का चिंतवन कर, दीक्षा धारण कर ली और आत्म साधना की पूर्णता कर मोक्ष चले गये। हनुमान जी व लव-कुश आदि भी समय आने पर दीक्षा धारण कर आत्मसाधना की पूर्णता कर मोक्ष चले गये।

प्रवेश : यह बारह भावना क्या होती हैं ?

समकित : वह मैं कल बताऊँगा।

प्रवेश : तो हम भी श्रीराम व हनुमान जी आदि की पूजा करते हैं ?

समकित : हाँ, करते तो हैं लेकिन उनकी रागी नहीं बल्कि वीतरागी और सर्वज्ञ (अरिहंत) अवस्था की।

प्रवेश : मैंने तो उनकी वीतरागी प्रतिमायें कभी नहीं देखी ?

समकित : तीर्थंकर अरिहंतों की प्रतिमा में ही सभी सामान्य केवली अरिहंतों की कल्पना[2] की जाती है।

प्रवेश : क्या इस कहानी के सारे पात्र मोक्ष चले गये ?

समकित : नहीं, आर्यिका सीता समाधिमरण करके स्वर्ग में प्रतींद्र हुई। रावण

1.blankness 2.imagination

आदि सम्यकत्व से भ्रष्ट और तीव्र कषाय हो जाने के कारण नरक चले गये।

प्रवेश : हमने तो सुना था जो एक-बार सम्यकदर्शन प्राप्त कर लेता है वह कभी न कभी मोक्ष जरूर जाता है। अनंत काल तक संसार में नहीं रहता।

समकित : हाँ, सही सुना है। लक्ष्मण और रावण भी भविष्य में तीर्थंकर होकर मोक्ष जायेंगे और आर्यिका सीता का जीव रावण के जीव का गणधर होकर मोक्ष जायेगा।

प्रवेश : अरे वाह ! हम तो कुछ और ही सोचते थे।

समकित : इसीलिये तो कहा है-**स्वाध्याय परमं तपः** यानि स्वाध्याय सबसे बड़ा तप है। स्वाध्याय से सत्य-असत्य का निर्णय होता है। भ्रांतियाँ (गतल-फहमी) दूर होती हैं।

भरत चक्रवर्ती, रामचन्द्रजी, पांडव आदि धर्मात्मा संसार में थे, परन्तु उन्हें निराले निज आत्मतत्व का भान था। दूसरे को सुखी-दुःखी करना, मारना-जिलाना वह आत्मा के हाथ में नहीं है ऐसा वे बराबर समझते हैं तथापि अस्थिरता है इसलिये युद्ध के प्रसंग में जुड़ जाने आदि के पापभाव तथा दूसरों को सुखी करने, जिलाने एवं भक्ति आदि के पुण्यभाव पुरुषार्थ की निर्बलता से होते हैं। स्वरूप में लीनता का पुरुषार्थ करके, अवशिष्ट राग को टालकर मोक्षपर्याय प्रगट करेंगे-ऐसी भावना का बल उनके निरन्तर होता है।

**-गुरुदेवश्री के वचनामृत**

चैतन्य की भावना कभी निष्फल नहीं जाती, सफल ही होती है। भले ही थोड़ा समय लगे, किन्तु भावना सफल होती ही है।

चाहे जैसे संयोग में आत्मा अपनी शान्ति प्रगट कर सकता है।

**-बहिनश्री के वचनामृत**

# ⑨

# बारह भावना

समकित : आज हम बारह भावना की चर्चा करने जा रहे हैं । निश्चय से भावना का अर्थ होता है चारित्र यानि कि आत्मलीनता। अतः आत्मलीनता ही निश्चय भावना है। निश्चय भावना की भावना भाना (शुभ राग) व्यवहार भावना है।

सम्यकदृष्टि श्रावक निश्चय भावना सहित व्यवहार भावना भाते हैं यानि कि बारह प्रकार से संसार-शरीर-भोगों[1] से विरक्त[2] होकर आत्मलीनता बढ़ाने की, मुनिदशा प्रगट करने की भावना भाते हैं।

प्रवेश : क्या बारह-भावना सिर्फ सम्यकदृष्टि ही भा सकते हैं ?

समकित : नहीं ऐसा नहीं है। मिथ्यादृष्टि भी सम्यकदर्शन यानि कि आत्मज्ञान, श्रद्धान व लीनता प्रगट करने के लिये बारह भावना भाते हैं लेकिन सच्ची व्यवहार बारह-भावना तो निश्चय भावना होने पर ही होती हैं।

प्रवेश : वह बारह-भावना कौन-कौन सी हैं ?

समकित : 1. अनित्य भावना 2. अशरण भावना 3. संसार भावना 4. एकत्व भावना 5. अन्यत्व भावना 6. अशुचि भावना 7. आश्रव भावना 8. संवर भावना 9. निर्जरा भावना 10. लोक भावना 11. बोधिदुर्लभ भावना 12. धर्म भावना, ये बारह भावना हैं।

प्रवेश : अनित्यता (क्षणभंगुरता[3]),अशरणता[4], संसार की असारता, अशुचिता[5] और आश्रव की भावना भाने से तो दुःख ही होगा ?

समकित : **वास्तव में** तो बारह भावनाओं में अनित्यता, अशरणता, संसार, अशुचिता और आश्रव की भावना नहीं, मात्र उनका ज्ञान व उनसे वैराग्य उत्पन्न कराया गया है। भावना (दृष्टि व लीनता संबंधी) तो नित्य (शाश्वत), शरणभूत, संसारातीत, परम्-शुचि (परम्-पवित्र) और निराश्रवी (मोह, राग-द्वेष से रहित) शुद्धात्मा की ही भायी गयी है।

---

1.world-body-physical pleasures 2.detached 3.momentariness 4.shadowlessness 5.impurity

प्रवेश : कृपया बारह-भावनाओं को समझाईये न ?

समकित : ठीक है, एक पुराने कविराज की बारह-भावनाएँ हम देखते हैं:

**अनित्य** द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन ।
द्रव्य दृष्टि आपा लखो, परजय नय करि गौन ।।

**अशरण** शुद्धातम अरु पंच गुरु, जग में सरनौ दोय ।
मोह उदय जिय के वृथा, आन कल्पना होय ।।

**संसार** पर द्रव्यन तैं प्रीति जो, है संसार अबोध ।
ताको फल गति चार में, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध ।।

**एकत्व** परमारथ तैं आतमा, एक रूप ही जोय ।
कर्म निमित विकलप घने, तिन नासे शिव होय ।।

**अन्यत्व** अपने अपने सत्वकूँ, सर्व वस्तु विलसाय ।
ऐसें चितवै जीव तब, परतैं ममत न थाय ।।

**अशुचि** निर्मल अपनी आतमा, देह अपावन गेह ।
जानि भव्य निज भाव को, यासों तजो सनेह ।।

**आस्रव** आतम केवल ज्ञानमय, निश्चयदृष्टि निहार ।
सब विभाव परिणाममय, आस्रवभाव विडार ।।

**संवर** निज स्वरूप में लीनता, निश्चय संवर जानि ।
समिति गुप्ति संजम धरम, करैं पाप की हानि ।।

**वैराग्य उत्पत्ति काल में बारह भावनाओं का चिंतवन करनेवाले ज्ञानी आत्मा इसप्रकार विचार करते हैं:**

अनित्य : द्रव्य-दृष्टि[1] से देखा जाय तो सर्व जगत् स्थिर[2] है, पर पर्याय-दृष्टि[3] से कुछ भी स्थिर नहीं है, अतः पर्यायार्थिक नय को गौण करके द्रव्यदृष्टि से एक नित्य आत्मा की अनुभूति[4] ही करने योग्य कार्य है।

अशरण : इस विश्व में दो ही शरण हैं। निश्चय-से[5] तो निज शुद्धात्मा ही शरण

1. static-perception 2.stable 3.dynamic-perception 4.experience 5.actually

है और व्यवहार-से[1] पंचपरमेष्ठी। लेकिन मोह के कारण यह जीव अन्य-पदार्थों[2] को शरण मानता है।

संसार : निश्चय से पर-पदार्थों के प्रति मोह, राग-द्वेष भाव ही संसार है। इसी कारण जीव चारों गतियों में दुःख भोगता हुआ भ्रमण करता है।

एकत्व : निश्चय से तो आत्मा ज्ञानादि अनंत गुणों का एक अखंड-पिंड[3] और शुद्ध ही है। कर्म के निमित्त की अपेक्षा कथन करने से अनेक विकल्प (मोह आदि) मय भी उसे कहा जाता है। इन विकल्पों के नाश से ही मुक्ति प्राप्त होती है।

अन्यत्व : प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी सत्ता[4] में ही विकास कर रहा है, कोई किसी का कर्ता-हर्ता नहीं है। जब जीव ऐसा चिंतवन करता है तो फिर पर पदार्थ में ममत्व[5] नहीं होता है।

अशुचि : अपनी आत्मा तो निर्मल है, पर यह शरीर महान् अपवित्र है, अतः हे भव्य जीवों ! अपने शुद्ध-आत्म स्वभाव को पहिचान कर इस अपावन देह से ममत्व छोड़ो।

आस्रव : निश्चय-दृष्टि से देखा जाय तो आत्मा केवल-ज्ञानमय है। विभाव[6] भावरूप परिणाम तो आश्रवभाव हैं, जो कि नाश करने योग्य हैं।

संवर : निश्चय से आत्मस्वरूप में लीन हो जाना ही संवर है। व्यवहार नय से उसका कथन समिति, गुप्ति और संयम रूप से किया जाता है, जिसे धारण करने से पापों का नाश होता है ।

**निर्जरा** संवरमय है आतमा, पूर्व कर्म झड़ जाय ।
निज स्वरूप को पायकर, लोक शिखर जब थाय ।।

**लोक** लोक स्वरूप विचारिके, आतम रूप निहार ।
परमारथ व्यवहार गुणि, मिथ्याभाव निवारि ।।

**बोधिदुर्लभ** बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं ।
भव में प्रापति कठिन है, यह व्यवाहर कहाहिं ।।

1.formally 2.other-substances 3.integrated-mass 4.existence 5.oneness 6.impurity

**धर्म** दर्श-ज्ञानमय चेतना, आतमधर्म बखानि ।
दया-क्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जानि ।।

निर्जरा : ज्ञानस्वभावी आत्मा ही संवर (धर्म) मय है। उसके आश्रय से ही पूर्व-उपार्जित[1] कर्मों का नाश होता है और यह आत्मा अपने स्वभाव को प्राप्त करता है।

लोक : लोक (छः-द्रव्य) का स्वरूप विचार करके अपनी आत्मा में लीन होना चाहिए। निश्चय और व्यवहार को अच्छी तरह जानकर मिथ्यात्व भावों को दूर करना चाहिए।

बोधिदुर्लभ : ज्ञान आत्मा का स्वभाव है, अतः वह निश्चय से दुर्लभ[2] नहीं है। संसार में आत्मज्ञान को दुर्लभ तो व्यवहार नय से कहा गया है।

धर्म : आत्मा का स्वभाव ज्ञान-दर्शनमय है। अहिंसा, क्षमा आदि दशलक्षण धर्म और रत्न-त्रय सब इसमें ही गर्भित[3] हो जाते हैं।

'जिसे लगी है उसी को लगी है'.... परन्तु अधिक खेद नहीं करना। वस्तु परिणमन शील है, कूटस्थ नहीं है, शुभाशुभ परिणाम तो होंगे। उन्हें छोड़ने जायेगा तो शून्य अथवा शुष्क हो जायेगा। इसलिये एकदम जल्दबाजी नहीं करना। मुमुक्षु जीव उल्लास के कार्यों में भी लगता है, साथ ही साथ अन्दर से गहराई में खटका लगा ही रहता है, संतोष नहीं होता। अभी मुझे जो करना है वह बाकी रह जाता है-ऐसा गहरा खटका निरंतर लगा ही रहता है, इसलिये बाहर कहीं उसे संतोष नहीं होता और अन्दर ज्ञायकवस्तु हाथ नहीं आती, इसलिये उलझन तो होती है, परन्तु इधर-उधर न जाकर वह उलझन में से मार्ग ढूँढ़ निकालता है।

मुमुक्षु को प्रथम भूमिका में थोड़ी उलझन भी होती है, परन्तु वह ऐसा नहीं उलझता कि जिससे मूढ़ता हो जाय। उसे सुखका वेदन चाहिये है वह मिलता नहीं और बाहर रहना पोसाता नहीं है, इसलिये उलझन होती है, परन्तु उलझन में से वह मार्ग ढूँढ़ लेता है। जितना पुरुषार्थ उठाये उतना वीर्य अंदर काम करता है। आत्मार्थी हठ नहीं करता कि मुझे झटपट करना है। स्वभाव में हठ काम नहीं आती। मार्ग सहज है, व्यर्थ की जल्दबाजी से प्राप्त नहीं होता। **-बहिनश्री के वचनामृत**

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम ।
बीजुं कहिये केटलुं ? **कर विचार तो पाम** ।। **-आत्मसिद्धि**

1.pre-earned 2.rare 3.include

# विद्वानों के अभिमत

**पं. श्री राजकुमार जी शास्त्री, शाश्वतधाम उदयपुर (राज.)** लिखते हैं: प्रो. पुनीत जी जैन मंगलवर्धिनी द्वारा आधुनिक भाषा शैली में लिखित ''समकित-प्रवेश'' पुस्तक का विहंगावलोकन करने का अवसर प्राप्त हुआ। भाई पुनीत जी बहुत ही उत्साही, तत्व प्रेमी व तत्व प्रचार-प्रसार के लिए सन्नद्ध हैं। आपने आधुनिक परिवेश में बाल-किशोर-युवा वर्ग को ध्यान में रखते हुए विभिन्न पाठों का संकलन किया है जिसमें चारों अनुयोगों के अत्यावश्यक विषयों को संजोया गया है। ऐसा नहीं है कि यह विषय अन्यत्र प्राप्त नहीं होते परंतु नये परिवेश के अनुसार उनका प्रस्तुतिकरण भी नये प्रकार से होना चाहिए इसलिए यह पुस्तक नये पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। यह पुस्तक जैन दर्शन के प्रारंभिक ज्ञान को कराने एवं समकित में प्रवेश कराने में सार्थक होगी इसी भावना के साथ लेखक को हार्दिक शुभकामनाएँ।

**डॉ. संजीव गोधा, अंतर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त विद्वान, जयपुर** लिखते हैं: प्रो. पुनीत मंगलवर्धिनी द्वारा युवा वय में तत्वप्रचार का महान कार्य संपादित किया जा रहा है। परमागम ऑनर्स कक्षाओं के माध्यम से पूरे भोपाल में व भोपाल के बाहर दिगंबर व श्वेतांबर संपूर्ण जैन समाज में उनका धर्म प्रभावना कार्य सराहनीय है और आगामी पीढ़ी को धर्म मार्ग में दृण करने के लिये मील का पत्थर साबित होगा। आपके द्वारा एक बिल्कुल नयी पद्धति में जो ''समकित-प्रवेश'' पुस्तक की रचना हुई है उसे देखकर निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि यह पुस्तक किसी भी व्यक्ति को जैन दर्शन की बारीकियों को समझने के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगी क्योंकि इसमें जैन दर्शन के समस्त मूलभूत सिद्धांतों व चारों अनुयोगों के महत्वपूर्ण विषयों को समाहित कर लिया गया है। इस पुस्तक की एक विशेषता यह भी है कि इसमें कठिन सैद्धांतिक शब्दों को फुटनोट के माध्यम से इंग्लिश में भी प्रस्तुत किया गया है अतः जो हमारा आज का इंग्लिश माध्यम से शिक्षा प्राप्त युवा वर्ग है वह भी इस पुस्तक का पूरा-पूरा लाभ ले सकेगा। सरसरी नजर से अवलोकन करने पर यह पुस्तक मुझे बहुत ही व्यवस्थित व सटीक प्रतीत हुई है। यदि भूल से कोई भूल रह भी गयी होगी तो निश्चित ही उसको आगामी संस्करणो में परिमार्जित कर लिया जायेगा। संपूर्ण जैन समाज इस पुस्तक का लाभ लेवे इस भावना के साथ मैं भाई श्री पुनीत जी को यह पुस्तक समाज को समर्पित करने हेतु साधुवाद प्रेषित करता हूँ।

**डॉ. प्रवीण कुमार शास्त्री, प्रायार्य–आचार्य अकलंक देव जैन न्याय महाविद्यालय ध्रुवधाम, बाँसवाड़ा (राज.)** लिखते हैं: प्रो. पुनीत जी से मेरा व्याक्तिगत परिचय खनियाँधाना प्रशिक्षण शिविर के दौरान हुआ, उस प्रथम परिचय में जो तत्व चर्चा हुई उससे ही इस युवा और उत्साही व्यक्तित्व की अंतरंग भावना और तत्व के प्रति समर्पण की झलक स्पष्ट हो गई थी। पुनीत जी द्वारा लिखित ''समकित-प्रवेश'' जैनागम के बेसिक रहस्यों को उद्घाटित करने वाली आधुनिक हिंग्लिश (हिन्दी+अंग्रजी) पीढ़ी के पाठकों के लिए आदर्श प्रस्तुत करेगी। यद्यपि पूर्णतः इस कृति को नहीं पढ़ पाया, किन्तु बानगी को देखकर उत्तम माल का परिचय सहज हो गया। जितना मैं जानता हूँ, पुनीत जी का आगमिक और अध्यात्मिक अध्ययन व्यवस्थित, स्पष्ट और प्रायोगिक है। सभी प्रकार के बाल, युवा व वृद्धजनों से अनुरोध है कि इस कृति के अध्ययन का लाभ उठायें व जन-जन का विषय बनायें। लेखक को इस उत्तम काम के लिए शुभकामना और धन्यवाद !

**डॉ. विपिन शास्त्री, प्राचार्य-श्री महावीर विद्यानिकेतन, नागपुर (महा.)** लिखते हैं: जब पूरी दुनियाँ में भौतिकता की चकाचौंध का बोलबाला हो तब ऐसा लगता है कि पता नहीं आगामी पीढ़ी के पास तत्त्वज्ञान पहुँचेगा भी या नहीं। लेकिन जब प्रो. पुनीत जी जैसे युवा इस क्षेत्र में आगे आकर काम करते हैं तो मन को प्रसन्नता होती है। हाल ही में उनके द्वारा लिखी गयी पुस्तक ''समकित-प्रवेश'' को सरसरी नजर से देखने का अवसर प्राप्त हुआ जिसमें भाषा की दुरूहता को दूर करते हुए सरल भाषा में विषय को परोसा गया है जिसके कारण आधे अंग्रेज, आधे हिंदी वाले पाठकों को भी सुलभता से विषय स्पष्ट हो सकता है। विभिन्न पाठों के माध्यम से क्रमिक विषय वस्तु निरूपण पुस्तक को रोचक बनाता है। जिनागम की बात कहीं भी, कोई भी कहे चूँकि मूल ग्रन्थकर्ता सर्वज्ञ परमात्मा होने से उसकी उपयोगिता पर किसी भी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता है। आशा है कि लेखक व पाठक इस प्रयास से वीतरागी निराकुल मार्ग की ओर अग्रसर होंगे।

**श्री प्रदीप मानोरिया अशोकनगर** लिखते हैं: साधर्मी भाई पुनीत जी द्वारा रचित प्रकाश्य पुस्तक ''समकित-प्रवेश'' का एक स्वाध्यायी के नाते अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रकाश्य पुस्तक में जिन शासन के मूलभूत सिद्धांतो को अत्यंत रोचक रीति से सरस और सारगर्भित चर्चा के द्वारा प्रस्तुत किया है। सभी सिद्धांतो के प्रतिपादन का क्रम अत्यंत व्यवस्थित रीति से इस प्रकार समाहित किया गया है सब ही विषय आगे आगे सम्बद्धता से गुथे हुये हैं अतएव वह क्रमानुसार निरूपित होने से वह निरूपण दुरूहता से दूर रहते हुये सरस और सरलता को प्राप्त हुआ है। पुस्तक की यह भी एक विशेषता है कि समस्त ही विवेचना में यथार्थ दृष्टिकोण की मुख्यता रखी गई है जिससे व्यवहार के विषयों का भी परमार्थ पक्ष स्पष्ट उजागर हुआ है। आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक नई पीढ़ी के युवा वर्ग को अत्यंत लाभप्रद सिद्ध होगी। वर्तमान में पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी द्वारा जिनागम के यथार्थ भाव का उद्घाटन हुआ है उसकी धारा अविरल प्रवाहित रहे ऐसी मंगल भावना है ।

**डॉ. पंकज कुमार जैन, प्राध्यापक–जैन दर्शन, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान भोपाल, (म.प्र.)** लिखते हैं: ''समकित-प्रवेश'' एक असाधारण कृति है। इस कृति में जैनधर्म-दर्शन के अति महत्वपूर्ण विषयों की प्रस्तुति आधुनिक और रोचक शैली में की गयी है। इससे जटिलतम विषय भी सरलता से हृदयंगम हो जाते हैं। इस कारण यह उपयोगी कृति प्रत्येक मोक्षमार्गी स्वाध्यायी जीव के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी और घर-घर में शास्त्र की तरह समादृत होगी। इस कृति के लेखक श्री पुनीत जी मंगलवर्धिनी जैनधर्म-दर्शन और अध्यात्म के गहन अध्येता हैं और आपकी विषय प्रतिपादन की शैली अनुपम है। आपने जिस अभिनव शैली में इस कृति का लेखन किया है वर्तमान में उसकी अत्यधिक उपादेयता है। इस हेतु आप बधाई के पात्र हैं।

**श्री प्रताप शास्त्री,अध्यक्ष–जैन दर्शन विभाग, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानम् भोपाल,** लिखते हैं: 'शास्त्रसंरक्षणे स्व-परहितम्'। ''समकित-प्रवेश'' पुस्तकमिदं प्रो. पुनीत जैन महोदयस्य समीचीन ज्ञानस्य सुपरिचयं प्रददाति। पुस्तके अस्मिन् चतुर्णाम् अनुयोगानां जैनदर्शनस्य मूल सिद्धान्तानांच शोभनं वर्णनं कृतम्। युवा विदुषः इदं पुस्तकं विशिष्टा शोभना च प्रस्तुतिरूपेण ज्ञानक्षेत्रे राजते। प्राग्काले वर्तमाने भविष्ये च सर्वदा जैनसिद्धान्तानां प्रासंगिकत्वं विलसति। तस्मिन च प्रासंगिकत्वे अनुपमं महनीयं च योगदानं महोदस्य वर्तते। पुस्तकेन अनेन ज्ञान गंगायाः अविरलगतिः सम्पोषिता सम्वर्धिता चेति। अस्मांक जीवने जिनवाण्याः महत्वं सर्वविदितमेव तथा च जिनवाण्याः उपासकेन महादयेन प्रो. पुनीत जैनेन सर्वेषां ज्ञानवर्धनाय हिताय च पुस्तकमिदं विरचितम्। अनेन च तस्य स्वस्य हितमपि निश्चयेन भविष्यति इति मे मंलकामना, मंलवर्धनाम्।

अपनी भूमिका के योग्य होने वाले विकारी भावों को जो छोड़ना चाहता है, वह अपनी वर्तमान भूमिका को नहीं समझ सका है, इसलिए उसका ज्ञान मिथ्या है, और जिसे वर्तते हुए विकारी भावों का निषेध नहीं आता परन्तु मिठास का वेदन होता है, तो वह भी वस्तुस्वरूप को नहीं समझा है, इसलिए उसका ज्ञान मिथ्या है। ज्ञानी को राग रखने की भावना तथा राग को टालने की आकुलता नहीं होती। **–द्रव्य दृष्टि जिनेश्वर**

'मैं ही परमात्मा हूँ' ऐसा निश्चय कर 'मैं ही परमात्मा हूँ' ऐसा निर्णय कर 'मैं ही परमात्मा हूँ' ऐसा अनुभव कर। वीतराग सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा सौ इन्द्रों की उपस्थिति में समवसरण में लाखों-करोड़ों देवों की मौजूदगी में ऐसा फरमाते थे कि 'मैं परमात्मा हूँ ऐसा निश्चय कर'। ''भगवान ! आप परमात्मा हो, इतना तो हमें निश्चित करने दो'' ! वह निश्चय कब होगा ? कि जब 'मैं परमात्मा हूँ' ऐसा अनुभव होगा, तब 'यह (भगवान) परमात्मा हैं' ऐसा व्यवहार तुझे निश्चित होगा। निश्चय का निर्णय हुए बिना व्यवहार का निर्णय नहीं होगा। **–गुरुदेवश्री के वचनामृत**

# पुस्तक के लाभार्थी

| | | |
|---|---|---|
| 1. | श्रीमती कमलाबाई लीडर हस्ते श्री सौरभ-नेहा जैन, भोपाल | 25000 ₹ |
| 2. | श्री अमित जैन, हैदराबाद | 25000 ₹ |
| 3. | श्री सुनील-रश्मि जैन, भोपाल | 15000 ₹ |
| 4. | श्री परमागम आनर्स विद्यार्थीगण, ललितपुर | 13000 ₹ |
| 5. | श्री चौ. सनत कुमार-किरण जैन, गुरसरांय (उ.प्र.) | 11000 ₹ |
| 6. | श्री शैलेन्द्र-पारूल जैन, भोपाल | 11000 ₹ |
| 7. | श्रीमती शीलाबाई जैन, विदिशा हस्ते श्रीमती आराधना जैन, भोपाल | 11000 ₹ |
| 8. | श्री मुमुक्षु महिला मंडल, भोपाल | 11000 ₹ |
| 9. | श्री राजीव-नीटू कौशल, भोपाल | 10000 ₹ |
| 10. | श्री स्वाध्याय मंडल 1100 क्वाटर्स, भोपाल | 6500 ₹ |
| 11. | श्री मोहित देवेन्द्र बड़कुल, भोपाल | 5100 ₹ |
| 12. | गुप्तदान | 5000 ₹ |
| 13. | श्री एस पी जैन-मंजू जैन, भोपाल | 5000 ₹ |
| 14. | गुप्तदान | 5000 ₹ |
| 15. | श्री कोमलचंद प्रसन्न कुमार बानोनी ट्रस्ट, ललितपुर (उ.प्र.) | 5000 ₹ |
| 16. | सी.ए. शुभानी-शनिल जैन, भोपाल | 5000 ₹ |
| 17. | स्व. पं. सुरेशचंद्र जी सिंघई (डॉ. शरद व अंकुर सिंघई) भोपाल | 3100 ₹ |
| 18. | श्रीमती रेखा जैन, भोपाल | 3100 ₹ |
| 19. | श्रीमती प्रज्ञा मोदी, भोपाल | 2500 ₹ |
| 20 | श्री राकेश कुमार-रंजना जैन, गौरझामर (सी.ए. रोहित जैन, रुचि लाईफ, भोपाल) | 2121 ₹ |
| 21. | श्री इंद्राणी ट्रस्ट हस्ते श्री कोमलचंद जी बानोनी, ललितपुर (उ.प्र.) | 2100 ₹ |
| 22. | श्री धन्यकुमार-नीलम जैन, महरौनी (उ.प्र.) | 2100 ₹ |
| 23. | श्री रूपम जैन, भोपाल | 2100 ₹ |
| 24. | श्रीमती सागरिका-सचिन कराड़े, कोल्हापुर (महा.) | 2100 ₹ |
| 25. | श्री राकेश कुमार-मंजू जैन रोड़ा वाले, ललितपुर (उ.प्र.) | 2100 ₹ |
| 26. | श्री देवेन्द्र जैन-सरिता जैन, भोपाल | 2100 ₹ |
| 27. | श्रीमती कुसुम भाटी, भोपाल | 2100 ₹ |
| 28. | श्री सत्येन्द्र-लता जैन (सतीश जैन हैना) अकलतरा (छ.ग.) | 1100 ₹ |
| 29. | श्रीमती सीमा जैन, रतलाम (म.प्र.) | 1100 ₹ |
| 30. | श्रीमती कविता कासलीवाल, हैदराबाद | 1100 ₹ |
| 31. | श्री राजेन्द्र-सुभद्रा जिन्दानी, भोपाल | 1100 ₹ |
| 32. | श्री निर्मल मानोरिया, भोपाल | 1100 ₹ |
| 33. | गुप्तदान | 1100 ₹ |
| 34. | श्री दिगंबर परिवार, पंचशील नगर, भोपाल | 1000 ₹ |
| 35. | श्रीमती अभिलाषा जैन, पंचशील नगर, भोपाल | 1000 ₹ |
| 36. | श्रीमती रितु जैन, पंचशील नगर, भोपाल | 1000 ₹ |
| 37. | श्रीमती नेहा ऋषभ जैन, भोपाल | 500 ₹ |
| 38. | श्री सनत कुमार-बसंती जैन, भोपाल | 500 ₹ |
| 39. | श्री नरेन्द्र-माधुरी समैया, भोपाल | 500 ₹ |

# Notes

## लेखक का परिचय

**नाम**

मंगलवर्धिनी पुनीत जैन

**जन्म**

12-02-1990, झाँसी

**माता-पिता**

श्रीमती मधुकांता जैन (शासकीय अध्यापिका)

श्री पवन कुमार जैन (मंगलवर्धिनी अर्थमूवर्स)

**पता**

'सुवर्णपुरी' ऑलिव-212, रुचिलाईफ स्केप,

होशंगाबाद रोड, भोपाल (म.प्र.) 462026

संपर्क सूत्र : 7415111700

**शिक्षा**

बी.ई.,एम.टैक.,एम.ए.-संस्कृत साहित्य,

आचार्य-जैन दर्शन (अ.)

**व्यवसाय**

फैकल्टी, बी.यू.आई.टी., भोपाल

**पदस्थ**

1. सह-निर्देशक, श्री ज्ञानोदय जैन सिद्धांत महाविद्यालय, दीवानगंज-भोपाल
2. शिक्षक, परमागम ऑनर्स, भोपाल

**कृतियाँ**

1. समकित-प्रवेश 2. आवश्यक-प्रवेश

**आगामी कृतियाँ**

1. तत्वार्थ-प्रवेश 2. समय-प्रवेश